

# श्रीमन्महाभारत

या ग्रंथाचें

## मराठी सुरस भाषांतर.

---

पुस्तक आठवें



हरिवंशपर्व.

पूर्वार्ध



हा ग्रंथ

रा. रा. महादेव हरी मोडक, बी. ए.

यांनीं लिहिला.

---

प्रकाशकः—गणेश विष्णु चिपळुणकर आणि मंडळी,  
बुधवार पेठ, पुणे.

---

मुद्रकः—केशव रावजी गोंधळेकर, जगद्धितेच्छु छापखाना, पुणे.

---

शके १८३४ परिधावीनाम संवत्सरे.

हा ग्रंथ गणेश विष्णु चिपल्लुणकर आणि मंडळीचे व्यवस्थापक रा० बाळकृष्ण  
पांडुरंग ठकार यांनी पुणे पेठ शनिवार येथील रा० रा० केशव रावजी  
गोधळेकर यांच्या जगद्धितेच्छु छापखान्यांत छापवून पुणे  
पेठ बुधवार, बर नंबर १५९, येथे प्रसिद्ध केला.

---

( या पुस्तकाचे सर्व मालकी हक्क सन १८६७ च्या २५ व्या अॅक्टप्रमाणे नोंदून  
प्रकाशकांनी आपणाकडे ठेविले आहेत. )





नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।  
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

ज्या अखिलब्रह्मांडनायकाच्या लीलेनें या जगाचीं यज्ञयावत्  
कार्ये घडतात, ज्याच्या कृपेनें ह्या अनिवार मायामोहाचें  
निरसन करितां येतें व अल्पशक्ति जीवांना परमपद  
प्राप्त करून घेतां यावें म्हणून जो त्यांस  
बुद्धिसामर्थ्य देतो, त्या

परमकारुणिक

श्रीमन्नारायणाचे प्रेरणेनें

सकलगुणैश्वर्यसंपन्न

श्रीमन्महाराजसाहेब

सयाजीराव गायकवाड यांनीं

“श्रीमन्महाभारताच्या भाषांतराचें”

निर्विघ्नपणें पूर्ण प्रकाशन व्हावें म्हणून

सर्वांच्या आधीं अत्यंत मोठा आश्रय देऊन हें

ग्रंथाच्या पूर्णतेचें श्रेय त्यांनींच संपादन केलें असल्यामुळें

प्रस्तुतचा हा भाग महाराजसाहेब यांची परवानगी घेऊन आम्ही

भगवदंश श्रीमन्महाराजसाहेब यांचे चरणीं

कृतज्ञतापूर्वक समर्पण केला आहे, त्याचा ते स्वीकार करोत.

श्री.

“ श्रीमन्महाभारताचें मराठी सुरस भाषांतर ” या ग्रंथापैकीं प्रस्तुत वाचकांचे हातीं असलेला हा आठवा भाग होय. यांत हरिवंशपर्वाचा पूर्वार्ध असून त्यांत हरिवंशमहात्म्य, हरिवंशपर्व, विष्णुपर्व इतका विषय आहे. आजपर्यंत प्रसिद्ध झालेल्या पुस्तकांत अर्धवट महापर्वीत पुस्तक काढलें नव्हतें; पण या वेळीं हा ग्रंथ फार मोठा असल्यामुळें आजपर्यंतच्या नियमांविरुद्ध हें काम करावें लागलें. कारण, एकंदर ग्रंथाचीं पानें काम फार वाढल्यामुळें एक हजार होत आहेत. इतक्या पानांचें एकच पुस्तक करणें आम्हांस बांधणीच्या दृष्टीनें प्रशस्त न वाटल्यामुळें एकाच पुस्तकाचीं दोन पुस्तके करणें भाग पडलें. पण या विचारानें-कामांत सुबकपणा आला असला तरी-स्वर्चाच्या दृष्टीनें आमच्या आपत्तींत आणखी भरच पडली आहे. म्हणजे बांधणीचा खर्च दुपटीवर गेला. आणि तो थोडा थोडका नसून प्रती दुप्पट झाल्यामुळें सुमारे १६०० शें रुपये इतका खर्च वाढला आहे. तथापि कांहीं आश्रयदात्यांच्या सुचनेवरून दोन भागांत पुस्तक बांधण्याचें ठरवून तशी व्यवस्था केली आहे. यामुळें आतां एकंदर महाभारताचे आठ भाग होणार होते ते नऊ होतील.

हरिवंशपर्वाचें पूर्णपणें प्रकाशन झालें म्हणजे अखिल महाभारताचें प्रकाशन झालें. अशा वेळीं चिपळुणकर मंडळीनें आजपर्यंत अनुभविलेल्या परिस्थितीचें सिंन्हावलोकन करून स्वानुभव वाचकापुढें ठेवण्याचा उपक्रम केल्यास तो अस्थानीं होणार नाही. पण ती गोष्ट यावेळीं व्यक्त न करितां नवव्या भागाचे प्रस्तावनेत करण्याचें योजिलें आहे.

या भागांत एकंदर आठ चित्रें आहेत. पैकीं तीन मागील भागांतील असून पांच आठव्या भागांतील आहेत. हीं चित्रें कोणी काढलेलीं आहेत, हें त्यावरील नांवावरून ध्यानांत येईलच. याही वेळीं श्रीमंतसरकार बाळासाहेब पंत प्रतिनिधी यांनीं आमचेकरितां जे श्रम घेतले आहेत त्याबद्दल आम्ही त्यांचे अत्यंत ऋणी आहोंत.

या महत्कार्यास आजपर्यंत द्रव्यद्वारा ज्यांनीं साहाय्य केलें त्यांचीं नांवें मागील सर्व भागांत आलेलींच आहेत. पण त्यानंतर ज्यांचेकडून मदतीदाखल रकमा आल्या त्या उदारधी गृहस्थांचा नामनिर्देश करणें आमचें अत्युच्च कर्तव्य आहे. श्रीमती महाराणी आजीसाहेब, कोल्हापूर; श्रीमंत सरदार अण्णासाहेब महाराज भोंसले, सातारा; श्रीमंत सरकार मुधोळकर, सं० मुधोळ; श्रीमंत सरदार भाउसाहेब पाटणकर, कोल्हापूर; रा० रा० शेट विष्णुसा बाळकृष्णसा सावजी, मलकापूर, वऱ्हाड; व मुंबई येथील डॉ. नानासाहेब देशमुख; व. मुकुंदराव रामराव जयकर; रा. रा. कृष्णाजी पांडुरंग फडके; रा. रा. अण्णासाहेब नेने, प. वा. माजी ओरिएंटल ट्रान्सलेटर विनायक वासुदेव यांचे चिरंजीव बाळकृष्ण विनायक कौरेकडून यथाशक्ति आश्रयार्थ रकमा आल्या आहेत. या औदार्यानें या सर्व मंडळींनीं महाराष्ट्राचाचकवर्गास व मुख्यतः चिपळुणकर मंडळीस कायमचें ऋणी करून ठेविलें आहे.

वरील सर्व आश्रयदात्यांचे आभार मानणें हें आमचें कर्तव्य आहे, व तें आम्हीं बजाविलेंच आहे परंतु या सर्वांत श्रीमंत महाराज सरकार सया-

# अनुक्रमणिका.

हरिवंश ( पूर्वार्ध ).

अध्याय. हरिवंशमाहात्म्य.

पृष्ठ.

अध्याय.

पृष्ठ.

|   |    |
|---|----|
| १ ला. श्रवणादि विधिकथन व मंगलाचरण.              | १  |
| २ रा. श्रवणादि विधि                             | ३  |
| ३ रा. श्रवणविधि                                 | ६  |
| ४ था. श्रोत्यांचे नियम व ब्राह्मण स्त्रीची कथा. | ७  |
| ५ वा. व्रतोद्यापनविधि.                          | ९  |
| ६ वा. दान व व्यासपूजन.                          | ११ |

हरिवंशपर्व.

अध्याय.

|  |    |
|--|----|
| १ ला. प्रस्तावना, आदिसर्गकथन व मंगलाचरण. | १  |
| २ रा. दक्षोत्पत्तिकथन.                   | ४  |
| ३ रा. मरुतांची उत्पत्ति.                 | ७  |
| ४ था. पृथुर्वे उपाख्यान.                 | १४ |
| ५ वा. वेन राजा.                          | १६ |
| ६ वा. पृथ्वीदोहन.                        | १९ |
| ७ वा. मनुवर्णन.                          | २३ |
| ८ वा. मन्वंतर गणना.                      | २६ |
| ९ वा. द्वादशादित्यांची उत्पत्ति.         | २९ |
| १० वा. वैवस्वत मनूची संतति.              | ३४ |
| ११ वा. धुंधुवधवर्णन.                     | ३६ |
| १२ वा. गालवोत्पत्तिवर्णन.                | ३० |
| १३ वा. त्रिशंकुचरित्र.                   | ४१ |
| १४ वा. सगरोत्पत्तिवर्णन.                 | ४३ |
| १५ वा. सगरवंश.                           | ४४ |

|   |     |
|---|-----|
| १७ वा. पितृवर्णन.                         | ४६  |
| १७ वा. पितृभक्तिवर्णन.                    | ४९  |
| १८ वा. श्राद्धफलकथन.                      | ५२  |
| १९ वा. पितृकरूपवर्णन.                     | ५७  |
| २० वा. चटकोपाख्यान.                       | ५८  |
| २१ वा. श्राद्धमाहात्म्य.                  | ६६  |
| २२ वा. चक्रवाकवर्णन.                      | ६५  |
| २३ वा. हंसवर्णन.                          | ७०  |
| २४ वा. ब्रह्मदत्ताचा वृत्तांत             | ७२  |
| २५ वा. सोमोत्पत्तिवर्णन.                  | ७४  |
| २६ वा. एलोत्पत्तिवर्णन.                   | ७७  |
| २७ वा. अमावसुवंशवर्णन.                    | ८०  |
| २८ वा. आयुवंशकथन.                         | ८३  |
| २९ वा. काश्यवर्णन.                        | ८६  |
| ३० वा. ययातिचरित्र.                       | ९१  |
| ३१ वा. कुक्षेयुवंशवर्णन.                  | ९३  |
| ३२ वा. पुरुवंशानुकथन.                     | ९६  |
| ३३ वा. यदुवंश व कार्तवीर्यार्जुनोत्पत्ति. | १०२ |
| ३४ वा. वृष्णिवंशवर्णन.                    | १०५ |
| ३५ वा. कृष्णवंशवर्णन.                     | १०८ |
| ३६ वा. क्रोष्टुवंशवर्णन.                  | १०९ |
| ३७ वा. बभ्रुवंशवर्णन.                     | १११ |
| ३८ वा. स्यमंतकमणि.                        | ११३ |
| ३९ वा. अक्रूरवृत्त.                       | ११६ |
| ४० वा. वराहोत्पत्तिवर्णन.                 | ११८ |
| ४१ वा. श्रीविष्णूचे अवतारवर्णन.           | १२२ |

| अध्याय.                                    | पृष्ठ. | अध्याय.   | पृष्ठ. |
|--|--------|---|--------|
| ४२ वा. विष्णूचें ईश्वरत्वकथन.              | १३१    | १३ वा. धेनुकवध.   | २०९    |
| ४३ वा. दैत्यसेनावर्णन.                     | १३३    | १४ वा. प्रलंबवध.  | २१०    |
| ४४ वा. देवसेनावर्णन.                       | १३६    | १५ वा. शक्रोत्सव.   | २१३    |
| ४५ वा. देवासुरसंग्रामवर्णन.                | १३९    | १६ वा. इंद्रयागनिषेध.   | २१४    |
| ४६ वा. देवांची सरशी.                       | १४३    | १७ वा. गिरियज्ञप्रवर्तन.  | २१७    |
| ४७ वा. कालनेमीचा पराक्रम.                  | १४७    | १८ वा. गोवर्धनोद्धरण.   | २१९    |
| ४८ वा. कालनेमी व विष्णु यांचें युद्ध.      | १५०    | १९ वा. गोविंदाभिषेक.  | २२३    |
| ४९ वा. विष्णूसंबंधी जनमेजयाचे प्रश्न.      | १५५    | २० वा. रासक्रीडा.   | २२८    |
| ५० वा. नारायणाश्रमवर्णन.                   | १५७    | २१ वा. वृषभासुराचा वध.  | २३०    |
| ५१ वा. श्री विष्णु व देवमंडळी यांचा संवाद. | १५९    | २२ वा. अकूरप्रस्थान.  | २३१    |
| ५१ वा. पृथ्वीची विनंति.                    | १६२    | २३ वा. अंधकाचें भाषण.   | २२७    |
| ५३ वा. देवतांचे अंशावतार.                  | १६५    | २४ वा. केशिवध.  | २३९    |
| ५४ वा. नारदवाक्यवर्णन.                     | १६९    | २५ वा. अकूरागमन.  | २४३    |
| ५५ वा. ब्रह्मवाक्यवर्णन.                   | १७४    | २६ वा. नागलोककथन.   | २४६    |
|  |        | २७ वा. धनुर्भंग.  | २४९    |
|  |        | २८ वा. कंसवाक्य ( मलयुद्धाची तयारी. )                           | २५३    |
|  |        | २९ वा. कुवलयापीडाचा वध (रंग-भूमीचें वर्णन. )                    | २५०    |
|  |        | ३० वा. कंसवध.   | २५२    |
|  |        | ३१ वा. कंसाच्या स्त्रियांचा विलाप.                              | २५७    |
|  |        | ३२ वा. उग्रसेनाचें समाधान व अभिषेक आणि कंसाचा प्रेतसंस्कार.     | २७३    |
|  |        | ३३ वा. रामकृष्ण गुरुगृहीं जातात व विद्या संपादन करून परत येतात. | २७४    |
|  |        | ३४ वा. मथुरेचा वेढा.  | २७६    |
|  |        | ३५ वा. यादव मागधांचें युद्ध.                                    | २७६    |
|  |        | ३६ वा. जरासंधाचा पराभव व प्रयाण.                                | २८२    |
|  |        | ३७ वा. हर्यश्च राजाची कथा व यादवांची उत्पत्ति.                  | २८४    |
|  |        | ३८ वा. यदूचे वंशज व त्यांचे पराक्रम.                            | २८८    |
| अध्याय.                                    |        |   |        |
| १ ला. नारदाचें आगमन.                       | १७९    |   |        |
| २ रा. कंसाचा संकेत व आर्येला वरदान.        | १८१    |   |        |
| ३ रा. आर्यास्तव.                           | १८४    |   |        |
| ४ था. श्रीकृष्णजन्मवर्णन.                  | १८७    |   |        |
| ५ वा. नंदाचें व्रजनगरीप्रत गमन.            | १९१    |   |        |
| ६ वा. श्रीकृष्णाची बाललीला व पूतनेचा वध.   | १९३    |   |        |
| ७ वा. यमलाजुनभंग.                          | १९५    |   |        |
| ८ वा. वृकदर्शन.                            | १९७    |   |        |
| ९ वा. वृंदावन प्रवेश.                      | १९९    |   |        |
| १० वा. प्रावृड्वर्णन.                      | २०१    |   |        |
| १३ वा. यमुनावर्णन.                         | २०३    |   |        |
| १२ वा. कालियामर्दन.                        | २०६    |   |        |

| अध्याय.  | पृष्ठ. | अध्याय.  | पृष्ठ. |
|--|--------|--|--------|
| ३९ वा. परशुरामाची भेट.   | २९१    | ६२ वा. बलदेवाचें माहात्म्य.                      | ३९८    |
| ४० वा. गोमंतवर्णन.   | २९६    | ६३ वा. नरकवध.                                    | ३९९    |
| ४१ वा. बलरामाचें सुरापान, जरा-<br>संधाचे गोमंताचलाकडे आ-<br>गमन. | २९८    | ६४ वा. पारिजातहरण.                               | ३७९    |
| ४२ वा. गोमंतदाह.   | ३०१    | ६५ वा. पारिजातकानिमित्त सत्य-<br>भामेचा कोप.     | ३७९    |
| ४३ वा. जरासंधाचा पराभव.  | ३०६    | ६६ वा. सत्यभामेची समजूत घाल-<br>ण्याचा यत्न.     | ३८१    |
| ४४ वा. शृगालवध.  | ३११    | ६७ वा. पारिजातोत्पत्तिकथन.                       | ३८५    |
| ४५ वा. रामकृष्ण मथुरेला परत<br>येतात.                            | ३१४    | ६८ वा. नारद—कृष्णसंवाद.                          | ३८८    |
| ४६ वा. यमुनाकर्षण. ( रामाचें<br>गोकुळाप्रत पुनरागमन. )           | ३१५    | ६९ वा. इंद्राचा कृष्णास परत निरोप. ३९५           |        |
| ४७ वा. रुक्मिणीस्वयंवराची प्र-<br>स्तावना.                       | ३१९    | ७० वा. नारदाचा इंद्राशीं बुद्धिवाद. ३९४          |        |
| ४८ वा. जरासंध व सुनीथ यांची<br>भाषणें.                           | ३२१    | ७१ वा. नारद स्वर्गाहून परत कृ-<br>ष्णाकडे येतात. | ३९६    |
| ४९ वा. दंतवक्राचें भाषण व भीष्मक<br>राजाचा निश्चय.               | ३२४    | ७२ वा. कश्यपकृत रुद्रस्तोत्र.                    | ३९९    |
| ५० वा. श्रीकृष्णराज्याभिषेक.                                     | ३२८    | ७३ वा. इंद्र व कृष्ण यांचें युद्ध.               | ४०५    |
| ५१ वा. श्रीकृष्णाचा राज्याभिषेक.                                 | ३३२    | ७४ वा. कृष्णकृत शिवस्तुति.                       | ४०९    |
| ५२ वा. कालयवनाला बोलावण्याचा<br>संकेत.                           | ३३६    | ७५ वा. स्वर्गाहून पारिजात आणिला. ४१३             |        |
| ५३ वा. शाल्वदैत्य—जरासंधाचा<br>संदेश.                            | ३३८    | ७६ वा. पारिजातक परत स्वर्गास<br>पोंचाविला.       | ४१६    |
| ५४ वा. कालयवनाचें उत्तर ( अ-<br>नुमती ).                         | ३४१    | ७७ वा. पुण्यकविधि.                               | ४१८    |
| ५५ वा. द्वारावतीला जाण्याचा संकेत. ३४२                           |        | ७८ वा. पुण्यकव्रतवर्णन.                          | ४१९    |
| ५६ वा. कालयवनाची स्वारी व<br>द्वारकेला प्रयाण.                   | ३४९    | ७९ वा. पुण्यकव्रत—चालू                           | ४२०    |
| ५७ वा. कालयवनाचा वध.   | ३५०    | ८० वा. शरीरसौंदर्यार्थव्रतोपाय.                  | ४२४    |
| ५८ वा. द्वारकेची स्थापना.  | ३५४    | ८१ वा. उमाव्रतकथन.                               | ४२७    |
| ५९ वा. रुक्मिणीहरण.  | ३५८    | ८२ वा. षट्पुरवध.                                 | ४२८    |
| ६० वा. श्रीकृष्णाचा संसार.                                       | ३६२    | ८३ वा. असुर यज्ञास विघ्न करितात. ४३०             |        |
| ६१ वा. रुक्मीचा वध.  | ३६५    | ८४ वा. प्रद्युम्न असुरांस गुहेंत<br>कोंडतो.      | ४३२    |
|  |        | ८५ वा. निकुंभाचा वध.                             | ४३५    |
|  |        | ८६ वा. नारद व अंधकासुर यांची<br>भेट.             | ४३८    |
|  |        | ८७ वा. अंधकासुराचा वध.                           | ४४१    |
|  |        | ८८ वा. यादवांची जलक्रीडा.                        | ४४३    |
|  |        | ८९ वा. छालिक्यक्रीडावर्णन.                       | ४४६    |

| अध्याय.   | पृष्ठ. | अध्याय.  | पृष्ठ. |
|---|--------|--|--------|
| ९० वा. निकुंभवध.                                    | ४९१    | १११ वा. वासुदेव माहात्म्य.   | ९०८    |
| ९१ वा. वज्रनाभ व भानुमती.                           | ४९६    | ११२ वा. अर्जुनाची फजिती.   | ९०९    |
| ९२ वा. हंस वज्रपुरास जातात.                         | ४९८    | ११३ वा. ब्राह्मणाचा पुत्र कृष्ण परत<br>देतो.                       | ९१०    |
| ९३ वा. नटप्रभाव-प्रद्युम्नप्रवेश.                   | ४६१    | ११४ वा. गूढोद्धाटन.  | ९११    |
| ९४ वा. प्रभावतीपरिणय.                               | ४६४    | ११५ वा. वासुदेवमाहात्म्य.  | ९१२    |
| ९५ वा. प्रद्युम्नाचा प्रभावतीशीं विनोद.             | ४६७    | ११६ वा. बाणासुराचें आख्यान.  | ९१३    |
| ९६ वा. प्रद्युम्नाचें असुरांशीं युद्ध.              | ४७०    | ११७ वा. शिवाची जलक्रीडा व<br>उषेची मदनावस्था.                      | ९१७    |
| ९७ वा. वज्रनाभाचा वध.                               | ४७४    | ११८ वा. उषास्वप्न व चित्ररेखेचें<br>द्वारकेस गमन.                  | ९२०    |
| ९८ वा. द्वारकेची विशिष्ट सुधारणा.                   | ४७६    | ११९ वा. उषा-अनिरुद्ध-संगम व<br>अनिरुद्धाचें बाणसैन्याशीं<br>युद्ध. | ९२४    |
| ९९ वा. द्वारकेतील कृष्णगृह्य-<br>वस्था.             | ४७९    | १२० वा. अनिरुद्धकृत देविस्तव.                                      | ९३३    |
| १०० वा. कृष्णाचा सभाप्रवेश.                         | ४८१    | १२१ वा. कृष्णाचें युद्धार्थ गमन.                                   | ९३७    |
| १०१ ना. नारदकृत कृष्णप्रतापवर्णन.                   | ४८२    | १२२ वा. कृष्णाचें रुद्रानुचाराशीं युद्ध.                           | ९४३    |
| १०२ रा. कृष्णप्रतापवर्णन.                           | ४८५    | १२३ वा. ज्वर-कृष्ण-संवाद.  | ९४७    |
| १०३ रा. कृष्णाची संतति.                             | ४८७    | १२४ वा. रुद्र व कृष्ण यांचें युद्ध.                                | ९४९    |
| १०४ था. प्रद्युम्नहरण.                              | ४८८    | १२५ वा. हरिहरस्तव.   | ९५१    |
| १०५ वा. प्रद्युम्नाचा पराक्रम.                      | ४९१    | १२६ वा. बाणासुर वरप्रदान   | ९५५    |
| १०६ वा. प्रद्युम्न व शंबर याची<br>झटापट.            | ४९५    | १२७ वा. कृष्णाचें अनिरुद्धासह<br>द्वारकेस प्रत्यागमन.              | ९६३    |
| १०७ वा. शंबरामुरवध.                                 | ४९७    | १२८ वा. उषाहरण-समाप्ति.  | ९६९    |
| १०८ वा. प्रद्युम्न व मायावती रुक्मि-<br>णीस भेटतात. | ४९९    |  |        |
| १०९ वा. बलरामानें म्हटलेलें आ-<br>न्हिक स्तोत्र.    | ५००    |  |        |
| ११० वा. धन्योपाख्यान.                               | ५०४    |  |        |

## चित्रांची सूचि.

- १ तो पोरवेडा वसुदेव त्या मुलाला बंदोबस्तानें गुरफाटून घेऊन रातोरात य-  
शोदेच्या घरीं घेऊन गेला. १८८
- २ तरुण गोपकन्या जमवून तो समयज्ञ कृष्ण त्यांचे बरोबर आनंदानें  
खेळूं लागला. २२९
- ३ कंसाला मारल्यानंतर रामकृष्णांनीं वसुदेव देवकीची भेट घेतांच त्यांनीं  
त्यांना आलिंगन दिलें. २६७
- ४ रुक्मिणी देवालयांतून बाहेर येत असतां एकदम तिला उचलून श्रीकृष्णानें  
आपल्या रथ मध्ये आणून बसविलें. ३६१
- ५ कुभांडा, या कुलकलंकाला सत्वर मारून टाक. कारण यानें माझ्या व्रताला  
कलंक लाविला आहे. ५३२

## मागील भागांतील चित्रें.

सभापर्व भाग १ ला.

- १ भीष्मांकडून अनुज्ञा मिळतांच सहदेवानें श्रीकृष्णाची पूजा केली ही गोष्ट  
शिशुपालास सहन झाली नाहीं. ५३९
- उद्योगपर्व भाग ३ रा.
- ५ असल्या अजिंक्य पुंडरीकाक्षाला तूं बांधावयास पहातोस या तुझ्या मूर्ख-  
त्वाला काय म्हणावें ? २३५

भीष्मपर्व भाग ४ था.

- ३ असें म्हणून तो कृष्ण हातचे घोडे सोडून व सूर्यतुल्य तेजस्वी आपलें चक्र  
उगारून रथाखालीं उतरला व भीष्मावर धांवून गेला. १६७

टीप—या भागांत आठ चित्रांची सूचि आहे पण यांतील खालील तीन चित्रें पूर्वीचे वर्गणीदा-  
रांस त्या त्या भागांत मिळालीं नसल्यामुळे तीं त्यांस या भागांत मिळतील अशी व्यवस्था केली आहे.  
यापुढें जे ग्राहक होतील त्यांस त्या त्या भागांत तीं मिळतील व त्यांना ८ वे. भागांत बरील पांचवें  
मिळतील.

## शुद्धिपत्र-

### हरिवंशपर्व

| अध्याय | पान | रक्तानां | ओळ | अशुद्ध          | शुद्ध            |
|--------|-----|----------|----|-----------------|------------------|
| १      | २   | १        | ३० | श्रवण केल्यावर  | कथन केल्यावर     |
| "      | "   | "        | ३४ | वैशंपायनाला.    | त्याला जनमेजयाने |
| ३१     | ९४  | १        | ३  | सौते,           | वैशंपायना,       |
|        |     |          |    | पुरूचा पुत्र हा | पुरूचा पुत्र     |
|        |     |          |    |                 | जनमेजय हा        |





# हरिवंशपर्व.

अध्याय पहिला.

—०१०—

## प्रस्तावना व आदिसर्गकथन.

मंगलाचरण.



नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।

देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥

श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास मुनींच्या ओष्ठ-  
पुटांतून निघालेलें, अद्भुत, धर्मवृद्धिकर, पावन,  
पापनाशक व सुखक असें हें भारत जो  
श्रवण करील, त्याला पुष्करादि पवित्र  
तीर्थांच्या स्नानानें अधिक लाभ तो काय  
होणार? ज्यांच्या मुखकमलांतून स्वर्णारें  
अमृतसर्व जग पिऊन राहिलें आहे असे जे  
माता सत्यवतीच्या हृदयास आनंद देणारे  
पराशर पुत्र व्यास मुनि त्यांचा जयजयकार  
असो. बहुश्रुत व वेदवेत्त्या ब्राह्मणाला सुवर्ण-  
शंगांनीं युक्त अशा शंभर गाई देणाऱ्याला  
जें फल मिळतें तेंच फल ही पवित्र भारत-  
कथा श्रवण करणाराला मिळतें. व्यास मह-

र्षीचें असें म्हणणें आहे कीं, शताश्वमेध  
किंवा इंद्रपदप्राप्त्यर्थ करावे लागणारे क्रतु  
किंवा अक्षय्य अन्नदान यांच्या योगानें जें  
फल प्राप्त होतें, त्याच्याही अनंतपट फल  
हरिवंशाचें पुस्तक दान करणाराला मिळतें.  
तसेंच वाजपेय किंवा राजसूय यज्ञ केल्यानें  
अथवा हत्तींचा रथ दान केल्यानें मिळणारें जें  
पारलौकिक फल, तें हरिवंशाचे योगानें मिळतें.  
याविषयी व्यासमुनि व वाल्मीकि महर्षि या  
उभयतांची वचनें प्रमाण आहेत. जो कोणी  
तपस्वी यथाविधि हरिवंश ग्रंथाचें लेखन  
करील, तो रसलुब्ध भ्रमराप्रमाणें तत्काल श्री-  
हरीच्या चरणकमलाप्रत पावेल. पितामहा-

पासून सहावा, अनंत योगैश्वर्यानें युक्त, साक्षात् नारायणाचा अंशभूत व शुक्र मुनि हा ज्यांचा एकच पुत्र आहे, अशा व्यास महर्षीला मी ब्रह्मभावाने वंदन करितों.

नैमिषारण्याचे ठायीं परम धार्मिक, सर्व-शास्त्रनिपुण, महामुनि, कुलपति शौनक हे चराचरगुरु, सर्वांचा आदिपुरुष, सर्वशक्तिमान् बहुनामयुक्त, अनेकांनीं स्तवन केलेला, सत्य-स्वरूप, उक्कारपदवाच्य, व्यक्ताव्यक्त, सनातन, अनिर्वचनीय, सदसताहून पलीकडे असणारा, जीवेश्वराचा कर्ता, पुराण, पर, अव्यय, मंगलकारक, मंगल, व्यापक, भक्तप्रिय, निर्मल, पवित्र, सर्वेद्रियांचा प्रवर्तक व सर्व पापांचा नाश करणारा जो परमात्मा, त्याला वंदन करून सौतीला विचारतात:—हे सौते, भरत-कुलोत्पन्न व इतर राजे यांचा सविस्तर इतिहास तूं आम्हांस सांगितल्यास; तसेंच देव, दानव, गंधर्व, सर्प, राक्षस, दैत्य, सिद्ध व गुह्यक यांचीं अत्यद्भुत कर्मे, पराक्रम, धर्मनिष्ठा, नानाप्रकारच्या कथा, अयोनिर्भवजन्म, इत्यादि जुन्या पवित्र अमृततुल्य गोष्टी ज्यांच्या श्रवणाने मनाला व कर्णाला आल्हाद होतो, अशा मनोहर वाणीनें सांगितल्यास, त्यांतच कुरुचे जन्मही सविस्तर कथन केलेंस. परंतु सुप्रसिद्ध जे वृष्णि आणि अंधक, त्यांचा इतिहास सांगण्याचा राहून गेला आहे; तर तेवढा तूं कृपा करून आम्हांस सांग.

सौति म्हणाला:—शौनका, व्यासांचा धर्मज्ञ शिष्य वैशंपायन याने भारतेतिहास सविस्तर श्रवण केल्यावर वैशंपायनाला वृष्णि-कुलाविषयीं प्रश्न केला होता; तीच हकीकत मी तुला सांगतो.

जनमेजय विचारतो:—हे सौते, आतां पर्यंत आपण वेदांचा मतलब विस्तारून सांगणारें व अनेक अर्थांनीं युक्त असें महाभारत

नांवाचें आख्यान मला सांगितलें, व मीही तें सविस्तर ऐकिलें. त्या आख्यानांत आपण वृष्णि आणि अंधक या दोन कुलांतील नाम-कर्मानें प्रख्यात असे अनेक शूर महारथी यांचें वर्णन केलें. तशींच ठिकठिकाणीं त्यांचीं पवित्र अशीं कर्मेही थोड्याबहुतानें आपण सांगितलीं. परंतु काय असेल तें असो, या जुन्या गोष्टी ऐकू लागलें म्हणजे किती ऐकलें तरी माझी तृप्तीच होत नाही. माझ्या समजुतीनें वृष्णि आणि पांडव हे एकाच कुटुंबांतले वाटतात. आपण वंशांचे पुरे माहितगार असून विशेषतः या वृष्णि कुळाशीं आपला समक्ष परिचय आहे, याकरितां हे तपोधना, या कुलाची हकीकत मला विशेष विस्तारानें सांगा. या कुलांतिल ज्या ज्या शाखेंत जे जे कोणी विशिष्ट पुरुष झाले असतील त्यांची हकीकत मला सविस्तर सांगा व तशीच प्रजापतीपासून त्यांच्यापर्यंत (वृष्णि कुलापर्यंत) सर्व पूर्वजांचीही उत्पत्ती कथन करा. सौति म्हणाला, याप्रमाणें मोठ्या आदरानें प्रश्न केल्यामुळें तो महातपस्वी महात्मा वैशंपायन याने यथाक्रम व सविस्तर असें वंशवृत्त सांगण्यास आरंभ केला.

वैशंपायन ह्मणतात:—हे राजा, पापापासून मुक्त करणारी, वेदालाही मान्य, अनेकार्थ युक्त, विचित्र, दिव्य व पुण्यकारक अशी कथा मी तुला सांगतो, ती श्रवण कर. या कथेचें सामर्थ्य असें आहे की, ही जो स्मरणरूपानें किंवा पुस्तक रूपानें आपल्यापाशीं ठेवील, किंवा वारंवार श्रवण करील त्याचा वंश इह-लोकीं अखंड राहून स्वर्ग लोकांत त्याचा मोठा गौरव होईल. हे राजा, ज्याचा “हे” म्हणून अंगुली निर्देशानें किंवा शब्दांनीं बोध करितां येत नाही अशा प्रकारचें नित्य, अव्यक्त व सदसदात्मक जें मायाशबल ब्रह्म किंवा प्रकृति-

संवलित पुरुष, तें सृष्टीचें आदिकारण होय. त्यापासून हें ईश्वरात्मक जगत् उत्पन्न झालें. हा जो अव्यक्त संज्ञक अमित तेजस्वी पुरुष हाच ब्रह्मा होय; हाच सर्व भूतांचा उत्पत्तिकर्ता व नारायण जो विष्णु याचे तंत्रानें वागणारा असून महत्त्वाचा ( बुद्धीचा ) अभिमानी होय. या महत्त्वापासूनच अहंकार उत्पन्न झाला. अहंकारापासून आकाशादि महाभूतें व महाभूतांपासून जरायुज, स्वेदज, वगैरे सर्व भूत-सृष्टि या क्रमानें हा सृष्टीचे उत्पत्तीचा ओघ अखंड चालू आहे. असो; तूं पवित्र व ऐकण्यास पात्र व मीही पवित्र असून वंश-कीर्तनास समर्थ, असा योग जुळून आल्यामुळें वेदाज्ञेला न सोडतां माझे बुद्धिसामर्थ्यानुरूप सृष्टीच्या आदिपासून तों वृष्णिवंशाच्या आरंभापर्यंत अत्युत्तम जी भूतसृष्टि तिचें वर्णन अवयवशः विस्तरून मी तुला सांगतों. ह्या वर्णनांत ज्यांनीं ज्यांनीं पवित्र कर्म केलीं व अजरामर कीर्ति संपादिली अशा अनेक पुरुषांचे उल्लेख येणार आहेत व यामुळें हें वर्णन पूर्वजांची कीर्ति वाढविणारें, यशोदायक, शत्रूचा निःपात करणारें, स्वर्ग देणारें, आयुष्य व संपत्ति वाढविणारें, असें आहे. याकरितां तें लक्ष देऊन ऐक.

भगवान् स्वयंभूयानें सूक्ष्मभूतांची अहंकारादि सृष्टि निर्माण केल्यावर नानातःहेची स्थूल प्राणिसृष्टि निर्माण करण्याचा संकल्प करून प्रथम उदक निर्माण केलें, व त्या उदकाचे ठिकाणीं आपलें वीर्य सोडलें. आप म्हणजे उदक यालाच “ नारा ” अशी संज्ञा आहे. याचें कारण नर म्हणजे ईश्वर यापासून तें झालें; व ईश्वरालाच नारायण असें म्हणतात. याचें कारण नारा म्हणजे उदक हेंच त्याचें अयन म्हणजे आश्रयस्थान होय. असो, ईश्वरानें उदकांत वीर्य सोडल्यावर कांहीं कालानें तें

सोन्याच्या वर्णाचें एक अंडें झालें. त्या अंड्यांतून ब्रह्मदेव आपण होऊनच उत्पन्न झाला; व म्हणूनच त्याला “ स्वयंभू ” म्हणतात, असें आमचे ऐकितान्त आहे. असो; भगवान् ब्रह्मदेवानें त्या अंडांत अनेक वर्षे वसती करून नंतर त्या अंडाचीं दोन शकलें केलीं. त्यांपैकीं एका शकलानें स्वर्ग व एकांनं पृथ्वी बनविली आणि उभय लोकांमधील जो अवकाश त्यालाच त्यानें आकाश अशी संज्ञा दिली. पृथ्वी ही पाण्यावर तरती ठेवून तिचें ठिकाणीं दहा दिशा निर्माण केल्या. नंतर सृष्टिकर्ते प्रजापति निर्माण करावे असा संकल्प करून त्यांच्यापूर्वीं काल, मन, वाणी, काम, क्रोध, विषयप्रीति व ब्रह्मांडाच्या धर्तीवर पिण्ड-सृष्टि हीं निर्माण केलीं. एवढें झाल्यावर मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु व वसिष्ठ असे सात मानसपुत्र उत्पन्न केले. यांचे पूर्वीं केवळ नारायणपरच ज्यांची वृत्ति आहे असे सनक, सनंदनप्रभृति ब्रह्मदेवाचे सात पुत्र होते. त्यांनीं जरी संसार मिथ्या आहे अशी या मरीच्यादिकांची कानउघाडणी केली तरी तिला न जुमानतां त्यांनीं कर्ममार्गाच श्रेष्ठ मानून गृहस्थाश्रम स्वीकारला. आतां जे सनकादिक सात मरीच्यादिकांच्या पूर्वींचे ब्रह्मपुत्र म्हणून सांगितले त्या सर्वांत सनत्कुमार हा ज्येष्ठ होता. शिवाय या सातांत रुद्र म्हणून एक होता, तो ब्रह्मदेवानें आपल्या रोषापासून निर्माण केला होता.

हे जनमेजया, रुद्र व मरीच्यादि सात यांनीं पुढें सृष्टि उत्पन्न केली आणि स्कंद व सनत्कुमार हे आपलें तेज सृष्टिनिर्माणाचे कामीं खर्चीं न घालतां तसेंच राखून राहिले. वरील सात प्रजापतींचे सात दिव्य महावंश निर्माण झाले. या वंशांत यक्ष

पिशाच्चादि देवगण जन्मास आले, व हे मोठे कर्ते व संततियुक्त निपजले. शिवाय याच वंशाला आदित्यादिक देव व कश्यपादि महर्षि हे अलंकृत करिते झाले. नंतर त्यानें विजा, वज्र, मेघ, सरळ व वक्र अशीं इंद्रधनुष्यें, पक्षी व पर्जन्य हीं उत्पन्न केलीं. त्याचप्रमाणें यज्ञाचे सोईकरितां ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद हे निर्माण केले. नंतर आपल्या मुखापासून देव व वक्षस्थलापासून पितर उत्पन्न केले. उपस्थापासून मनुष्य व जघनापासून असुर, साध्य व इतर देव निर्माण केले. त्याच्या इतर गात्रांपासून लहानथोर भूत-सृष्टि उत्पन्न झाली. वसिष्ठसंज्ञक प्रजापति याचे मनांत प्रजावृद्धि करावी असें आलें. म्हणून त्यानें प्रथम कांहीं मानसप्रजा उत्पन्न केली; परंतु तीपासून जेव्हां पुढें पिढी चालू होईना तेव्हां त्यानें आपल्या देहाचे दोन भाग केले. पैकीं एका भागाचा पुरुष केला व दुसऱ्याची स्त्री बनविली. नंतर तिचे ठायीं पुरुषानें नानाविध प्रजा निर्माण केली. याप्रमाणें त्या पुरुषानें आपल्या महिम्यानें स्वर्ग व पृथ्वी, हीं भरून टाकलीं. भगवान् विष्णु यानें विराट् पुरुष निर्माण केला; त्यानें मनुनामक पुरुष उत्पन्न केला. या मनुचा जो काल त्याला मन्वंतर म्हणतात. याप्रमाणें मन्वंतर म्हणजे वसिष्ठ प्रजापतीची द्वितीय सृष्टि होय. याप्रमाणें या समर्थ विराट् पुरुषानें प्रजा उत्पन्न केली व स्वतः तो नारायणापासून उत्पन्न झाला असल्यामुळें त्याची सृष्टि तीही अयोनिर्भव झाली.

याप्रमाणें सांगितलेली जी ही आद्यसृष्टि हिजप्रत जो पुरुष जाणतो त्याला दीर्घायुष्य, कीर्ति, धन्यता, संतती, विद्या व यथेच्छ लोकप्राप्ति हीं लाभतात.

## अध्याय दुसरा.

—:०:—

### दक्षोत्पत्तिकथन.

वैशंपायन सांगतात:—याप्रमाणें प्रजा उत्पन्न केल्यावर त्या वसिष्ठ प्रजापतीला अयोनिर्भव अशी शतरूपा नामक स्त्री प्राप्त झाली. जनमेजया, हिला अयोनिर्भव म्हणण्याचें कारण ही स्वतेजानें स्वर्गालाही व्यापून राहाणारा जो वसिष्ठ प्रजापति त्याच्या योगप्रभावापासूनच उत्पन्न झाली होती. हिनें आपल्या उत्पत्तीबरोबर प्रथमतः अयुत वर्षपर्यंत परम दुश्चर अशी तपश्चर्या केली, व नंतर आपणास संतति व्हावी अशी जेव्हां तिला उत्कंठा झाली, तेव्हां ती महातेजस्वी जो वसिष्ठ प्रजापति त्याच्या सन्निध त्याला आपला पति मानून जाऊन राहिली.

हे जनमेजया, हा जो पुरुष याला स्वायं-भुव मनु असें म्हणतात, व याचा काल एका-हत्तर युगें असतो. या वसिष्ठप्रजापतीपासून शतरूपेला वीर नामक पुत्र झाला. या वीराला कर्दम प्रजापतीची मुलगी काम्या नांवाची पत्नीत्वानें प्राप्त झाली. तिजपासून त्याला प्रिय-व्रत, व उत्तानपाद असे दोन पुत्र झाले. पुढें या कन्येला सम्राट्, कुक्षि, विराट व प्रभु असे चार पुत्र झाले. हे पुत्र तिला प्रियव्रत पतीपासून झाले. अत्रि नामक प्रजापतीनें वसिष्ठाच्या दोन पुत्रांपैकीं उत्तानपाद हा दत्तक घेतला. त्या घरीं उत्तानपादाला सूनृता नामक स्त्रीपासून चार पुत्र झाले. ही सूनृता म्हणजे धर्मप्रजापति यानें अश्वमेध केला असतां जी अति सुंदर कन्या निर्माण झाली तीच. हीच प्रसिद्ध भक्त ध्रुव याची माता होय. उत्तान-पादाला सूनृतेपासून जे चार पुत्र झाले म्हणून सांगितले त्यांचीं नांवें:—ध्रुव, कीर्तिमान्, आयुष्मान् आणि वसु हीं होत. या

शेवटल्या दोहोंच्या ऐवजीं कोठें कोठें शिव आणि आयस्वती अशींहि नांवें आढळतात. सूनूतेच्या ठिकाणीं उत्तान-पादानें ध्रुव नामक जो पुत्र उत्पन्न केला म्हणून सांगितलें त्यानें तीन सहस्र दिव्य वर्षे तपश्चर्या केली. तपश्चर्येचा हेतु ब्रह्म-प्राप्ति हा होता. असो; त्याच्या तपश्चर्येनें ब्रह्म-देव प्रसन्न होऊन, भूतलावर ज्याला उपमा नाहीं असें अदळस्थान सप्तऋषींच्या अग्रभागीं त्यानें त्याला दिलें. या तपाचे योगानें ध्रुवाची अतिशय वाढलेली कीर्ति व संमृद्धि पाहून देव आणि असुर यांना मान्य जे शुक्राचार्य यांनींही उद्गार काढिले कीं, 'काय हो या ध्रुवाच्या तपाचा प्रभाव? कोण तरी बाचें तेज कीं सप्तर्षींना देखील याला आपला अग्रेसर पतकरून राहावें लागलें.' या ध्रुवाला श्लिष्टि, भव्य व शंभु असे तीन पुत्र झाले. यांपैकीं श्लिष्टीला सुच्छाया नामक स्त्रीचे ठिकाणीं निर्मळ असे पांच पुत्र झाले. त्यांचीं नांवें:— रिपु, रिपुंजय, पुण्य, वृकल व वृकतेजस् हीं होत. यांतील रिपूला बृहतीनामक पत्नीचे ठिकाणीं अत्यंत तेजस्वी चाक्षुष नामक पुत्र झाला. चाक्षुषाला वीरणप्रजापतीची कन्या पुष्करिणी नांवाची स्त्री मिळाली. हिचे ठायीं चाक्षुषानें मनुसंज्ञक पुत्र उत्पन्न केला. या मनूनें अरण्यप्रजापतीच्या नडूला नामक कन्ये-चे ठायीं दहा पुत्र उत्पन्न केले. त्यांचीं नांवें: ऊरु, पुरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवान्, कवि, अग्निष्ठुत्, अतिरात्र, वसुद्युम्न हीं नऊ; व दहा-व्याचें अभिमन्यु. यांपैकीं ऊरूला आग्नेयी नामक स्त्रीचे ठिकाणीं अंग, सुमनस्, ख्याति, क्रतु, अंगिरस् व गय असे सहा पुत्र झाले. यांपैकीं अंगाला सुनीथेपासून वेन नांवाचा एकच पुत्र झाला. हा वेन फार दुराचारी निघाल्या-

मुळें ऋषिजन फार क्षुब्ध झाले व त्यांनीं पुढील संततीसाठीं वेनाच्या उजव्या हाताचें मंथन केलें. त्या मंथनापासून पृथुनामक पुत्र उत्पन्न झाला. त्याला पाहतांच ऋषिजनांना फार आनंद होऊन ते म्हणाले, हा महातेजस्वी राजा आपल्या प्रजेला फार आनंद देईल व याचें यश फार वाढेल. ऋषींच्या या भाकि-ताप्रमाणें पृथु हा उपजतच धनुष्य, खड्ग व कवच धारणकर्ता असून तेजानें जाळतो कीं काय इतका उग्र असे. हा वैन्य पुत्र पृथु सर्व क्षत्रिय जातीचा प्रथम पुरुष असून राज-सूय यज्ञाचे पार्यां ज्यांना अभिषेक केला अशा भूमिपालांतही प्रथमच होय. यानें वेनाच्या दुराचारानें गांजलेल्या पृथ्वीचें रक्षण केलें. या पृथूमुळें राजयश गाण्यांत निपुण जे सूत मागध ते अस्तित्वांत आले. हे जनमे-जया, आपल्या प्रजेला उपजीविकेला विपुल धान्य मिळावें म्हणून यानें देव, ऋषि, पितर, दानव, गंधर्व, अप्सरांसहित सर्प, यक्ष, वल्ली व पर्वत यांच्या साह्यानें पृथ्वीपासून धान्य रूपानें दूध काढलें. पृथ्वीनेंही ठिकठिकाणीं धान्यरूपी प्रचुर दुग्ध दिल्यामुळें प्रजाजनांचें अक्लेश प्राणधारण झालें. या पृथूला अंतर्धि व पालित असे दोन धर्मज्ञ पुत्र झाले. पैकीं अंतर्धाला शिखंडिनीपासून हविर्धान नामक पुत्र झाला. हविर्धानाला धिषणा नामक अग्निंकन्येपासून सहा पुत्र झाले. त्यांचीं नांवें: प्राचीनबर्हि, शुक्र, गय, कृष्ण, व्रज व अजिन. यांपैकीं प्राचीनबर्हि हा हविर्धानाचे पोटीं मोठाच परा-क्रमी पुत्र निपजला. कारण त्यानें प्रजावृद्धि फारच केली.

हे जनमेजया, या प्रजापतीला प्राचीन-बर्हि असें नांव पडण्याचें कारण असें होतें कीं, याचे यज्ञभूमीचे ठायीं जे बर्हि म्हणजे दर्भ वाढले होतें त्या सर्वांचीं अग्ने

प्राची म्हणजे पूर्वदिशेकडे होती; व हे दर्भ इतके वाढले होते कीं, त्यांनीं सर्व पृथ्वीचें पृष्ठ आच्छादून गेलें. ह्या प्राचीनबर्हीनें प्रथम दीर्घकालपर्यंत अतिशय मोठें तप करून नंतर सवर्णा नामक समुद्रकन्येला आपली पत्नी केली. या सवर्णा नामक समुद्रकन्येला या प्राचीनबर्हीपासून दहा मुलगे झाले. हे सर्वही धनुर्विद्येंत मोठे निपुण असून त्या सर्वांनाही प्रचेतस् हेंच नांव होतें. तसेंच या दाही जणांचे आचारविचार एक जातीचेच असल्यामुळें त्या सर्वांनींच समुद्राच्या पाण्यांत राहून दहा सहस्र वर्षेपर्यंत मोठें कडक तपाचरण केलें. हे सर्व प्रचेतस् बंधू तपाचरणांत गुंतले असतां पृथ्वीवर कोणी देवरेख करणारा नाहीसा झाल्यामुळें सर्व पृथ्वीवर वृक्ष इतके माजले कीं, सर्वच जंगलमय होऊन जाऊन धान्यादिक पिकेनासें झालें. आणि सर्वत्र आकाश अत्युच्चवृक्षांनीं व्यापून गेल्यामुळें वाऱ्याला राहाण्यास रीघ नाहीशी होऊन प्राण कोंडल्यामुळें प्रजा पटापट मरूं लागली; व दहा सहस्र वर्षेपर्यंत प्रजेचे सर्व व्यापारच बंद पडल्यासारखे झाले. नंतर तपानें पूर्ण झालेले असे सर्व प्रचेते तप पुरें करून पृथ्वीवर आले व पृथ्वीची अवस्था पाहून त्यांना अत्यंत क्रोध आला. मग त्यांनीं आपले मुखापासून रागाचे आवेशांत वायु व अग्नि निर्माण केले. पैकीं वायूनें ते वाढलेले सर्व वृक्ष उलथून पाडून शुष्क करून टाकले. व अग्नीनें ते जाळून खाक केले. या रीतीनें वृक्षांचा बहुतेक फत्ता झाला. या प्रकारचा हा वृक्षक्षय चाललेला पाहून वृक्षांचा राजा जो सोमप्रजापति तो आतां कांहीं थोडेच वृक्ष राहिले आहेत असें पाहून, त्या प्रचेत्याकडे आला व म्हणाला, 'हे प्राचीनबर्हीच्या पुत्रांनीं, आतां आपला क्रोध

आंवरा; या अग्निवायूंनीं पृथ्वी बहुतेक वृक्षशून्य करून टाकली आहे, करितां आतां हे अग्नि व वायु शांत होऊं द्या; व पुढील भविष्य मला कळत असल्यामुळें मी ही रत्नासारखी दिव्य व अतिसुंदर अशीही मारिषा नांवाची वृक्षकन्या माझे गर्भांत धारण करून ठेविली होती. ही मी तुम्हांला देतो; हिला तुम्ही आपली बायको करा, व हिजपासून सोमवंशाचा विस्तार होऊं द्या. या कन्येच्या ठिकाणीं अर्धें माझे व अर्धें तुमचें अशीं तेजें मिळून दक्ष नांवाचा अग्नितुल्य तेजस्वी पुत्र होईल व तुमच्या तपस्तेजानें बहुतेक जळून गेलेल्या या पृथ्वीला पुन्हा संजीवन करून प्रजावृद्धि करील.

सोमाची ही प्रार्थना ऐकून त्या प्रचेत्यांनीं वृक्षांवरील आपला राग आंवरून ती वृक्षकन्या मारिषा हिशीं धर्मविधीनें लग्न लावलें. नंतर दाही प्रचेत्यांनीं मिळून त्या मारिषेच्या ठिकाणीं आपल्या मनोबलानें गर्भ स्थापित केला. याच गर्भाचे ठिकाणीं सोमानेंही आपल्या तेजाचा अंश घातला. मग या उभय तेजांच्या संयोगानें दक्षप्रजापति नांवाचा महातेजस्वी पुत्र उत्पन्न झाला. यानें सोम वंशाची वृद्धि करण्यासाठीं नाना जातींची अनेक सृष्टि निर्माण केली. त्यानें केवळ संकल्पमात्रानें अनेक स्थावर वस्तु, जंगमवस्तु, द्विपाद व चतुष्पाद ही निर्माण केले व नंतर मनोबलानेंच त्या त्या जातीच्या स्त्रियाही निर्माण केल्या. या स्त्रियांपैकीं त्यानें दहाजणी धर्मऋषींना दिल्या; तेरा कश्यपाला दिल्या व उरल्या साऱ्या नक्षत्र नांवाच्या त्या सोमराजाला दिल्या. या कन्यांपासून देव, खग, नाग, गाई, दैत्य, दानव, गंधर्व, अस्परा व अन्यही अनेक जाति निर्माण झाल्या; व ह्या वेळेपासून, हे राजा, स्त्रीपुरुषांच्या मैथुनसंबंधापासून प्रजा

उत्पन्न झाली. या वेळेपूर्वीची सृष्टि मात्र संकल्पापासून, दृष्टीपासून किंवा स्पर्शापासून उत्पन्न झालेली असे.

जनमेजय विचारतो:—आपण देव, दानव, गंधर्व, उरग, राक्षस, तसाच महात्मा दक्ष याची ही उत्पत्ति यापूर्वीच सांगितली. त्या वेळीं आपण असें सांगितलें कीं, दक्ष हा ब्रह्मदेवाच्या उजव्या अंगठ्यापासून निर्माण झाला. तशीच त्याची स्त्री ब्रह्मदेवाच्या डाव्या अंगठ्यापासून झाली. असें असून आतां आपण प्रचेत्यांपासून दक्ष झाला असेंही सांगतां, यामुळें मला मोठा घोटाळा पडला आहे. तरी हे ब्राह्मणश्रेष्ठा, ह्या माझ्या संशयाचा आपण उलगडा केला पाहिजे. दुसराही एक संशय आहे. तो असा कीं, हा दक्ष जर सोमानें स्वर्गर्भी धरलेल्या मारिषेचे ठिकाणीं निर्माण झाला म्हणजे अर्थातच सोमाचा हा दुहितृपुत्र किंवा नातु होता, तर त्या दक्षानेंच आपल्या नक्षत्रसंज्ञक कन्या आपला आज्ञा जो सोम त्याला देऊन त्याचा हा सासरा झाला या घोटाळ्याला काय म्हणावें ?

वैशंपायन उत्तर करितात:—हे राजा, अलीकडल्या नियमांप्रमाणें पाहातां तुझ्या शंका यथार्थ आहेत. कारण, सांप्रत उत्पत्तीचा नियम म्हणजे पश्चादिक ज्या तिर्यक्योनि आहेत, त्यांत प्रजोत्पादनाचे कामीं सहज प्रवृत्तीपलीकडे दुसरा निर्वैध नाही. परंतु मनुष्यांमध्ये संपिंडांतील मुलगींचे ठिकाणीं उत्पत्ति करूं नये; असा शास्त्राचा निरोध आहे, व हा सदैव कायम राहावा हें इष्टच आहे. तथापि सृष्टीच्या आरंभी जे ऋषि व ज्ञाते होऊन गेले त्यावेळीं त्यांना होईल तिकडून प्रजेची उत्पत्ति वाढविणें हीच गोष्ट मुख्य साध्य असल्यामुळें, प्रजा पुष्कळ वाढल्यानंतर ती अतिशय फाजील होऊं नये, या उद्देशानें मन्वा-

दिकांनीं घातलेले जे सापिंडादि कृत्रिमप्रतिबंध ते त्यावेळीं नव्हते. व यामुळेंच ही गोष्ट वेडेपणाची किंवा चुकीची होती असा ऋषि किंवा ज्ञाते लोक तरी त्यांवर आरोप करीत नाहीत. हे राजा, हे दक्षादिक सारे दर युगारंभीं नवीन निर्माण होऊन अशीच प्रजा वाढवीत सुटतात व पुढें प्रजा अनावर वाढली म्हणजे तिला आळा घालण्यासाठीं प्रतिबंधक नियम केले जातात. याप्रमाणें या नियमांतलें रहस्य ज्ञात्याला ठाऊक असल्यामुळें तो त्याला भुलत नाही. त्याचप्रमाणें, हे राजा, सृष्टीच्या आरंभीं आरंभीं वडील धाकुटपणाचा नियम हल्लींप्रमाणें व्यावर अवलंबून नव्हता. जो तपानें किंवा प्रभावानें अधिक तोंच वडील असा तेव्हांचा नियम असे.

असो; दक्षाचीही वर सांगितलेली चराचर सृष्टि कशी झाली हें जो जाणतो त्याचीं या लोकीं संकटें दूर होऊन त्याला पुष्कळ संतति होईल व स्वर्गलोकीं त्याचा बहुत गौरव होईल.

## अध्याय तिसरा.

—०:—

### मरुतांची उत्पत्ति.

जनमेजय विचारतो:—हे वैशंपायना, देव, दानव, गंधर्व, सर्प, राक्षस, इत्यादिकांची उत्पत्ति विशेष विस्तारानें सांगा.

वैशंपायन सांगतात:—हे राजा, पूर्वी ब्रह्मदेवानें दक्ष प्रजापतीला ‘ तूं आतां प्रजा निर्माण कर ’ अशी आज्ञा दिली असतां त्यानें कसकशी सृष्टि निर्माण केली, ती ऐक. त्या समर्थ दक्षानें ऋषि, देव, गंधर्व, असुर, राक्षस, यक्ष, भूत, पिशाच, पक्षी, पशु व सर्पादि हे सर्व मनापासूनच उत्पन्न केले; परंतु दक्षाचें व शंकराचें वांकडें असल्यामुळें

त्यानें ही प्रजा वाढूं नये असा संकल्प केल्यानें ही मानससृष्टि पुढें प्रजावृद्धि करूं शकेना; तेव्हां आतां प्रजावृद्धि कशी करावी अशा मोठ्या विवंचनेत दक्ष पडला असतां मैथुन-धर्मानें सृष्टि वाढविण्याची तोड त्याला सुचली. मग त्यानें वीरण प्रजापतीची कन्या असिकनी नांवाची होती, तिला आपली पत्नी केली. ही असिकनी विपुल प्रजा धारण करण्याविषयीं समर्थ अर्थात् अत्यंत सशक्त व मोठी तपस्विनी होती. दक्ष प्रजापतीही मोठा वीर्यवान् असल्यामुळे त्यानें स्वतःच असिकनीचे ठिकाणीं पांच हजार पुत्र निर्माण केले. पुढें हे पांच सहस्र पुत्र दक्षाप्रमाणेंच प्रत्येकजण झपाट्यानें प्रजावृद्धि करणार असें पाहून बातमी देण्यांत कुशल देवर्षि नारद हा त्यांचा नाश करण्याकरितां व स्वतःला शापप्राप्ति करून घेण्यासाठींच कीं काय, त्यांना पुढीलप्रमाणें बोलला.

आतां हा नारद म्हटला म्हणजे दक्षाच्या शापभयास्तव मुनिश्रेष्ठ कश्यपानें दक्षाच्या असिकनी नामक पत्नीची धाकटी बहिण जी वीरणी तिचे ठायीं पुन्हा उत्पन्न केलेला पुत्र होय. पुन्हा म्हणण्याचें कारण प्रथम नारद हा ब्रह्मदेवानें आपला मानसपुत्र म्हणून उत्पन्न केला होता. असो; या नारदानें हर्यश्च नांवानें प्रख्यात असलेले दक्षाचे सर्व पुत्र सशास्त्र युक्तीनें फसवून संसारांतून उठवून लाविले. ही गोष्ट नारदानेंच खास केली अशी बातमी जेव्हां अतुल पराक्रमी दक्षाला समजली, तेव्हां तो नारदाचा नाश करण्याविषयीं उद्युक्त झाला. हें कानीं येतांच परमेष्ठी म्हणजे ब्रह्मदेव हा बडी बडी ऋषिमंडळी मध्यस्थीकरितां बरोबर घेऊन दक्षाकडे आला; व त्यांचे मध्यस्थीनें दक्षाचा व ब्रह्मदेवाचा गोडीगुलाबीनें करार ठरला. तो असा कीं, दक्षानें आपली कन्या ब्रह्मदेवास द्यावी व ब्रह्मदेवानें तिचे ठायीं

पुन्हा नारद उत्पन्न करावा. मग या कराराप्रमाणें दक्षानें आपली एक कन्या ब्रह्मदेवाला दिली व ब्रह्मदेवानेंही दक्षाच्या शापभयास्तव पुन्हा तिचे ठिकाणीं नारद उत्पन्न केला.

जनमेजय विचारतो:—हे वैशंपायना, नारदानें दक्षप्रजापतीचे पुत्र संसारांतून फुकट घालविले म्हणून जें आपण वर सांगितलें, ते कसकशा रीतीनें तें मला सविस्तर सांगा.

वैशंपायन उत्तर करतात:—दक्षाचे महापराक्रमी पुत्र प्रजेची विशेष वृद्धि करण्याच्या नादांत आहेत अशांत त्यांची व नारदाची सहज गांठ पडली.

तेव्हां नारद त्यांना म्हणाला:—मला तुम्हीं फार मूर्ख दिसतां; कारण, तुम्हीं प्रजा वाढविण्याचें मनांत आणिलें खरें, परंतु ज्या या पृथ्वीवर राहून तुमच्या प्रजेला उदरभरण करावयाचें ती पृथ्वी किती विस्तृत आहे, खालीं वर चोहोबाजूनीं तिचा परिघ केवढा आहे, म्हणजे प्रजा फाजील झाली असतां तिचे धारणपोषणाला ही पृथ्वी समर्थ होईल कीं नाही, याचा अंदाज काढण्यापूर्वींच तुम्ही प्रजावृद्धि करूं पाहातां. नारदाचें हें बोलणें त्या दक्षपुत्रांना खरें वाटलें व त्याचे सूचनेचा अंगीकार करून पृथ्वीचें प्रमाण शोधण्याकरितां ते निरनिराळ्या दिशांकडे चालते झाले. ते आपल्या कामास इतक्या उत्कंठेनें लागले कीं, त्यांनीं अन्नपाणीही टाकलें. पुढें वायुभक्षणही सोडिलें; व अखेरीस समुद्र शोधूं गेलेल्या नदीप्रमाणें ते गेले ते परत आलेच नाहींत.

१ या श्लोकांचा चतुर्थरानें अध्यात्मपर अर्थ केला आहे व तोही उत्तम आहे; तो असा:—नारद ला दक्षपुत्रांस म्हणाला कीं, तुम्ही संतानवृद्धि करूं निघालां खरे; पण हा प्रपंच किंवा हें तुमचें शरीर ज्याच्या ( पुढें चालू. )



पुत्रांची याप्रमाणें वाट झालेली पाहून दक्ष प्रजापतीनें आपल्या पहिल्या वीरणीसंज्ञक स्त्रीचे ठिकाणीं पुनरपि एक हजार मुलगे उत्पन्न केले. या सर्वांना शबलाश्च असें म्हणत. यांनाही नारदानें त्यांच्या वडील बंधूप्रमाणेंच कानमंत्र सांगून संसारांतून उठवून लाविलें. नारदानें ज्या वेळीं त्यांना उपदेश केला त्या वेळेस त्यांनाही ती गोष्ट रुचून ते परस्परांत म्हणाले, “नारदाचें म्हणणें वाजवी आहे. पृथ्वीचें प्रमाण किती आहे व आपल्या वडील बंधूंची वार्ता काय झाली याचा आपण अगोदर शोध लावून येऊं, आणि मग खुशाल संतति वाढवीत बसूं.” असा संकेत झाल्यावर तेही स्वस्थ मनानें व एकच मुद्दा डोळ्यांपुढें ठेवून क्रमाक्रमानें त्यांचे पूर्वज बंधु ज्या मार्गांनीं दाही दिशा फांकले होते त्याचप्रमाणें शोधार्थ गेले, व समुद्रास मिळालेल्या नदी-प्रमाणें पुन्हा परतले नाहींत. याप्रमाणें दुसऱ्याही पोरानाची नारदानें वाट लावलेली पाहून दक्षानें संतापून नारदाला शाप दिला कीं, तुझा नाश होईल व तूं गर्भवासाच्या दुःखांत पडशील. (या शापबलामुळेच नारदाला पुन्हा जन्म घ्यावे लागले, असें दिसतें.)

हे राजा, याप्रमाणें बंधूंच्या शोधार्थ गेलेले शबलाश्च परत आले नाहींत त्या दिवसापासून कोणीही बंधू आपल्या हरवलेल्या

( मागील पानावरून पुढें चालू. )

बलावर उभें राहिलें आहे, त्याचा प्रथम तुम्हीं शोध केला काय ? तुम्हास आंत, बाहेर, खालीं, वर व्यापून काय राहिलें आहे, हें शोधिलेंत काय ? ह्या प्रश्नावरोबर ते दक्षदिशा आत्मशोधनार्थ गेले, व तेथें पवनभक्षण देखील वज्र करीतों तीव्र तपस्या करून परमात्मरूपांत मिळाल्यामुळे समुद्रास मिळालेल्या नदीप्रमाणें अद्यापि परतले नाहींत.

बंधूंच्या शोधार्थ गेला असतां बहुधा तत्काळ मरतो व याकरितां शहाण्यानें असली गोष्ट करूं नये.

हे दुसऱ्या वेळीं उत्पन्न केलेले पुत्रही नायनाट झाले असें पाहतांच, आमचे असें ऐकिवांत आहे कीं, त्या दक्ष प्रजापतीनें पुनरपि आपल्या वीरणी स्त्रीचे ठिकाणींच साठ कन्या निर्माण केल्या; व, हे कुरुश्रेष्ठा, या साठही मुली कश्यप, सोम, धर्म व दुसरेही कांहीं महर्षि यांनीं वरल्या. त्यांची गणती येणेंप्रमाणें: दक्षानें त्यांतील दहा धर्मऋषीला दिल्या; तेरा कश्यपाला दिल्या; सत्तावीस सोमाला; चार अरिष्टनेमीला; दोन भृगुपुत्राला; दोन अंगिरसाला; व दोन जो विद्वान् कृशाश्च त्याला. आतां या मुलींचीं नांवें मी तुला सांगतों तीं ऐक. अरुंधती, वसु, यामी, लंबा, भामु, मरुत्वती, संकल्पा, मुहूर्ता, साध्या व विश्वा. याप्रमाणें या दहाजणी धर्मऋषींच्या पत्नी झाल्या. आतां या दहाजणींची संतति ऐक. विश्वेपासून विश्वेदेव झाले; साध्येपासून साध्य झाले; मरुत्वतीपासून मरुवंत झाले; वसुपासून वसू झाले; भानूपासून भानू झाले; मुहूर्तेपासून मुहूर्त झाले; घोष नांवाची जी मंत्राभिमानिनी देवता ती लंबेपासून झाली. नागवीथी नामक जी स्वर्गमार्गाभिमानिनी देवता ती यामीपासून झाली. अरुंधतीपासून पृथ्वीविषयक पशु, औषधि वगैरे झालीं. संकल्पेपासून सर्वींच्या मानसांत राहाणारा जो संकल्प तो झाला. यामीची कन्या जी नागवीथी तिजपासून वृषलंबा झाली. हे राजा, प्राचेतस् दक्षानें सोमाला ज्या नक्षत्र-संज्ञक सत्तावीस मुली दिल्या, त्यांचीं विशिष्ट नांवें (अश्विनी, भरणी, वगैरे) ज्योतिषशास्त्रांत प्रसिद्धच आहेत. आतां विशेष कीर्तिमान् व दीप्तिमान् जे आठ वसु म्हणून म्हटले आहेत त्यांचें मीच थोडेंसे विस्तारानें वर्णन सांगतों.

आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्युष व प्रभास अशीं त्या आठांचीं नांवे आहेत. यांपैकी आपाला वैतंड्य, श्रम, शांत व मुनि; ध्रुवाचा पुत्र लोकध्वंसन करणारा भगवान् काल; सोमाचा पुत्र भगवान् वर्चा (यापासून मनुष्य वर्चस्वी होतात), यज्ञांतील हुतद्रव्य वाहून नेणारा जो द्रविण तो धराचा पुत्र. धरालाच मनोहरा म्हणून दुसरी स्त्री होती. तिजपासून शिशिर, प्राण व रमण झाले. अनिल वसूची भार्या शिवा नामक होती. तिजपासून मनोजव व अविज्ञातगती असे दोन पुत्र अनिलाला झाले. अग्निवसूचा पुत्र कुमार, हा मोठा तेजस्वी असून शर नामक तृणाच्या झुडुपांत जन्मास आला. त्याच्या पाठीवर शाख, विशाख व नैगमेय असे भाऊ झाले. एकूण हे चार अग्नीचे म्हणजे अनलवसूचे पुत्र. यांपैकी या कुमारालाच कार्तिकेय असेही नांव आहे. कारण हा सहा कृत्तिकांपासून ( एकेकीने एक मुख व दोन हात याप्रमाणे देऊन ) झाला होता. यालाच स्कंद किंवा सनत्कुमार म्हणतात. हा अग्नीने आपल्या तेजाच्या चतुर्थांशापासून उत्पन्न केला. प्रत्यूषाला देवल नामक ऋषि झाला, अशी प्रख्याति आहे. या देवलालाही मोठी क्षमाशील व मोठी तपस्वी अशीं दोन अपत्ये होती. एक पुत्र व एक कन्या. योग-सिद्धा नामक एक अत्यंत सुंदर व बहुतकाळ ब्रह्मचर्य वृत्तीने राहाणारी बृहस्पतीची बहिण होती. ही विरक्त वृत्तीने पृथ्वीपर्यटन करित असतां वसंतला आठवा जो प्रभास त्याची स्त्री झाली, व तिचे ठिकाणीं प्रभासाने विश्वकर्मा नांवाचा महा-भाग्यवान् पुत्र उत्पन्न केला. हा विश्वकर्मा हजारों जातींच्या शिल्पांचा व भूषणांचा निर्माणकर्ता असून संपूर्ण शिल्पवेद्यांत वरिष्ठ होय. देवांचा कारागीर हाच, त्या सर्वांचीं विमानें त्यानेच बनविलीं व या थोर कल्पक पुरुषाने

निर्माण केलेल्या शिल्पशास्त्रावर अद्यापि अनेक मनुष्य पोट भरीत आहेत. आतां कश्यपाला दक्षाने ज्या तेरा मुली दिल्या त्यांपैकीं सुरभी नांवाची जी कन्या होती, ती तपाचरणाने अत्यंत शुद्ध झाली असून शिवाय शंकराची तिजवर पूर्ण कृपा असल्यामुळे तिचे ठिकाणीं कश्यपापासून एकादश रुद्र निर्माण झाले. त्यांचीं नांवेः—अजैकपात्, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, हर, बहुरूप, व्यंबक, अपराजित, वृषाकपी, शंभु, कपर्दी व रैवत. असे हे तिन्ही भुवनांवर सत्ता चालविणारे एकादश रुद्र सांगितले आहेत.

यांशिवाय मृगन्याय, सर्प, कपाली, इत्यादि इत्यादि मिळून शेंकडों, हजारों रुद्र, जे चराचर सृष्टीला व्यापून राहिले आहेत, असे पुराणांत सांगितले आहेत.

हे भरतश्रेष्ठा, आतां कश्यपाच्या तेराही स्त्रियांचीं नांवे ऐक. अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, खशा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रु व मुनि. आतां यांचीं अपत्ये ऐक. मागील मन्वंतरांत तुषित नांवाचे कोणी बारा देव होते. ते अत्यंत यशस्वी असे जे चाक्षुष मन्वंतर ते संपावयाचे सुमारास प्राणिमात्मांची हितवृद्धि मनांत धरून सर्वजण एकत्र मिळून परस्परांस म्हणाले, “चला, आपण विलंब न करितां अदितिचे गर्भांत शिरूं व पुढील मन्वंतरांत जन्मास येऊं. यांतच आपलें कल्याण आहे.”

वैशंपायन सांगतातः—याप्रमाणें चाक्षुष मन्वंतराचे अखेरीस संकेत करून ते बाराहीजण वैवस्वत मनु प्राप्त होतांच दक्षकन्या जी अदिति तिचे ठिकाणीं मरीचिपुत्र कश्यपाचे वीर्याने द्वादशादित्य संज्ञेनें जन्मास आले. यांचीं नांवेः—विष्णु, इंद्र, अर्यमा, धाता, त्वष्टा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण,

अंशु व अतितेजस्वी भग असे हे बारा. पूर्वी चाक्षुष मन्वंतरांत जे बारा तुषितसंज्ञक देव सांगितले तेच हे द्वादशादित्य हैं वर सांगितलेच आहे. आतां सोमाच्या ज्या पतिपरायण सत्तावीस तेजस्वी स्त्रिया सांगितल्या त्यांना त्यांच्याप्रमाणेंच अत्यंत तेजस्वी अनेक अपत्यें झालीं. अरिष्टनेमीच्या स्त्रियांना सोळा मुलें झालीं. बहुपुत्राला विद्युत्, अशनि, मेघ व इंद्रधनु अशीं चार अपत्यें झालीं. आपलें मूळचें आंगिरस कूळ सोडून अन्यत्र गेलेला जो शौनक त्यापासून उत्पन्न झालेल्या ब्रह्म-ऋषींलाही मान्य ज्या ऋचा त्या आणि कुशाश्व नामक राजर्षि यांच्या संयोगापासून देवांचीं आयुधें निर्माण झालीं.

बा जनमेजया, वर सांगितलेले हे सर्व देवगण सहस्रयुगांचे अंती पुनरपि याचप्रमाणें जन्मास येतात. यांपैकीं फक्त तेहतीस देव मात्र आपखुषीनें जन्मास येतात. एवंच, या देव म्हणविणारांना देखील उत्पत्ति व लय ही आहेतच. ज्याप्रमाणें इहलोकीं सूर्य नित्य उगवतो व मावळतो, त्याचप्रमाणें हे देवतांचे समुदाय युगायुगांचे आरंभी उत्पन्न होतात व अंती लयास जातात.

आम्हीं असें ऐकितों कीं, हिरण्यकशिपु व हिरण्याक्ष असे दोन बलाढ्य पुत्र कश्यपापासून दितीला झाले. यांशिवाय तिला सिंहिका नांवाची कन्या होती व ती विप्रचितीला दिली होती. हिला सैहिकेय नांवाचे महाबलिष्ठ पुत्र झाले, त्यांच्या अनुयायांसह त्यांची गणना केली असतां दहा हजार होती, असें सांगण्यांत येतें. या सैहिकेयांचे पुत्रपौत्र यांची गणती

करूं गेल्यास ती शेंकडोंनीं, हजारोंनीं किंवाहुना असंख्यातांनींच करावी लागेल. हिरण्यकश्यपूला महान् तेजस्वी चार पुत्र होते, त्यांचीं नांवें: अनुन्हाद, न्हाद, प्रन्हाद ( जगत्प्रसिद्ध तोच ) व चवथा पुत्र संन्हाद. यांपैकीं न्हादाला न्हाद नामक पुत्र होता; संन्हादाला सुंद व निसुंद असे दोघे होते; अनुन्हादाचे आयु, शिबी व काल असे तीन; प्रन्हादाला विरोचन नामक एकच पुत्र होता. विरोचनाला सर्व प्रख्यात बलिझाला. या बलीला, हे राजा, शंभर पुत्र होते. त्यांचीं नांवें:—धृतराष्ट्र, सूर्य, चंद्रमा, इंद्रतापन, कुंभनाभ, गर्दभाक्ष, कुक्षि, वगैरे, वगैरे. या सर्वांत जो वडील होता त्याचें नांव बाण. हा अत्यंत बलिष्ठ असून शंकराचा प्रिय भक्त होता. कारण, पूर्वकल्पांत या बाणानें उमापति जो शंकर त्याची कृपा संपादून असा वर मागून घेतला होता कीं, मी सदा आपल्या ( शंकराच्या ) पाठीशीं असावें.

या बाणाला लोहिता नामक स्त्रीपासून इंद्रदमन नांवाचा पुत्र झाला. हा इतका पराक्रमी झाला कीं, शेंकडों नव्हे लाखों असुर त्याचे अनुयायी बनले. हिरण्याक्षाला मोठे विद्वान् व बलाढ्य असे पांच पुत्र होते; त्यांचीं नांवें:—झर्झर, शकुनि, भूतसंतापन, महानाभ व कालनाभ. दनूला अत्यंत तीव्र पराक्रमी असे शंभर पुत्र झाले. हे सर्व तपस्वी व महाबलाढ्य होते; यांचीं नांवें यांच्या महत्वाच्या मानानें यथाक्रम सांगतों, तीं अशीं:—द्विमूर्धा, शकुनि, शंकुशिर, विभु, शंकुकर्ण, विराध, गवेष्टी, दुंदुभी, अयोमुख, शंबर, कपिल, वामन, मरीचि, मधवा, इरा, शंकुशिरा, वृक, विक्षोभण, केनु, केतुवीर्य, शतन्हाद, इंद्रजित्, सत्यजित्, वज्रनाभ, महानाभ, विक्रांत, कालनाभ, एकचक्र, महाबाहु, तारक, महाबल, वैश्वानर, पुलोमा, विद्रावण, महासुर, स्वर्भानु,

१ हे तेहतीस म्हणजे आठ वसु, अकरा रुद्र, बारा आदित्य, एक इंद्र आणि एक प्रजापति. यांवरूनच तेहतीस कोटी देव असा लौकिकी समज झालेला दिसतो.

वृषपर्वा, तुहुंड, सूक्ष्म, निचंद्र, ऊर्णनाभ, महागिरी, असिलोमा, केशी, शठ, बलक, मद, गगनमूर्धा, बलाढ्य कुंभनाभ, प्रमद, मय, कुंभ, हयग्रीव, वैसृप, विरूपाक्ष, सुपथ, हर, अहर, हिरण्यकशिपु, शतमाय, शंबर, शरभ, शलभ, व वीर्यवान् विप्रचित्ति, इत्यादि, इत्यादि. हे सर्वहीजण कश्यपापासून दनु नामक स्त्रीला झाले. म्हणून यांस दानव म्हणतात. या सर्वांत विप्रचित्ति हा वरिष्ठ होता, बाकी सर्वच बलाढ्य होते. हे नरश्रेष्ठां, या शंबर बंधूना झालेलीं मुलें व त्या मुलांचीं मुलें यांची गणना करण्याची सोयच नाही. तीं केवळ असंख्य होतीं असें समज. स्वर्भानूला प्रभा नांवाची मुलगी होती. पुलोमाला तीन मुली होत्या. हयशिराला उपदानवी व वृषपर्व्याला शर्मिष्ठा नामक कन्या होती.

वैश्वानराला पुलोमा व कालिका अशा दोन मुली होत्या. या फार बळकट असून यांना मुलेंही फार झालीं. या दोघी मरीचिपुत्र जो मारीचि याला दिल्या होत्या. हा मारीचि मोठा तपस्वी असल्यामुळें त्यानें या स्त्रियांपासून साठ हजार पुत्र निर्माण केले. यांशिवाय त्यानें दुसरे चवदाशें पुत्र निर्माण केले होते. यांतील कांहींना पौलोम ( पुलोमेचे पुत्र ) व बाकी-च्यांना कालकेय ( कालिकेचे पुत्र ) अशी संज्ञा होती. हे सर्वच मोठे बलाढ्य असून त्यांनीं हिरण्यपुरांत वस्ती केली होती. शिवाय, ' देवतांपासून तुम्हांला मरण नाही ' असा ब्रह्मदेवांनीं त्यांना वर दिला होता. अखेरीस सव्यसाचीनें ( अर्जुनानें ) यांस युद्धांत मारिलें. प्रभेला नहुष नांवाचा पुत्र झाला. पुलोमेच्या मुलींतील शचि जी तिला संजय नामक पुत्र झाला. शर्मिष्ठेला पुरु व उपदानवीला दुष्यंत झाला. नंतर पूर्वी सांगितलेली विप्रचित्ति दानवाची स्त्री जी सिंहिका तिला सैहिकेय नांवाचे तेरा मुलगे

झाले, म्हणून पूर्वी सांगितलेंच आहे. आई दैत्य व बाप दानव अशा मिलाफापासून हे तेरा बंधु झाले असल्यानें हे मोठे बलाढ्य, तीव्र पराक्रमी व अतिदारुण असे निपजले. यांचीं नांवें:—व्यंश, शल्य, नभ, वातापि, नमुचि, इल्वल, खसृम, अजिक, नरक, कालनाभ, शुक, पोतरण व बलाढ्य वज्रनाभ. चंद्रसूर्याला चिरडून टाकणारा जो सिंहिकापुत्र राहू तो या सर्वांचा वडील बंधु. व्हादाला मूक व तुहुंड असे दोन पुत्र झाले. सुंदाला ताटकेच्या ठिकाणीं मारीच व केवळ देवतुल्य पराक्रमी असा शिवमाण नांवाचा दुसरा एक पुत्र झाला. हे राजा, दनूचा वंश वाढविणारे जे मुख्य मुख्य ते हे:—यांचे पुढें पुत्रपौत्र शेंकडों हजारोंच झाले. निवातकवच नांवाचे जे मोठे तपस्वी व आत्म-ज्ञानी दैत्य निर्माण झाले ते सर्व संव्हादाचे झाले. हे निवातकवच मणीमती नगरींत रहात असत. हे देवांनाही अजिक्य असत. परंतु अर्जुनानें या सर्वांचा फडशा पाडला. यांना तीन कोट संतति झाली होती. ताम्रा नामक जी कश्यप स्त्री होती तिला मोठ्या सशक्त अशा सहा मुली झाल्या. त्यांचीं नांवें:—काकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, शुचि व गृध्रिका. यांपैकीं काकीपासून काक ( कावळे ) झाले; उलूकीपासून उलूक ( दिवाभीत ); श्येनीपासून श्येन ( ससाण ); भासीपासून भास ( कोंबडे ); गृध्रीपासून गृध्र ( गिधाड ); शुचीपासून पाण्यांतील पक्षी ( पाणपांखरे ), व सुग्रीवीपासून घोडे, उंट, गाढवें; याप्रमाणें ताम्रेचा वंश सांगितला आहे.

विनतेला अरुण व गरुड असे दोन पुत्र आरुण झाले. यांपैकीं गरुड हा सर्व पक्ष्यांत श्रेष्ठ असून त्याच्या पराक्रमाचा सर्वांना मोठा वचक

१ हिशोबानें पाहतां राहूचे नांव बरील तेरांत असावें, परंतु मुळांत तसें नाहीं; कदाचित् बरील नांवापैकींच पखाद्याला नामान्तर असलें तर नकळे.

आहे. सुरसेला अत्यंत तेजस्वी व अनेक मस्तकांचे असे भुईवर सरपटणारे व आकाशांत भ्रमणारे सहस्र पुत्र झाले. तसेच अपरिमित तेजांने युक्त, मोठे बलवान्, अनेक मस्तकें धारण करणारे व गरुडाच्या ताब्यांत राहाणारे असे नागजातींचे सहस्र पुत्र कद्रूला झाले. यांतील प्रमुख प्रमुखांचीं नांवे:—शेष, वासुकि, तक्षक, ऐरावत, महापद्म, कंबल, अश्वतर, एलापत्र, शंख, कर्कोटक, धनंजय, महानील, महाकर्ण, धृतराष्ट्र, बलाहक, कुहर, पुष्पदंष्ट्र, दुर्मुख, सुमुख, शंख, शंखपाद, कपिल, वामन, नहुष, शंखरोमा, माणि, इत्यादि, इत्यादि. यांच्या पुत्रपौत्रांपैकीं क्रूर असे चौदा हजार नाग सर्पांवर उपजीविका करणाऱ्या गरुडांने लोळवून खाऊन फस्त केले, व यामुळे सर्व तीक्ष्ण दंतांनीं युक्त असे हे नाग गरुडावर जळफळत असतात. दंतयुक्त स्थलचर व पाण्यांतील पक्षी ही घरेची संतति समजावी. सुरभीनें गाई व म्हशी निर्माण केल्या. इरा नामक स्त्रीनें वृक्ष, वेली, लता व तृणाच्या सर्व जाती यांस जन्म दिला. खशेच्या पोटी राक्षस, यक्ष, मुनि व अप्सरा जन्मलीं. अरिष्टेनें मोठे बलवान् व अमित तेजस्वी अशा गंधर्वांस जन्म दिला. याप्रमाणें कश्यपाच्या वीर्यांशानें झालेली सर्व स्थावरजंगम सृष्टि तुला सांगितली. हिजपासून पुढें जी पुत्रपौत्रादि संतति झाली ती असंख्यच.

हे जनमेजया, येथवर जी ही मीं तुला सर्व सृष्टि सांगितली ती सर्व स्वारोचिष मन्वंतरांतील होय. आतां वैवस्वतांतील सांगतों. या वैवस्वत मनूच्या आरंभीं वरुणानें दीर्घकालपर्यंत यज्ञ केला. त्यांत ब्रह्मदेवाला आर्त्विज्य दिलें होतें, त्या समयीं ब्रह्मदेवानें हवन केलें. त्या वेळेपुढची ब्रह्मदेवाची सृष्टि मी आतां तुला सांगतों. आरंभीं ब्रह्मदेवानें आपल्या

मनापासून सात ब्रह्मऋषि निर्माण केले व तेच आपले पुत्र असे मानिले. हे जनमेजया, देवदानवांचा संगर होऊन सर्व दानव मारले गेले. त्यावेळीं कश्यपाची स्त्री दिति ही अपत्यहीन झाल्यामुळे पुन्हा आपला पति कश्यप याची तिनें आराधना चालविली. नंतर तिच्या सेवेनें कश्यप अतिशय संतुष्ट होऊन “ तुला वाटेल तो वर मागून घे ” म्हणून मोठ्या गोडीनें व लाडानें तिला म्हणाला. पतीची प्रसन्नता पाहून तिनेंही वर मागितला. तो असा कीं, इंद्राचा वध करण्यास सर्वथा समर्थ असा अत्यंत तेजस्वी पुत्र मला द्यावा. कश्यप ऋषि महातपस्वी असल्यामुळे असलाही वर देणें त्यास अवघड न वाटतां, ते स्वस्थ मनानें तिला म्हणाले, “ हे प्रिये, तूं मागते आहेस तसला म्हणजे इंद्राला मारणारा पुत्र तुला खचित होईल. परंतु या कामीं तुला दोन गोष्टी पाळाव्या लागतील. त्या अशा:—‘एक तर तुला हा गर्भ शंभर वर्षेपर्यंत पोटांत बाळगावा लागेल व दुसरी गोष्ट हा सारा वेळ तुला अनन्यवृत्तीनें व अत्यंत पवित्रतेनें व्रतस्थ राहावें लागेल.’ भर्त्याच्या या शब्दांस तिनें तत्काल रुकार दिला; व हे राजा, त्या पवित्र स्त्रीला त्या महातपस्वी कश्यपानें तिचे इच्छेनुरूप गर्भ दिला. गर्भ स्थापन करण्याचे वेळीं कश्यपांनीं ज्याच्या तेजाला मिति नाही व जो सर्व गणांत वरिष्ठ व देवांनाही अमर अशा पुरुषाचें एकाग्रतेनें चिंतन करून त्याचें दुर्निवार्य असें तेज आपल्या वीर्यांत आणून तें तेज दितिचे गर्भांत स्थापन केलें. गर्भस्थापना होतांच तो कर्मठ ऋषि तपश्चर्येसाठीं पर्वतावर निवून गेला. इकडे पाकशत्रु जो इंद्र तो दिति

१ ही गोष्ट म्हणजे पौराणिक बाड नव्हे. ही सर्वथा शास्त्रयुक्त व अनुभव यांनीं प्रस्थापित आहे व प्रत्येक दंपत्यानें ध्यानांत ठेवील्यास खरोखर उंची संतति निपजेल.

भग्नव्रत केव्हां होते हैं पाहाण्यासाठीं डोळ्यांत तेल घालून टपणीस बसला. बहुत वर्षें त्याला कोठेंच व्रतभंग दिसेना. परंतु शंभरावें वर्ष भरण्याच्या कांहींसें अगोदर त्याला तिच्या आचरणांत एक छिद्र सांपडलें. तें असें कीं, एक रात्री ती हातपाय न धुतां तशीच आंथरुणावर जाऊन निजली. एवढी फट सांपडतांच इंद्र तत्काळ तिच्या कुशींत ( तिच्या पोटांत ) शिरला व तिला त्यानें अत्यंत गाढ अशी झोंप आणिली.

मग ती निद्रेचे भरांत बेशुद्ध असतां इंद्रानें आपल्या वज्रानें तिच्या एका गर्भाचे सात तुकडे केले. इंद्र जेव्हां त्या गर्भाचे तुकडे करूं लागला, तेव्हां तो गर्भ रडूं-ओरडूं लागला. त्या वेळीं इंद्र त्या गर्भाला गप बस, रडूं नको, म्हणून पुनःपुनः दरडावून सांगूं लागला, तों तों तो गर्भ अधिकच केकाटूं लागला. त्या वेळीं इंद्रानें संतापून आपल्या वज्रानें त्या पहिल्या सात खांडांपैकीं पुनः प्रत्येक गर्भाचीं सात सात खांडें म्हणजे एकूण मूळच्या एक गर्भाचे एकूणपन्नास गर्भ केले. पुढे हे एकूणपन्नास गर्भ मरुत या नांवानें प्रसिद्ध झाले. इंद्रानें त्यांस गर्भांत “ मा रुद्र ” म्हणजे रडूं नको, रडूं नको, असें म्हटलें होतें म्हणून यांस मरुत हें नांव पडलें, व हे सर्व इंद्राचे शत्रु न होतां उलट त्याचे साहाय्यकर्ते झाले.

सारांश, एकाचे एकूणपन्नास या श्रेढीनें जेव्हां प्रजा वाढत चालली, त्या वेळीं परमात्मा जो हरि यानें इंद्राला खूष करण्यासाठीं, लोकसंख्येचे पृथक् पृथक् विशिष्ट समूह करून एकेका समूहाला एकेक प्रजापालक म्हणजे राजा नेमून देऊन सर्वांचीं वेगळीं वेगळीं राज्यें स्थापन केलीं. या राजांत पृथु हा पहिला राजा होता. असो; याप्रमाणें प्रजेची व्यवस्था लावणारा जो हा हरि तोच परमपुरुष होय.

हे राजा, यालाच वीर, कृष्ण, जिष्णु, प्रजापति, पर्जन्य, सूर्य असेंही म्हणतात. किंवा ह्या हें साकार जगत् त्याचेंच किंवा तोच आहे.

हे भरतश्रेष्ठा, ही वर सांगितलेली प्राण्यांची उत्पत्ति व विशेषतः मरुत देवांचें शुभ जन्म हें जो श्रवण किंवा पठण करील अथवा यांचें सम्यक् ज्ञान करून घेईल त्याला पुनर्जन्माची देखील भीति नाही, मग परलोकाची कोठून असणार ?

## अध्याय चवथा.

—:—

### पृथुचें उपाख्यान.

हे राजा, पितामह ब्रह्मदेव यानें मागें सांगितल्याप्रमाणें वेनपुत्र पृथु याला सर्वांत श्रेष्ठ अशा राज्यावर अभिषिक्त करून त्याजकडे पूर्ण मालकी सोंपविल्यावर उरलेल्या भिन्न भिन्न भूतसमूहांच्या राज्यांवर अधिपति नेमण्याचा क्रम चालविला. तो असाः—पक्षि, लता, नक्षत्रें, ग्रह, यज्ञ व तप इतक्यांचें आधिपत्य सोमाकडे दिलें. जलांचें आधिपत्य वरुणाकडे दिलें; यक्षांचें श्रेष्ठत्व कुबेराकडे दिलें; विश्वेदेवांचें स्वामित्व अंगिरस कुलोत्पन्न बृहस्पतीकडे दिलें व शुक्राचार्यांस भृगुकुलाचें आधिपत्य दिलें. द्वादशादित्यांत विष्णूला श्रेष्ठत्व दिलें, व अष्टवसूंत षावकाला, मुख्य केलें, सर्व प्रजापतींचा मुख्य दक्ष प्रजापति केला, मरुद्गणांचें नायकत्व इंद्राकडे दिलें; अमित तेजस्वी जो प्रह्लाद त्याला दैत्य व दानव या उभय कुलांचा

१ नक्षत्राणामहंशशी । गीता, १०-२१.

२ वित्तेशो यक्ष रक्षसां । गीता, अ. १०-२३.

३ आदित्यानामहं विष्णुः । गीता, १०-२१.

४ वसून्नापावकश्चास्मि । गीता, १०-२३.

५ प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानाम् । गीता, १०-३०.

अधिपति केलें. पितरांचे राज्यावर सूर्यपुत्र यमधर्म याला स्थापिलें. अष्टमातृका, व्रतें, मंत्र, गाई, यक्ष, राक्षस व पृथ्वीपाल यांचें आधिपत्य नारायणाकडे दिलें. साध्य व रुद्र यांचें स्वामित्व वृषभध्वज जो शंकर त्याज-कडे दिलें. दानव समूहाचे नायकत्व विप्रचिक्ती-कडे दिलें. शूलपाणी शंकर यास भूतपिशाच्चांचा अधिपति नेमिलें. सर्व पर्वतांत हिमालयाला अग्रस्थान दिलें. नदांचें पतित्व सागराकडे ठेविलें. गंध, मरुद्गण, प्रेतादिक, ध्वनि, अंत-रिक्ष व पृथ्वी यांवर बलिष्ठ वायूला अग्नीश नेमिलें. बलवान् चित्ररथाला गंधर्वांत वरिष्ठ केलें, नागांत वासुकीला व सर्पांत तक्षकाला स्वामित्व दिलें. हत्तींचें अग्रेसरत्व ऐरावताकडे, अश्वींचें उच्चैःश्रव्याकडे व पक्ष्यांचें गरुडाकडे प्रभुत्व दिलें; श्वापदांचें स्वामित्व सिंहाकडे व गाईंचें प्रभुत्व सांडाकडे दिलें. वृक्षांत अश्वत्थां-कडे वर्चस्व ठेविलें; सागर, नद्या, वृष्टि आणि आदित्य यांच्या राज्यावर पर्जन्याला बसविलें. दंश करणाऱ्या प्राण्यांची मालकी शेषाकडे दिली; सरपटणारे जे सर्पादि त्यांचा तक्षक स्वामी नेमला; गंधर्व आणि अप्सरा यांची नायकी बलाढ्य जो मदन त्याकडे दिली;

१ ब्राम्ही, माहेश्वरी, नारायणी, ऐंद्री, वाराही, कौमारी, नारसिंही, अपराजिता. या आठ मातृका किंवा देवशक्ति होत.

२ रुद्राणां शंकरश्चास्मि । गीता, १०-२३.

३ गंधर्वाणां चित्ररथः । गीता, १०-२६.

४ सर्पाणामस्मि वासुकिः । गीता, १०-२८.

५ ऐरावतं गजेंद्राणां । गीता, १०-२७.

६ उच्चैः श्रवसमन्थानां । गीता, १०-२७.

७ वैनतेयश्च पक्षिणां । गीता, १०-३०.

८ गाईकरितां राखून ठेवलेल्या बैलास सांड म्हण-  
तात.

९ अश्वत्थः सर्व वृक्षाणां । गीता, १०-२६.

ऋतु, महिने, दिवस, पक्ष, रात्री, तिथि, पर्व, कला, काष्ठा, वगैरे कालमानें, अयनांच्या गति व योग (ग्रहयुति वगैरे), या सर्वांचें प्रभुत्व संवत्सराकडे दिलें.

याप्रमाणें राज्यांची वांटणी केल्यावर ब्रह्मदेवानें दिक्पाल नेमिले. वैराज प्रजापतीचा पुत्र जो सुधन्वा त्याला पूर्वेचा दिक्पाल केलें, दक्षिण दिशेचें पालकत्व कर्दमप्रजापतीचा पुत्र शंखपद याजकडे सोंपविलें, राजसपुत्र महात्मा केतुमान याला पश्चिम दिशेस नेमिलें; त्याच-प्रमाणें पर्जन्य प्रजापतीचा अजिंक्य पुत्र जो हिरण्यरोमा त्याला उत्तर दिशा दिली. हे नेमिलेले दिक्पाल सप्तद्वीपांनीं व अनेक पर्वतांनीं युक्त जी ही विस्तीर्ण पृथ्वी तिचें आप-आपल्या ठिकाणीं राहून भर्मानें आजपर्यंत परिपालन करीत आहेत. वर जे भिन्न भिन्न राज्यांचे राजे सांगितले, त्या सर्वांनीं मिळून एक राजसूय यज्ञ करून पृथूला वेदांक्त विधीनें आपणा सर्वांचा राजा म्हणजे चक्रवर्ती नेमिलें.

याप्रमाणें व्यवस्था होऊन अतितेजस्वी असें चाक्षुष मन्वंतर संपल्यावर पुढील मन्वं-तराची मालकी ब्रह्मदेवानें वैवस्वत मनूकडे दिली. हे राजा, तुझी अनुकूलता असेल व तूं ऐकण्यास राजी असशील तर या मनूचें सविस्तर वर्णन सांगावें, असें माझ्या फार मनांत आहे. कारण पुराणांत याचें फल फार मोठें सांगितलेलें आहे. याचे श्रवणानें मान-प्रतिष्ठा, धनधान्य, कीर्ति, आयुष्य व अंती स्वर्गवास, हीं सर्व प्राप्त होतात, असें सांगितले आहे.

जनमेजय राजा म्हणतोः—फार नाभी गोष्ट; तर, वैशंपायना, आरंभी त्या महात्म्या पृथु राजानें या वसुंधरेचें दोहन कसकसे केलें; तसेंच त्यानंतर देव, पितर, ऋषि, दैत्य, नाग,

यक्ष, वृक्ष, पर्वत, पिशाच्च, गंधर्व, द्विजश्रेष्ठ, इत्यादि महासत्वांनीही तिचें दोहन कसकसें केलें; त्यावेळीं पात्रें कसलीं घेतलीं होतीं; वत्स कोणकोणते होते; कसकसल्या प्रकारचें दूध निघालें व दूध काढणारे कोण कोण होते, हें सर्व क्रमाक्रमानें मला सांगा. त्याचप्रमाणें पूर्वींचे महर्षींनीं वेन राजावर क्रुद्ध होऊन त्याचे हाताचें घुसळण कां केलें, तेंही मला सांगा.

वैशंपायन म्हणतात:—शाबास जनमेजया, तुझी तत्परता पाहून मला मोठा आनंद झाला आहे. मी तुला वेनपुत्र जो पृथु याचें वृत्त सविस्तर सांगतो व तूंही एकाग्र चित्तानें व पवित्रपणानें असाच ऐक. हे राजा, हें पृथूचें चरित्र अमंगळ, क्षुद्र मनाचा, व्रतहीन, कृतघ्न, दुष्ट व कुशिष्य अशाला सांगूं नये; याची योग्यता फार मोठी आहे. हें वेदाला मान्य असून स्वर्ग, यश, आयुष्य व धर्मप्राप्ति करून देणारें आहे; व ऋषींनीं ही मोठी एक गुप्त गोष्ट म्हणून सांगितलें आहे. तें मी तुला जशाचें तसेच सांगतो, श्रवण कर. हे राजा, प्रथम ब्राह्मणांना नमस्कार करून जो कोणी हें वैन्य चरित्र सविस्तरपणें नित्य लोकांस कथन करील त्याला कृत व अकृत कर्मांमुळे घडलेल्या पापांबद्दल हाय हाय करीत बस-प्यची वेळ येणार नाही.

## अध्याय पांचवा.

—:—

### वेन राजा.

वैशंपायन सांगतात:—पूर्वकाळीं अत्रि वंशांत उत्पन्न झालेला व अत्रीप्रमाणेंच पराक्रमी अंग नांवाचा प्रजापति धर्मपालक होता; याच्या पोटी वेन नांवाचा एक पुत्र झाला. परंतु हा अत्यंत धर्मभ्रष्ट होता. याची आई

सुनीथा नांवाची यमाची मुलगी होती व हा आपल्या आईच्या बापाच्या वळणावर गेल्यामुळे अर्थातच फार दुष्ट निपजला. धर्म वगैरे सर्व गुंडाळून ठेवून लोकांत मनसोक्त वागूं लागला. वेदधर्माची मर्यादा उलंघून अक्षयी अधर्मांमध्ये स्वतः रत होऊन लोकांनाही धर्म-बाह्य वर्तनाचा त्यानें सक्तीनें कित्ता घालून दिला. अर्थातच त्याच्या राजवटींत कोठें वेदाध्ययन ऐकूं येईना, कोठें वषट्कार कानीं पडेना, देवतांना यज्ञांत हविर्भाग किंवा सोम-पान मिळेना. कारण त्याचे पुढें घडे भरावयाचे होते म्हणूनच कीं काय त्यानें आपल्या प्रजाजनांत असा कडक हुकूम फिरविला होता कीं, मला सोडून अन्य कोणाही देवतेचे उद्देशानें यज्ञ किंवा हवन करतां कामा नये; केल्यास कर्त्याला तीव्र शासन प्राप्त होईल. यज्ञस्वरूप मीच आहे; यष्टा मीच आहे; ईज्य मीच आहे. याकरितां कोणालाही यज्ञ करणें असेल तर मलाच देव मानून करावा; हवन करणें असेल तरी माझेच उद्देशानें करावें. याप्रमाणें लोकांना सांगून व आपला ज्यांवर हक्क नाही असले यज्ञांतील हविर्भाग मागून त्यानें जेव्हां केवळ अमर्याद अंदाधुंदी मांडिली तेव्हां मरीचिप्रभृति महर्षि म्हणाले, “हे राजा, आम्हीं आतां बहुत वर्षे-पर्यंत यज्ञदीक्षा घेऊन व्रतस्थ राहाणार आहोंत; करितां तुला प्रार्थना एवढीच कीं, तूं असा धर्मलंडपणा करूं नको. आपली मागून चालत आलेली रीत ही नव्हे. तूं प्रजापति या संज्ञेनें या कुलांत उत्पन्न झालेला असून त्या संज्ञेला अनुरूप असें मी प्रजाचें पालन करीन, असा तूं करारही केलेला आहेस.”

याप्रमाणें ते सर्व महर्षि बोलत असतां तो दुष्टबुद्धि व विपरीतार्थ करणारा वेन त्यांचा उपहास करून म्हणाला, ‘ऋषीहो, तुम्ही



म्हणतां कीं, धर्ममर्यादा अशी नाही, तशी नाही, तर मजविरहित धर्माचा उत्पत्तिकर्ता तरी कोण आहे व मीं ऐकावें तरी कोणाचें ? या भूतलावर मजसारखा कोण आहे ? अहो ! माझी विद्वत्ता, माझे वीर्य, माझे तप व माझी सत्यप्रीति, यांना भूलोकीं कोठें तुलना आहे काय ? मूर्खहो, तुमच्या अकला गेल्या कोठें ? मी सर्व प्राणिमात्रांचा व विशेषेकरून सर्व धर्माचा उगम आहे, हें तुम्हांला कसें कळत नाही ? माझी लहर लागेल तर ही पृथ्वी मी जाळून खाक करीन; मर्जास आल्यास मी हिला पाण्यांत बुडवून टाकीन किंवा खुषी वाटल्यास आकाश व पृथ्वी हीं दोन्ही चोंदून टाकीन. यांत काडीचा संशय बाळगूं नका.'

याप्रमाणें प्रार्थना केली असतांही मोहामुळें व गर्वामुळें उन्मत्त झालेला वेन जेव्हां वाटेवर येईना, तेव्हां त्या महर्षींच्या पायांची आग मस्तकाला गेली व दर्पानें फूं फूं करीत असलेल्या त्या महाबलाढ्य वेनाला त्यांनीं जागच्या जागीं दडपून धरिला. रागाच्या झपाट्यांत त्याच्या उजव्या मांडीचें घुसळण चालविलें. तें घुसळण चाललें असतां एक अतिशय खुजा व काळाकुट्ट पुरुष त्या मांडीतून निघून कांपत कांपत ऋषींपुढें हात जोडून उभा राहिला. त्याची ती विव्हल स्थिति पाहून निषाद (खालीं बस) असें अत्रिऋषीनें त्याला सांगितलें. या शब्दावरून त्याला निषाद असें नांव पडलें; व तो पुढें निषादांच्या ( फांसेपारध्यांच्या ) कुलाचा मुख्य झाला. यानंतर वेनाच्या कलमषापासून ( काळ्यांकुट्ट पापापासून ) धीवर म्हणजे मच्छिमार कोळी उत्पन्न झाले. याशिवाय विंध्याद्रीवर राहाणारे भिल्ल, तुषार, तुंबर, वगैरे जाती व जे कोणी अधर्मप्रिय लोक ते वेनापासूनच झालेले असें समजावें. एवढें झालें तरी ऋषींचा कोप शांत होईना व

मग त्यांनीं मांडी सोडून देऊन त्वेषानें वेनाच्या उजव्या हाताचें अरणीप्रमाणें घुसळण मांडिलें. तेव्हां त्या हातापासून अग्नीप्रमाणें देदीप्यमान, नव्हे, साक्षात् अग्नीच असा पृथु नांवाचा पुरुष निर्माण झाला. पृथु जो उत्पन्न झाला तोच मोठा तेजस्वी व यशस्वी असून तो आजगव नांवाचें अतिश्रेष्ठ धनुष्य, दिव्यबाण व शरीररक्षणार्थ अंगांत खेळलेलें देदीप्यमान कवच, अशा सिद्धसामग्रीसहच उत्पन्न झाला. तो जन्मास येतांच सर्वत्र भूतमात्रांना आनंदीआनंद झाला; व त्याचा पिता वेन हा तत्काल स्वर्गास गेला. हे जनमेजया, असला दुष्ट वेन स्वर्गास कसा गेला म्हणशील तर त्याच्या पोटीं पृथूसारखा सत्पुत्र निपजल्यामुळें. कारण, पुत्र या शब्दाचा अर्थ पुम् नामक नरकापासून त्रायते म्हणजे पितरांना जो राखतो तो, असा आहे; व पृथु या अर्थाला अनुरूप असा सत्पुत्र असल्यामुळें त्याच्या बळानें त्याचा पातकीही पिता स्वर्गाला गेला. असो; पृथु जन्मतांच त्याला राज्याभिषेक करण्यासाठीं चारी दिशांकडून नद्या व समुद्र आपणांजवळील रत्नांचा उपहार घेऊन अंगीं येऊन उभे राहिले. त्याचप्रमाणें अंगिरसकुलोत्पन्न सर्व ऋषि व देव, तसेच स्थावर-जंगम प्राणी यांसह ब्रह्मदेवांनी स्वतः येऊन त्या महातेजस्वी पृथूला सर्व राजांचाही राजा म्हणून प्रजापालनाचे कामीं मूर्धाभिषेक केला. याप्रमाणें मोठमोठाल्या धर्मज्ञांनीं त्या वेनपुत्र पृथूची आदिराज्यावर स्थापना केली. तेव्हांपासून बापाचे कृतीनें प्रजाजन जे असंतुष्ट झाले होते ते या प्रतापी राजानें आपले अनुकूल वर्तनानें रंगवून म्हणजे खूष करून सोडले; व या त्याच्या प्रजारेजनानें लोक म्हणूं लागले कीं, याला

१ अग्निहोत्रार्थ अग्नि पाडण्याकरितां घेतलेल्या लांकडांपैकीं खालचें.

राजा ही संज्ञा सर्वथा अन्वर्थक आहे. सर्व भूतें त्याच्याशीं इतक्या प्रेमानें व अनुकूलतेनें वागत कीं, तो समुद्रावरून प्रवास करूं निघाला असतां त्याला त्रास न पडावा म्हणून समुद्र आपसुखा बर्फासारखा घट्ट होऊन त्याला मार्ग देई. त्याचप्रमाणें पर्वतही दुभंग होऊन मधून वाट देत; ध्वजा उभारलेला त्याचा रथ राना-वनांतून जाऊं लागला असतां मार्गांत आलेलीं वृक्षवल्ली आपोआप वाटेवेगळीं होत. परंतु त्याच्या ध्वजेचा कधीही भंग होऊं देत नसत. नांगरल्यावांचूनच भूमी पिके. नुसत्या संकल्पानें वाटेला त्या तऱ्हेचीं अन्नं सिद्ध होऊन पुढें येत. सर्वच गाई कामधेनूच्या किंमतीच्या झाल्या. वृक्षांवरील सर्व फुलांच्या पांकळ्या मधानें थबथबत होत्या. याप्रकारें भूतमात्र स्वानंदानें पृथूचें साहाय्य करित असतां ब्रह्म-देवांनीं सोमघज्ञ आरंभिला. त्या यज्ञांत सूतीच्या दिवशीं म्हणजे ज्या दिवशीं सोमवल्ली कुटून तिचा अंगरस काढावयाचा असतो, त्या दिवशीं सूत नांवाचा पुरुष उत्पन्न झाला; व त्याच यज्ञांत पुढें मागध नांवाचा दुसरा एक मोठा ज्ञाता पुरुष उत्पन्न झाला. त्या वेळीं देव आणि ऋषि यांनीं त्या दोघां पुरुषांना बोलवून सांगितलें कीं, बुद्धिमंतांनीं, तुम्ही दुसरें कांहीं करूं नका; केवळ या पृथुराजाची स्तुति करीत रहा, व त्याच्या पुण्यकर्माचें वर्णन गा. आम्ही तुम्हांला या राजाची स्तुति गावयास सांगतो. त्या स्तुतीस हा राजा सर्वथा पात्र आहे. हें ऐकून सूत-मागध ऋषींना म्हणाले कीं, आम्ही देव आणि ऋषि यांना स्तुतीनें खूष करण्यास तयार आहों. परंतु या राजाचें स्तवन कसें करावें, तें आम्हांला समजत नाहीं. कारण याचें लक्षण काय व यानें काय काय

गोष्टी केल्या आहेत, कोणती कीर्ति मिळविली आहे, हें आम्हांला कांहींच समजत नाहीं. हें ऐकून ऋषि त्यांस म्हणाले कीं, तुमचें म्हणणें खरें आहे; तर याला अशी युक्ति करा कीं, या पृथूनें मागल्या कल्पांत जीं कृत्यें केलीं होती तींच याही जन्मांत तो करील, असें गृहीत धरूनच तुम्हीं त्याची स्तुति करावी, असें आमचें तुम्हांस सांगणें आहे. मागील कल्पीं हा कसा होता, यानें काय केलें, त्याची माहिती आम्ही तुम्हांला देतो, ती ऐका. हा पृथु पूर्व कल्पीं मोठा बलाढ्य, सत्यवक्ता, दानशील, सत्यप्रतिज्ञ, श्रीमान्, विजयी, क्षमाशील, पराक्रमी, दुष्टांना शासन करणारा, धर्मवेत्ता, दयाशील, प्रिय भाषण करणारा, लोकमान्य, इतरांचा सत्कार करणारा, यज्ञयाग करणारा, ब्राह्मणप्रिय, सत्यनिष्ठ, शमी, शांत, व्यवहारदक्ष व जीव लावून आपलें कर्तव्य करणारा, असा होता.

याप्रमाणें ऋषींनीं आज्ञा केल्यावरून त्या सूतमागधांनीं त्या पृथुराजाचें यथास्थित स्तोत्र केलें व त्या वेळेपासून कोणत्याही राजानें कांहीं स्तुत्य कृत्य केलें असतां सूत, मागध, बंदी, म्हणजे भाट लोक येऊन राजाचे गुण गातात व आशीर्वाद देऊन जयजयकार करितात. असो; त्या स्तुतिकुशल सूतमागधांची ती स्तुति ऐकून पृथुराजा अतिशयच खूष झाला; व त्यानें त्यांचे कामगिरीबद्दल सूताला अनूप नांवाचा देश, मगधाला मागध नांवाचा देश इनाम दिला. हें त्याचें कृत्य पाहून प्रजाजनही फार संतुष्ट झाले; व महर्षीही म्हणाले कीं, हा पृथु प्रजेला कायमची इनाम, वेतनें देऊन सुख देणारा होईल. ऋषींचा हा आशीर्वाद कानीं पडतांच अनेक प्रजाजन गोळा होऊन पृथूकडे आले व महर्षींच्या वचनाचा उल्लेख करून म्हणाले कीं, हे राजा, तूं आम्हांला

१ राजा या शब्दाचा अर्थ प्रजेचें रंजन म्हणजे प्रजेला संतोषित करणारा असा आहे.

पोटापाण्याची कायमची सोय लावण्यासाठी कांहीं तरी इनाम, वतनें करून दे. याप्रमाणें सर्व प्रजाजनानीं गराडा देऊन त्याला आग्रहाची विनंती केली, तेव्हां प्रजेचें चिरकल्याण करावयाचा हेतु मनांत धरून तो बलाढ्य पृथुराजा धनुष्यबाण घेऊन पृथ्वीच्या मार्गे लागला. त्याच्या पाठलागामुळे भूमी भयभीत झाली व निरुपाय झाला तेव्हां गाईचें रूप घेऊन सर्व धरणीभर सैरावैरा धांवत सुटली. पृथूही धनुष्य घेऊन तसाच तिचा पाठपुरावा घेत राहिला. अखेर त्याच्या भयानें ती ब्रह्मलोकीं गेली. पण पाहाते तों देवांनींही अजिंक्य असा मोठा बलाढ्य व मोठा करारी पृथुराजा, अति तीव्र व अग्नीप्रमाणें जाज्वल्य असें बाण लावलेले धनुष्य घेऊन तेथेंही तिच्या पुढें उभाच. त्याचें तें तेज व त्याचा तो अढळ निश्चय हें पाहून पृथ्वीला असें वाटलें कीं, आतां याच्या तावडींतून आपणास अन्य कोणी सोडविणारा नाही. तेव्हां ती पृथ्वी स्वतः जरी त्रैलोक्याला पूज्य होती तरी आपला मोटेपणा बाजूस ठेवून हात जोडून पृथूलाच शरण येऊन म्हणाली कीं, हे राजा, तूं मला मारणार, पण स्त्रीवध हा धर्माला संमत नाही व तूं आपणास धर्मज्ञ म्हणवितोस त्या अर्थीं तुला हें करणें उचित नाही. दुसरे, मला नाहीशी करून तूं प्रजापालन कसें करणार ? कारण मजवरच लोक रहातात व मीच या जगताचें धारणपोषण करितें. तेव्हां माझा नाश केल्यास ज्यांचा कैवार घेऊन तूं उठला आहेस त्या प्रजांचाही सत्यानाश होईल हा उघडा हिशेब तुला कसा कळत नाही ? याकरितां तुला जर प्रजेच्या कल्याणाची इच्छा असेल तर माझा प्राण घेऊं नको. तूं आपल्याला प्रजेचा पालनवाला म्हणवितोस म्हणून तुला ही खरी गोष्ट समजून

सांगितली, ती ऐक. बाबारे, अंगीं बळ असलें तरी सुमार न पाहातां अचरटपणा केल्यानें यश येत नसतें. कोणतेही गोष्टींत सिद्धि येणें तर सोईच्या रीतीनें व विचार पाहून आरंभ करावा लागतो. तेव्हां तूं जर प्रजारक्षणार्थ हा यत्न चालविला आहेस तर तें कशानें साधेल हें प्रथम मनाशीं पहा. मला ठार करून तर प्रजारक्षण होणें शक्यच नाही. हें जर खरें तर तुझाही हेतु सिद्ध होत नाही आणि माझाही नाश होतो, असें करण्यांत मतलब कोणता ? यापेक्षां तूं आपला क्रोध आंवरून धर आणि मी तुला अनुकूल होतें. बाबारे, मी गाय म्हणजे पशु असें तूं कदाचित् मानीत असलास तरी शास्त्रांत जो स्त्रीवधाचा निषेध सांगितला आहे तो केवळ मानवी स्त्रियांपुरता नसून पशुपक्ष्यादि नीच योनींच्या स्त्रियांपर्यंतही त्याची व्याप्ति आहे; शिवाय तूं आपणाला पृथ्वीपाल म्हणवितोस त्याअर्थीं तूं धर्मोद्ध्वन करूं नयेस अशी माझी विनंति आहे.

याप्रमाणें अनेक प्रकारें गोरूप पृथ्वीनें केलेला बोध ऐकून तो थोर मनाचा व धर्मनिष्ठ राजा आपला क्रोध आंवरून पृथ्वीला जें काय म्हणाला, तें पुढील अध्यायीं आहे.

## अध्याय सहावा.

—:—

### पृथ्वीदोहन.

पृथु म्हणतो:—हे धरित्रि, तूं अधर्म होईल म्हणून मला सांगतेस, पण माझी समजूत या कामीं काय आहे, ती मी तुला सांगतो, ऐक. जो कोणी केवळ एका व्यक्तीच्या हितासाठीं—मग ती व्यक्ति तो स्वतः आपण असो किंवा अन्य कोणी असो—अनेक लोकांचा जीव घेईल त्याला पातक किंवा अधर्म लागेल. परंतु हे कल्याणि, ज्या एका दुष्टाला मारल्यानें

अनेक जीव सुखासमाधानांनं नांदूं लागतील अशाचा वध करण्यापासून बारीक मोठे कसलेच पातक लागत नाही; उलट दुष्टाच्या वधानें जर अनेक लोक सुखी होतील, तर असल्याच्या वधांत पुण्यसंग्रह आहे, असें मी समजतो; व याच न्यायानें मी माझ्या हजारों हजार प्रजांच्या कल्याणासाठीं तुला मारावयासच प्रवृत्त झालों आहे. मी केवळ माझ्या प्रजेच्या हितासाठीं जी गोष्ट करावयास तुला सांगेन ती न ऐकून जर तूं माझे आज्ञेला पराङ्मुख होशील तर तुला बाणानें अशीच ठार करीन. तूं मेल्यावर माझ्या प्रजा कोठें राहातील, हें तुला गूढ पडलें आहे, पण त्याचेंही उत्तर तुला सांगतो. मीच स्वतः तुझ्याऐवजीं सर्वभर विस्तीर्ण होऊन माझ्या अंगावर प्रजेचें धारण करीन. ती भ्रांति तुला नको. तेव्हां तुझ्या धमकीला मी कांहीं भीत नाही; पण तूंही ज्या अर्थी आपणास धर्मज्ञ म्हणवितेस त्या अर्थी मी तुला आज्ञा करितों, ती ऐक; व माझ्या प्रजेला उत्तम प्रकारें जीवन दे. हें काम करण्याला तूं समर्थही आहेस, म्हणून माझी आज्ञा अस्थानी नाही. तुझ्या वधार्थे धनुष्याला लावलेला हा माझा उग्र बाण मी परत घ्यावा असें तुझे म्हणणें आहे तर तूं माझी कन्या होऊन माझे आज्ञेत वाग म्हणजे मी हाच बाण आटपून ठेवितों.

पृथ्वी म्हणते:—तूं सांगतोस त्या सर्व गोष्टी, हे वीरा, मी करीन, याबद्दल खातरी असूं दे. परंतु तूं कोणते युक्तीनें या प्रजांचें धारण करूं शकशील ती तोड काढ. शिवाय माझे दोहन करावयाचें म्हणतोस तर वत्साशिवाय मला पान्हा सोडतां येणार नाही, म्हणून दोहनकाळीं तूं वत्स कोण लावणार तीही योजना कर. कारण मी पूर्वी सांगितलेंच आहे कीं, कोणतीही गोष्ट करणें तर तिच्या

सिद्धीचे योग्य उपाय प्रथम योजून मग आरंभ करावा, मग यश हटकून येतें. असो; तूं मजवर भरंवसा टाकिला आहेस, त्याअर्थी, हे धार्मिकश्रेष्ठा, मीच तुला एक युक्ति सांगतें. ती ही कीं, तूं माझा पृष्ठभाग सम-विषम आहे तो सर्वत्र पाणसळींत येईल असा समतल कर म्हणजे माझ्या ओंटीतून दूध गळलें असतां तें भूमीच्या सर्व भागांकडे सारखें पोंचेल.

वैशंपायन सांगतात:—पृथ्वीचें तें वचन ऐकून वेनपुत्र पृथुराजानें आपल्या धनुष्याचे अग्रानें भडाभड भूमीवरील उंचवटे उडवून एकावर एक रचले. त्यामुळें कांहीं टेंकड्यांचे डोंगर झाले; व या युक्तीनें बाकीची पृथ्वी समतल झाली. यापूर्वीच्या मन्वंतरांत म्हणजे चाक्षुष मन्वंतराच्या अखेरपर्यंत भूमि ही मूळ सृष्टिधर्मानें जशी होती तशीच विषम म्हणजे ठिकाठिकाणीं उंचसखल अशी होती, ( अर्थातच पाणी सर्वत्र पसरूं न शकल्यामुळें पिका-ऊपणाही यथातथाच असणार. ) व या तिच्या विषमपणामुळेंच हल्लींच्यासारखीच शिस्तवार गांवांची किंवा शहरांची रचना पूर्वकल्पांत नव्हती. धान्यही पुरेसें नव्हतें. गुरचरणही तितपतच, शेतीही बेताचीच व व्यापारी दळण-वळणही कृताकृतच असे. खऱ्याखोऱ्याचा विचार तितपतच होता. बरें, मनुष्याचे ठिकाणीं लोभ किंवा मत्सरही नव्हता. हे जनमेजया, परंतु सांप्रत हा वैवस्वत मनु लागल्यापासून व त्यांतही विशेषतः या पृथ्वी कारकीर्द सुरू झाल्यापासून वर सांगितलेल्या सर्व गोष्टी अस्तित्वांत आल्या; कारण मधील उंचवटे काढून या पृथ्वीनें जेव्हां कोसोगणित एकजात ताटा-

१ रूपक वजा केलें असतां डोंगराळ मुख्य साफ करून सपाट जमीन केली असतां पाणी सर्वभर पोंचून भूमी सुपीक होईल, हा भावार्थ दिसतो.

सारखी सपाट जमीन केली त्या वेळीं प्रजा-जनांना आपण एकाच ठिकाणीं जमून एकवट वसति करावी, अशी सहजच बुद्धि उत्पन्न झाली; व तिचे योगानें समूहचे समूह एकत्र होऊन लहानमोठे ग्राम, शहरें, नगरें, हीं वसलीं. पृथूचे पूर्वीं प्रजा कोठें रानांतील कंद-मूलफलांवर कसावसा गुजारा करी, असें आमचे ऐकिवांत आहे. परंतु पृथूनें स्वायंभुव मनूला वत्स कल्पून खुद्द आपले हातानें पृथ्वीची धार काढली व त्या योगानें पृथ्वीवर धान्यच धान्य पिकूं लागलें; तें इतकें कीं, अजून देखील प्रजा आला तो दिवस याच अन्नावर निर्वाह करते.

मी असें ऐकितों कीं, यानंतर ऋषींनींही एकदां या वसुंधरेचें दोहन केलें, त्यावेळीं सोमाला त्यांनीं वत्स केला व अंगिरस पुत्र जो बृहस्पति तो दोग्धा झाला. दूध काढण्याचें पात्र छंद म्हणजे वेद होते, व अशा रीतीनें जें दूध प्राप्त झालें तें केवळ अनुपमच होतें. तें कोणतें म्हणाल तर तप व शाश्वत ब्रह्म यांची प्राप्ति. त्यावर सर्व देवांनीं पुरंदर इंद्राला पुढें करून सोन्याचें भांडें घेऊन पुनरपि या महीचें दूध काढलें. त्यावेळीं इंद्र हा वत्स होता व शक्तिमान् सविता हा दूध पिळणारा होता. यावेळीं निघालेलें दूध फारच जोरकस होतें व त्यावरच देव अद्यापि जगले आहेत. तें दूध म्हणजे देवांचें अमृत होय. यापुढें अमित पराक्रमी जे पितर यांनीं रुप्याचें भांडें घेऊन या वसुंधरेपासून स्वधारूप दूध काढलें. यावेळीं सूर्यपुत्र प्रतापी यम हा वत्स होता व सर्व लोकांचा संहारकर्ता जो काल तो दूध काढणारा होता. यानंतर, मी असें ऐकितों कीं, तक्षकाला वत्स करून व पांढऱ्या भोंप-ळ्याचें भांडें करून नागांनीं व सर्पांनीं विष-रूपी दूध काढिलें. यावेळीं ऐरावतकुलोत्पन्न

प्रतापी धृतराष्ट्र हा दोग्धा होता. यावेळीं निघा-लेल्या दुधाच्या म्हणजे विषाच्या बळावरच हे नाग व सर्प इतकाले लड्ड पोसले आहेत व इतके भयंकर व उग्र झाले आहेत. यांचें अन्नही विष, यांचें वर्तनही विषारी, यांचें वीर्यही विषारी व विषाचेच बळावर ते जगतात. यापुढें असुरांनीं या वसुंधरेचें दोहन केलें असें ऐकितों. त्यावेळीं त्यांनीं लोहमय पात्र घेतलें होतें व शत्रूंचा विध्वंस करणारी जी माया ( कपटाविद्या ) हेंच दूध त्यांनीं काढिलें. यावेळीं प्रन्हादपुत्र विरोचन हा त्यांचा वत्स होता व दैत्यांचा महाबलाढ्य ऋत्विज दोन डोक्यांचा जो मधु तो दोहनकर्ता होता. ते या मायेच्या बळावरच अद्यापिही मोठे ठकबाज, अति-बलाढ्य व अगाध चतुराईनें युक्त असे आहेत. वत्सा जनमेजया, पक्षांनींही या वसुंधरेचें दूध काढिलें, त्या वेळचें भांडें कच्छ्या मातीचें होतें. व दुसऱ्याचे शरीरांत दडून बसणें म्हणजे परकायाप्रवेशादि गुप्त विद्या हेंच दूध त्यांनीं काढिलें. त्यावेळीं वैश्रवण हा वत्स होता व मणिवराचा पिता जो रजतनाभ तो दोहक होता. हा रजतनाभ मोठा तेजस्वी तीन डो-क्यांचा होता. यावेळीं संपादन केलेली जी ही अंतर्धानविद्या तिचे बळावर अद्यापिही यक्ष चालले आहेत. नंतर पिशाच्च व राक्षस यांनींही या पृथ्वीचें दूध काढिलें. त्यांचा हेतू आपल्या संततीचा संतोष करणें हा होता. यावेळीं प्रेताचे कपालास्थि हेंच पात्र होतें. दूध काढ-णारा रजतनाभच होता; वत्स सुमालि होता, व रक्त हेंच दूध. होतें या दुधाचे बळावर अद्यापि यक्ष, राक्षस, पिशाच्च, व इतर भूतें देवांप्रमा-

१ यक्षांचाही दोग्धा रजतनाभ म्हटलें आहे; परंतु मत्स्यपुराण ( अ० १० श्लो. २३ ) यांत प्रेतराक्षसांचें दोहनकर्ता “ रौप्यनाभ ” हा दोग्धा दिला आहे, त्यानें पुनरुत्तीचा दोष टळतो.

णेंच चैनींत थाटांत राहातात. यापुढें अप्सरांचे ताफे बरोबर घेऊन गंधर्वांनीं कमलपत्रांत हिचें दूध काढिलें. त्यावेळीं चित्ररथगंधर्व हा वत्स होता, व नानाप्रकारचे मधुर सुगंध हेंच दूध काढलें. सूर्याप्रमाणें तेजस्वी, अपरिमित बलवान् महात्मा जो गंधर्वराज सुरुचि तो त्यांचा दोहनकर्ता होता. यासाठीं पर्वतांनीं हिचें दूध काढिलें. तें दूध कोणतें म्हणाल तर मूर्तिमान् औषधि व नानाविध रत्नें हेंच होय. यावेळीं हिमवान् हा वत्स होता. महागिरी मेरू हा दोहनकर्ता होता. त्यांचें पात्र शिला-मयच होतें व या दोहनामुळें पर्वत अधिकच वाढले. हे राजा, असें ऐकितों कीं, याउत्तर वेळींनीं हिचें दूध काढिलें, त्या वेळीं पानांचेंच पात्र होतें; व दूध जें काढलें तें हेंच कीं, कोणतीही वल्ली जळली किंवा कापली असतां पुन्हा अंकुरित होण्याची तिचे ठिकाणीं शक्ति रहाणें. या वेळीं फुलांनीं भरलेला सालवृक्ष हा दोहनकर्ता असून प्लक्ष वृक्ष हा वत्स होता.

याप्रमाणें ही वसुंधरा या चराचर भूतांची धारणकर्ती, पोषणकर्ती, पावनकर्ती, आधार किंवा आश्रय, रत्नादिकांचें उत्पत्ति-स्थान, कामधेनुप्रमाणें सर्व इच्छा पुरविणारी व सर्व प्रकारचें धान्य पिकविणारी अशी आहे. हिचा परिघ म्हणजे समुद्र होय. हिला मेदिनी असेंही एक सुप्रसिद्ध नांव आहे. हें नांव पडण्याचें कारण असें सांगतात कीं, मधु-कैटभ नांवाचे अतिबलाढ्य असे दोन दैत्य होते. त्यांचा भेद म्हणजे पोटांतील चर्बी यानें ही भरून गेली म्हणून ज्ञाते पुरुष तेव्हांपासून हिला मेदिनी असें म्हणूं लागले; व पृथु राजाजवळ केलेल्या कराराप्रमाणें या भूमीनें ज्यावेळीं त्याचें कन्यात्व पत्करिलें त्या वेळेपासून हिला पृथ्वी असें म्हणूं लागले.

असो; पृथूनें याप्रमाणें ही पृथ्वी साफ करून तिचे भाग पाडल्या दिवसापासून तिच्या-वर शेंकडों हजारों शहरनगरांच्या मालिकांच्या मालिका बसल्या. धान्य तर अमोज उत्पन्न होऊं लागलें, वसुवत्र आनंदानें ती फुलून गेली. हे जनमेजया, तो राजश्रेष्ठ पृथु असा असामान्य पराक्रमी होता. प्राणिमात्रांनं याला नमस्कार करून याची पूजा केलीच पाहिजे. परंतु मोठमोठाले वेदवेदांगवेत्ते महाभाग जे ब्राह्मण यांनीं देखील याला नमस्कार केला पाहिजे; कारण हा विष्णुरूपच होय. ज्यांना ज्यांना आपली गादी कायम राहावी, अशी इच्छा असेल त्यांनीं देखील या प्रतापी पृथूला नमस्कार केलाच पाहिजे. कारण या भूमंडलावरील सर्व राजांत पहिला राजा तो होय. ज्या शूर योद्ध्यांना आपल्याला युद्धांत जय व्हावा अशी इच्छा असेल त्यांनीं देखील पृथूचेंच वंदन केलें पाहिजे. कारण योद्ध्यांतील देखील हा राजा पहिलाच योद्धा होता. हे राजा, या पृथूचें यश इतकें उज्ज्वल आहे कीं, जो कोणी योद्धा या पृथु राजाचें नाम-संकीर्तन करून रणास जाईल तो कसलाही घोर संग्राम असला तरी त्यांतून सुखरूप पार पडून नांवालौकिकत्वास चढेल. वाणिज्यावर उपजीविका करणारे जे मोठमोठे धनाढ्य वैश्य-लोक असतील त्यांनीं देखील पृथूच्याच पायां पडावें. कारण पृथु हा महायशस्वी असून प्राणिमात्रांला उपजीविकेचें साधन त्यानें दिलें आहे; त्याप्रमाणें वरील तीन वर्णांची सेवा करणें हाच ज्यांचा धर्म आहे व आपलें अत्युत्कृष्ट कल्याण व्हावें अशी ज्यांची इच्छा आहे, अशा शुद्ध शूद्रांनीं देखील यालाच दंडवत घालावें.

असो; या निरनिराळ्या दोहन-समयीं जे जे दोग्धे, जीं जीं दुग्धें व जीं जीं

होतीं तीं हीं सर्व मीं तुला सांगितलीं. आतां याहून आणखी मीं तुला काय सांगारें? जो कोणी हें पृथूचें चरित्र नित्य आरंभापासून श्रवण करील तो या भूमीवर मुलानातवंडांसह दीर्घकाल आनंदांतराहील.

## अध्याय सातवा.

—:०:—

### मनुवर्णन.

जनमेजय म्हणतो:—हे तपोधना वैशंपायना, मला आपण सर्वच मन्वंतरें. त्यांतील सृष्टीची उत्पत्ति व लय, सर्व मनुंचीं नांवें व प्रत्येक मनुची कालमर्यादा, हीं सर्व यथातथ्य ऐकवावीं, अशी माझी फार इच्छा आहे; करितां एवढी आपण सविस्तर सांगा.

वैशंपायन म्हणतात:—बाबारे, तूं म्हणतोस खरें, परंतु सर्वही मन्वंतरांचें सविस्तर म्हणजे पुरापुर वर्णन सांगणें तर शेंकडों वर्षांनीं देखील सांगून पुरें होणार नाहीं; याकरितां तूं तें मजपासून संक्षेपानेंच ऐकण्यास तयार हो. पहिला मनु स्वायंभू, दुसरा स्वरोचिष, तिसरा उत्तम, चवथा तामस, पांचवा रैवत, सहावा चाक्षुष. हे सहा होऊन गेलेले मनु होत. हे कौरवधरा, सांप्रत जो मनु चालू आहे, याला वैवस्वत अशी संज्ञा आहे. याचे पुढें येणारा तो सावर्णि मनु, त्याच्यापुढील भौत्य, त्याचे पुढील रौच्य व यांपुढील चारी मनुंना मेरूसावर्णी असें सामान्य नांव आहे. हे राजा, मीं ज्याप्रमाणें ऐकलीं होतीं त्याप्रमाणें तुला हीं एकंदर चौदाही मनुंचीं नांवें सांगितलीं. म्हणजे यांत गेलेले सहा, येणारे सात व सांप्रतचा एक हे सर्व आले. आतां मी

या सातही मनुंतील ऋषि, देवगण व मनुंची संतति हीं सर्व तुला सांगतो. मरीचि, भगवान् अत्रि, अंगिरस, पुलह, ऋतु, पुलस्त्य, व वसिष्ठ हे सातही ब्रह्मदेवाचे मानस पुत्र होते. हे राजा, यांशिवाय उत्तरेच्या दिशेला दुसरेही सात ऋषि होते. तसेच सत्वगुणी याम संज्ञक देव व त्यांचे उपजीवी दुसरेदेव हे स्वायंभुवांत होते आणि आग्निध्र, अग्निबाहु, मेधा, मेधातिथि, वसु, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, हव्य, सवन व पुत्र असे हे मनुचे महातेजस्वी दहा पुत्र होते. हे राजा, याप्रमाणें तुला थोड्यांत प्रथम मन्वंतरांचें वर्णन सांगितलें. आतां वसिष्ठाचा पुत्र और्व, स्तंब, काश्यप, प्राण, बृहस्पति, दत्त व निश्चवन, असे हे सात महाव्रत सप्तर्षि स्वरोचिष मन्वंतरांत होते, असें वायूचें म्हणणें आहे. तुषित नांवाचे या मनुंत देव होते. हविर्ध्र, मुकृति, ज्योति, आपमूर्ति, अयस्मय, प्रथित, नभस्य, नभ व ऊर्ज हे महापराक्रमी व वीर्यवान् असे स्वरोचिष मनुचे पुत्र होते म्हणून सांगितलें आहे. याप्रमाणें मीं तुला दुसरें मन्वंतर सांगितलें. आतां मी तिसऱ्याचें वर्णन करतो तें ऐक. वसिष्ठ या संज्ञेनें प्रसिद्ध असलेले वसिष्ठाचे सात पुत्र हे उत्तम मन्वंतरांतील सप्तर्षि होत. आतां हे सात पूर्वींचे कोण म्हणशील तर पूर्वकल्पीं ऊर्ज नांवाचे अत्यंत तेजस्वी जे हिरण्यगर्भाचे पुत्र तेच या जन्मीं वसिष्ठाचे झाले. याप्रमाणें तुला या मन्वंतरांतले सप्तर्षि सांगितले. आतां उत्तम मनुचे दशपुत्र सांगतो. त्यांचीं नांवें:—ईष,

१ भागवतांत याच साताना स्वायंभुवमनुंतील धर्मोपदेष्टे सप्तऋषि असें म्हटलें आहे.

२ बंगाली प्रतीत हीं नांवें और्व, स्तंब, प्राण, बृहस्पति, दत्त, अलि, व च्यवन अशीं दिली आहेत.

३ मत्स्यपुराणांत हीं पुढील चार नांवें आढळत नाहीत, त्यांत केवळ पहिलीं सातच आहेत.

१ भागवतांत हीं नांवें सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि व इंद्रसावर्णि अशीं आहेत.

ऊर्ज, तनूज, मधु, माधव, शुचि, शुक्र, सह, नभस्य व नभ, हे दहा. आतां या मन्वंतरांतील देव मानवसंज्ञक होते. याप्रमाणें तिसरें मन्वंतर सांगितलें. आतां चवथें मन्वंतर सांगतां, तें ऐक. काव्य, पृथु, अग्नि, जन्यु, धाता, कपी-वान् व अकर्षीवान्, हे सात चवथ्या म्हणजे तामस मन्वंतरांतील सप्तर्षि. आतां या मनूचे पुत्रपौत्र पुराणांत सांगितले आहेत, त्यांपैकीं त्याच्या पुत्रांचीं नांवें तेवढीं तुला सांगतां. तीं हींः--द्युति, तपस्य, सुतपा, तपोमूल, तपोधन, तपोरति, अकल्माष, तन्वी, धन्वी व परंतप; हीं सर्व नांवें अशीं वायूंनीं सांगितलीं आहेत, तीं मीं तुला सांगितलीं. या मनूतील देवगण सत्यसंज्ञक होते. आतां पांचवें मन्वंतर सांगतां. या मन्वंतराचें नांव रैवत मन्वंतर. यांतील सप्तर्षींचीं नांवेंः--वेदबाहु, यदुध्र, वेदशिरा, हिरण्यरोमा, पर्जन्य, सोमपुत्र--ऊर्ध्वबाहु व अत्रिपुत्रसत्य-नेत्र हे सात सप्तर्षि झाले. भूतरजस् नांवाचे या मनूतील मुख्य देव होते; व याच जातीचे रैभ्य व पारिप्लव संज्ञेचे विशेष देवतागण होते. आतां मी तुला त्यांच्या मुलांचीं नांवें सांगतां तीं ऐकः--धृतिमान्, अव्यय, युक्त, तत्त्वदर्शी, निरुत्सुक, अरण्य, प्रकाश, निर्मोह, सत्यवाक् व कवी; हे दहा. याप्रमाणें हें पांचवें मन्वंतर सरलें. आतां सहावें सांगतां तें ऐक. भृगु, नभ, विवस्वान्, सुधामा, विरजा, अतिनामा व सहिष्णु, हे सहाव्या म्हणजे चाक्षुष मन्वंतरांतील सप्तर्षि झाले. आतां या मन्वंतरांतील देवगण सांगतां. आद्य, प्रभूत, ऋभु, पृथग्भाव व लेख, हे पांच देवगण होते. हे पांचही महा-तेजस्वी महात्मे देवगण अंगिरस ऋषींचे पुत्र होत. हे राजा, या मनूचे ऊरुप्रभृति दहा पुत्र होते व ते न ला नामक स्त्रीपासून झाले

असल्यामुळें त्या सर्वांस नाडलेय अशी सामान्य संज्ञा होती. याप्रमाणें ही सहाव्या मन्वंतराची व्यवस्था झाली. आतां सातवा म्हणजे चालू मनु ऐक. या मनूचें नांव वैवस्वत, अत्रि, भगवान्--वासिष्ठ, महर्षिकश्यप, गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र व ऋचीक महर्षींचा पुत्र भगवान् जमदग्नि. हे सात चालू मन्वंतरांतील सप्तर्षि होत. साव्य, रुद्र, विश्वेदेव, मरुत, वसु, आदित्य व अश्विनादेव असे हे वैवस्वत मनूतील देवगण होत, व इक्ष्वाकुप्रमुख मनूचे दश पुत्र होते. हे राजा, या मन्वंतरांतील वर जे महातेजस्वी महर्षि सांगितले यांचे हजारों तेजस्वी पुत्र-पौत्र या भूमंडलावर दाही दिशांना व्यापून आहेत. यांशिवाय वर जीं मन्वंतरें सांगितलीं त्यांपैकीं प्रत्येक मन्वंतरांत लोकांची व्यवस्था लावण्याकरितां व लोकांचें संरक्षण करण्याकरितां पूर्वीं सांगितलेले जे सात सप्तक म्हणजे एकूणपन्नास मरुद्गण ते विद्यमान असतात; व या सात सप्तकांपैकीं चार सप्तकें म्हणजे अष्टावीस मरुद्गण प्रतिमन्वंतराच्या अखेरीस आपल्या सत्कर्मबलानें मुक्त होऊन शाश्वत ब्रह्मपदाला जातात. ते वर गेले म्हणजे जे दुसरे कोणी तपाच्या परिपाकानें त्या योग्य-तेला आलेले असतात, ते त्यांचे जागीं नेमले जाऊन एकूणपन्नास ही ठरीव संख्या पुरी केली जाते. याचप्रमाणें मार्गे गेलेल्या व सांप्र-तच्या मनूंतही मरुद्गणांची पूर्तता होत असते. हे कौरवेश्वर, याप्रमाणें गेलेलीं हीं सात मन्वं-तरें तुला सांगितलीं. आतां पुढें येणारीं तींही सर्व तुला सांगतां. येणाऱ्यांपैकीं पांच मनूंना सावर्ण अशी सामान्य संज्ञा आहे. या पांचांपैकीं एक सूर्यपुत्र व दुसरे परमेष्ठी प्रजापतीचे

१ ऊरु, पुरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवाक, हवि, अग्निष्ठुत, अतिरात्र, सद्युम्न, व अभिमन्यु. (मत्स्यपुराण.)

१ इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करूपक, नरि-  
प्यंत, पृथग्र, नभग व कवि (भागवत नवमस्कंध अ०  
पहिला.) मत्स्यपुराणांत ही. नांवें फरकानें आढळतात.



पुत्र. हे चौघे दक्षप्रजापतीचे नातू म्हणजे प्रिया नामक मुलीचे मुलगे. हे मोठे तेजस्वी असून मोठे तप करीत मेरुपृष्ठावर राहिले असल्यामुळे या चौघांस मेरुसावर्णीं असे नांव पडले आहे. रूचि प्रजापतीचा पुत्र रौच्य हा एक मनु व भूतिनामक दिव्य स्त्रीचे ठिकाणीं झालेला रूचीचा पुत्र भौत्य तो एक. याप्रमाणें हे पुढें येणारे सात—हे सर्वही मनु म्हणजे सावर्णींपासून पुढील सर्व मोठे तपस्वी असून त्यांचा काल येईपर्यंत ते स्वर्गांतच असतात. आतां यापुढील मनूंत होणाऱ्या सप्तर्षींचीं नांवें ऐक. राम, व्यास, अत्रिपुत्र—दीप्तिमान्, भरद्वाजकुलोत्पन्न द्रोणाचा पुत्र महातेजस्वी अश्वत्थामा, गौतमकुलोत्पन्न शरद्धानाचा पुत्र कृप, कुशिक-कुलोत्पन्न गालव व कश्यप-कुलोत्पन्न रुरु, हे सात मुनिश्रेष्ठ येत्या मनू-तील सप्तर्षि होत. हे सप्तर्षि केवळ ब्रह्मदेवाच्या तोडीचेच आहेत. सत्कुलोत्पत्ति, तपोबल, मंत्र-शास्त्र, व्याकरणशास्त्र, इत्यादिकांतील प्राविण्य या गोष्टींनीं ब्रह्मलोकांतही त्यांची प्रतिष्ठा आहे. हे फार निष्कलंक असून त्रिकालज्ञानी आहेत. यांची तपाविषयीं तर फारच ख्याती आहे. कारण सदा ते तपोनिरत असतात व ते मोठे मननशील आहेत. शिवाय मंत्रव्याक-रण व अणिमादियोगसिद्धीच्या बलांनं त्यांना सर्व कांहीं दिसतें. हें सर्वांत पहिले व धर्माचीं रहस्यें यांनीं प्रत्यक्ष अंगीं अनुभविलीं आहेत; शिवाय आपआपल्या नांवाच्या गोत्राचे ते प्रवर्तक किंवा मूळपुरुष होत. आतां हे जे एकंदर सप्तर्षि सांगितले हे कृतादि चतुर्युगां-मध्ये पुनःपुनः उत्पन्न होऊन सत्यधर्माचें स्वतः अतिआस्थेनं आचरण करून लोकांना वर्ण व आश्रम यांच्या वेळोवेळीं मर्यादा घालून देतात, व कालगतीनें जेव्हां जेव्हां धर्माला शैथिल्य येतें तेव्हां तेव्हां यांचेच वंशांत उत्पन्न झालेले

संहिता ब्राह्मणादि वेदभागाचे द्रष्टे व कर्ते ऋषि पुनःपुनः धर्माचें कार्य उज्जीवित करतात. या निरनिराळ्या सप्तर्षींत कधीं कधीं पहिल्यापेक्षां मागील ऋषि वरादि देण्याविषयीं अधिक समर्थ आढळून येतात, त्या अर्थीं या ऋषींची योग्यता ठरविण्यांत काल किंवा वय याचा विचार कर-ण्यांत मुळींच अर्थ नाही; ते सर्वत्र सारखे, हाच याचा उलगडा.

हे राजा, याप्रमाणें सप्तर्षींचा विषय स्पष्ट करून सांगितला. आतां भावी सावर्णींमनूचे पुत्र तुला सांगतो ते ऐक. वरीयान्, अवरीयान्, संमत, धृतिमान्, वसु, चरिष्णु, अपि, अधृष्णु, वाज व सुमति हे दहा. आतां मेरुसावर्णींतील पहिल्याचे सप्तर्षि सांगतो ते ऐक. पौलस्त्य-कुलोत्पन्न मेधातिथि, काश्यपकुलोत्पन्न वसु, भृगुकुलोत्पन्न जोतिष्मान्, अंगिरसकुलोत्पन्न द्युतिमान्, वसिष्ठकुलोत्पन्न सवन, अत्रिकुलो-त्पन्न हव्यवाहन व पौलह, हे सात रोहितमन्वं-तरांतील ऋषि. हे राजा, या मनूमध्ये तीनच देवगण होते. या रोहितसावर्णीं मनूचे म्हणजे दक्षपुत्राच्या पुत्राचे नऊ मुलगे होते. ते धृष्टकेतु, पंचहोत्र, निराकृति, पृथु, श्रवा, भूरि-द्युम्न, ऋचीक, बृहत, गय, हे नऊ. दहाव्या पर्यायामधील दुसऱ्या मनूतील सप्तर्षि ऐक. पुलहाचा पुत्र हविष्मान्, भृगुपुत्र सुकृति, अत्रिपुत्र आपोमूर्ति, वसिष्ठपुत्र अष्टम, पुलस्त्यपुत्र प्रामति, कश्यपपुत्र नभोग, अंगिरसकुलोत्पन्न नभस, हे सात. अर्चिमार्ग किंवा उत्तरमार्ग व धूममार्ग किंवा दक्षिणमार्ग यांचे रक्षणकर्ते असे मंत्रप्रतिपाद्य दोन देवतागण आहेत म्हणून मार्गें सांगितले; ते गण या कालचे देव होत. मनुसुत, उत्तमौजा, निकुषंज, वीर्यवान्, शतानीक, निरामित्र, वृषसेन, जयद्रथ, भूरि-

१ पुत्र शब्द हा वंशज अशा अर्थी पुष्कळदा वापरला जातो.

द्युम्न व सुवर्चा असे हे दहा या मनूतील मनु-पुत्र. आतां अकराव्या पर्यायांतील तिसऱ्या मनूचे सप्तर्षि मी सांगतो, ते मजपासून सम-जून थे. कश्यपकुलोत्पन्न हविष्मान्, भृगु-कुलोत्पन्न हविष्मान्, अत्रिकुलोत्पन्न तरुण, वसिष्ठपुत्र अनघ, अंगिरसकुलोत्पन्न उदधिष्णा, पुलस्तीपुत्र निश्वर व पुलहपुत्र अग्नितेज; हे सात. या मनूतील देवांचे तीन गण होते, व तिन्हीही गणांतील देव हे ब्रह्मदेवाचे पुत्र होते. संवर्तक, सुशर्मा, देवानीक, पुरुद्वह, क्षेम-धन्वा, दृढायु, आदर्श पण्डक व मनु याप्रमाणें हे नऊजण तृतीयसावर्णांचे पुत्र; यापुढें चवथ्या सावर्णांचे सप्तर्षि ऐक. वसिष्ठपुत्र द्युति, अत्रि-पुत्र सुतपा, अंगिरसपुत्र तपोमूर्ति, कश्यपपुत्र तपस्वी, पुलस्तीपुत्र तपोशन, पुलहपुत्र तपो-रवि व भृगुपुत्र तपोधृति; हे सात. या मनूत पांच देवगण होतील, व ते सर्वही ब्रह्मदेवाचे मानसपुत्र असतील. देववायु, अदूर, देवश्रेष्ठ, विदूरथ, मित्रवान्, मित्रदेव, मित्रसेन, मित्र-कृत्, मित्रबाहु आणि सुवर्चा, हे बाराव्या मनूतील मनुपुत्र होतील. यानंतर येणाऱ्या तेराव्या पर्यायांतील मनूचे सप्तर्षि ऐक. अंगिरा-पुत्र धृतिमान्, पुलस्तिपुत्र हव्यप, पुलहपुत्र तत्वदर्शी, भृगुपुत्र निरुत्सुक, अत्रिपुत्र निष्प्र-कंप, कश्यपपुत्र निर्मोह व वसिष्ठपुत्र सुतपा; हे सात. या मनूत देवतांचे तीनच गण होतील, असें ब्रह्मदेवानें सांगून ठेविलें आहे. या तेराव्या मनूतील जे मनुपुत्र होतील, ते रुचीचे पुत्र असें समजावें. यांचीं नांवें:—चित्रसेन, विचित्र, नय, धर्मभूत, धृत, सुनेत्र, क्षत्रवृद्धि, सुतपा, निर्भय व दृढ; हे तेराव्या अथवा रौच्य मन्वंतरांतील मनुपुत्र. आतां चौदाव्या पर्यायांतील म्हणजे भौत्यमन्वंतरांतील सप्तर्षि. एक भृगुपुत्र अतिबाहु, अंगिरसपुत्र शुचि, अत्रि-पुत्र युक्त, वसिष्ठपुत्र शुक्र, पुलहपुत्र अजित,

कश्यपपुत्र अग्नीध्र व पुलस्त्यपुत्र भार्गव; हे अखेरचे सप्तर्षी समजावे.

जो कोणी प्रभातकाळीं उठून या सप्तर्षींचें—होऊन गेलेल्या व पुढें येणाऱ्या—नाम-संकीर्तन करील त्याला सुख, यश व दीर्घा-युष्य हीं प्राप्त होतील.

असो; जनमेजया, या शेवटल्या मनूत देवतांचे गण पांच होतील; व तरंगभीरू, वप्र, तरस्वान्, उग्र, अभिमानी, प्रवीण, जिष्णु, संक्रंदन व सबल; हे भौत्य मनूतील मनु-पुत्र. या भौत्यमनूचा म्हणजे चौदाव्या मनूचा अंमल संपला म्हणजे त्याबरोबरच कल्पाचाही शेवट होतो. याप्रमाणें होऊन गेलेले व पुढें येणारे सर्व मनु मी सांगितले.

हे राजा, या चौदा मनूनीं आपल्या पुत्र-पौत्रांसह मिळून ही अनेक ग्रामनगरांनीं भरलेली व समुद्रापर्यंत पसरलेली अफाट पृथ्वी हिचें पुरापूर सहस्र युगेंपर्यंत आपल्या तपो-बलानें परिपालन करावें, व आपआपला काल पुरा झाला कीं, आपण लयास जावें, अशी परमेश्वराची कायमची योजना आहे.

## अध्याय आठवाः

—:०:—

### मन्वंतरगणना.

जममेजय म्हणतो:—हे महाबुद्धिमंत! वैशंपायना, मला आपण मन्वंतरे, युगें व ब्रह्म-देवाचा देव या सर्वांच्या कालगणनेचें प्रमाण कसकसें, तें कृपा करून सांगावें.

वैशंपायन सांगतात:—हे अरिमर्दना, लौकिकांत मनुष्यांचे कालगणनेचें अत्यंत श्रेष्ठ किंवा निर्विवाद माप किंवा मान म्हटलें म्हणजे

१ मूळांत ' इत्ये ते नामतोतीताः ' असा पाठ आहे, परंतु त्याचे ठिकाणीं ' इत्येतेऽनागतातीताः ' असा पाठ पाहिजे. परवीं समंजस अर्थ होत नाहीं.

सूर्याच्या नित्य गतागतानें उत्पन्न होणारा अहोरात्रीचा काल हें होय. हेंच सुप्रसिद्ध प्रमाण घेऊन मी तुला कल्प, युग, ब्रह्मदेवाचा दिवस या सर्वांचा हिशोब सांगतो. प्रथमारंभी कालमापनाचें अत्यंत अल्प व सर्वांत सहज माप म्हटलें म्हणजे डोक्याचे पापणीची उघडझांप होण्याला जो काल लागतो तो होय. या कालाला शास्त्रांत निमेष असें म्हणतात. तेव्हां निमेष हें कालमापनाचें लघुतम-प्रमाण आपण घेऊं. या मापानें पाहातां अशा पंधरा मापांचा म्हणजे पंधरा निमेषांचा जो काल त्याला एक काष्ठा असें म्हणतात. अशा तीस काष्ठांची एक कला होते. अशा तीस कलांचा एक मुहूर्त होतो व अशा तीस मुहूर्तांचें एक अहोरात्र होतें, असें ज्ञाते लोक मानतात. एक अहोरात्र म्हणजे चंद्रसूर्याची दैनंदिन गतीची एक फेरी झाली. हें अहोरात्राचें कालमान विशेषतः मेरूच्या म्हणजे विषुववृत्ताच्या आसपासचे जे प्रदेश आहेत त्यांत लागू पडतें. अशीं पंधरा अहोरात्रें लोटलीं म्हणजे त्याला पक्ष म्हणतात. अशा दोन पक्षांच्या कालाला मास असें म्हणतात. असे दोन मास लोटले म्हणजे एक ऋतु होतो; तीन ऋतूंचें एक अयन होतें; व अशा दोन अयनांचें एक वर्ष होतें; आणि वर्षांतील या दोन अयनांपैकी एकाला दक्षिणायन व दुसऱ्याला उत्तरायण अशी संज्ञा गणितशास्त्राचें रहस्य जाणणाऱ्यांनीं दिली आहे.

या वर दिलेल्या मानानें दोन पक्षांनीं युक्त जो एक मास म्हणजे महिना तें पितरांचें एक

१ अमरकोशांत हें प्रमाण 'अष्टादशानिमेषास्तु काष्ठा' असें दिलें आहे; परंतु विष्णुपुराणांत "काष्ठा निमेषा दश पंचच" असेंच आहे.

२ असें म्हणण्याचें कारण ध्रुवाकडील दिवसरातीची मर्यादा फार दीर्घ आहे, हें सर्वश्रुतच आहे.

अहोरात्र; अथवा आपल्या माणसांचा एक महिना म्हणजे पितरांचा एक दिवस असें कालवेत्ते समजतात. या दोन पक्षांतील जो कृष्णपक्ष तो त्यांचा दिवस व आपला शुक्लपक्ष ती त्यांची रात्र; व म्हणूनच, हे राजा, पितृश्राद्धें (महालयादि) आपल्या कृष्णपक्षांत म्हणजे पितरांच्या दिवसकाळांतच करावे लागतात. आतां वर सांगितलेल्या मनुष्यांच्या कालगणतीनें जो एक संवत्सराचा काल तेवढ्यानें देवांचें एक अहोरात्र होतें. पैकीं उत्तरायण तो देवांचा दिवस व दक्षिणायन ती रात्र, असें कालाचें रहस्य जाणते जे ज्ञाते त्यांचें मत आहे. हें देवांच्या दिवसाचें मान सांगितलें. अशा मानानें देवांची दहा वर्षे झालीं म्हणजे मनूचें एक अहोरात्र होतें. अशी दहा अहोरात्रें झालीं म्हणजे मनूचे मापाचा एक पक्ष झाला. असे दहा पक्ष झाले म्हणजे मनूच्या मापाचा एक मास होतो. असे बारा महिने झाले म्हणजे एक ऋतु होतो, असें तज्ज्ञांचें मत आहे. अशा तीन ऋतूंचें एक अयन होतें व अशा दोन अयनांचा एक संवत्सर होतो. या मानाची चार हजार वर्षे गेलीं म्हणजे कृत-युगाचा काल पूर्ण होतो, व अशा चारशें वर्षांचा संध्याकाल होतो, व इतकीच म्हणजे चारशें वर्षे संध्यांश असतो. ही कृत-युगाची व्यवस्था झाली. त्रेतायुगाचा काल मनूच्या तीन सहस्रवर्षे असतो. या युगाचा संध्याकाल तीनशें वर्षेपर्यंत व पुनः तितकीच वर्षे संध्यांश असतो. याच हिशोबानें दोन सहस्र वर्षांचें द्वापरयुग मानलें आहे. याचा संध्याकाल याच मानानें दोनशें वर्षांचा मानिला आहे व संध्यांश म्हणजे युगाचा अंतकाल

१ एक युग संपून दुसरे आरंभिण्याचे मध्यंतरीं होणारा जो काल त्याला संधिकाल अथवा संध्याकाल म्हणतात.

हा ही दोनशेंच वर्षे मानिला आहे. याच हिशोबाने कलीची मर्यादा ज्ञात्यांनी एक सहस्र वर्षे गणिली आहे; व याचा संधिकाल या मानाच्या शंभर वर्षांचा असतो, व तितक्याच वर्षांचा संध्यांश असतो. याप्रमाणे ही युगे मिळून एकंदरीत बाराहजार वर्षांची गणती सांगितली आहे. आतां ह्याच दिव्य म्हणजे देवांच्या कालमापनपद्धतीच्या हिशोबाने तुला युगांचे गणित सांगतो, ते ऐक. कृत, त्रेता, द्वापर व कलि या चार युगांचे एक युग किंवा महायुग होते. अशा एका युगाची म्हणजे महायुगाची सत्तरपट्ट केली असतां जो काल होतो, तेवढ्याला गणितज्ञान्यांनी मन्वंतर अशी संज्ञा दिली आहे. मार्गे जे अयन सांगितले आहे तेही याच मापाचे व अशीं अयने दक्षिण व उत्तर मिळून दोन आहेत; व याला अयन असें माप पडण्याचे कारण, अयन या शब्दाचा मुख्यार्थ गमन किंवा गति असा आहे. यामुळे मनुचे एक अयन होणे म्हणजे मनुचा अंत किंवा लय होणे असाच आहे. एक मनु लय पावला म्हणजे दुसरा प्रकट होतो, तोही तितकाच काल राहातो. याप्रमाणे अनेक मनु लोटतात तेव्हां ब्रह्मदेवाचा एक संवत्सर होतो. आतां अनेक म्हणून जे मोघम सांगितले, त्यांचा बरोबर हिशोब दहा हजार मन्वंतरे म्हणजे एक अहोरात्र असा ज्ञात्यांनी केला आहे. अर्थात् यांतील निम्मे काल दिवसाचा व निम्मे काल रात्रीचा. ब्रह्मदेवाचा जो दिवस म्हणून सांगितला त्यालाच कल्प अशी संज्ञा आहे. आतां सहस्रयुगांची जी ज्ञात्यांनी रात्र सांगितली ती चालू झाली असतां ही पृथ्वी तिच्यावरील पर्वत, वृक्ष व अरण्ये, यांसह पाण्यांत बुडून रहाते. अशी सहस्र युगांची रात्र लोटली म्हणजे ब्रह्मदेवाचे एक अहोरात्र होते व एका कल्पाचाही शेवट होतो. असल्या

युगांचा समग्र इतिहास मीं तुला सांगितला. प्रत्येक मन्वंतरांत मार्गे सांगितलेलें कृतत्रेतादि युगचतुष्क यावयाचेच. असले हे चौदा मनु मीं तुला सांगितले. यांच्या संकीर्तनाने यश वाढते; कारण पुराणासहित वेदांतही हे सर्व मनु मोठे समर्थ प्रजापालक झाले व यांचे कीर्तनाने धन्यता प्राप्त होते, असें सांगितले आहे. एका मन्वंतराची अखेर येऊं लागली म्हणजे सृष्टीचा संहार होऊं लागतो व संहार पूर्ण झाला म्हणजे कांहीं कालाने पुनरुत्पत्ति चालू होते. संहार व पुनरुत्पत्ति यांच्या मध्ये जो शांततेचा काल असतो त्यावेळीं सृष्टि ब्रह्मांत लीन असते व त्या ब्रह्माचे वर्णन मीं शंभर वर्षे मोडलीं तरी देखील माझे हातून होणे शक्य नाही. दर मनुला जी प्रजा म्हणजे जरायुजादि चतुर्विध सृष्टि उत्पन्न होते, तिचा संहार मन्वंतरांतच चालू असतो. मात्र त्या संहारांत त्या मन्वंतराचे रक्षक म्हणून जे देव व सप्तर्षि निर्माण केलेले असतात ते लय पावत नाहीत. ते आपल्या ब्रह्मचर्याने, विद्वत्तेने व तपोबलाने तसेच कायम रहातात. परंतु हजार युगे जेव्हां पुरी होतात तेव्हां कल्पाचा निःशेष अंत होतो. या वेळीं म्हणजे कल्पांतीं चराचर सर्व भूतें द्वादश आदित्यांच्या तेजाने जळून खाक होऊन आदित्यांच्या रूपाला मिळतात, व ते आदित्य ब्रह्माला पुढे करून सर्व संहारकर्ता, शक्तिमान्, सर्वातिर्व्यापी कल्पाकल्पाला पुन्हा पुन्हा भूतसृष्टि निर्माण करणारा, अव्यक्त, सनातन व तेजोमय जो अखिलजगत्स्रष्टा परमात्मा नारायण त्यांत लीन होतात. नंतर सर्वत्र एकच जलमय होऊन जातें व रात्र सुरू होते. ही रात्र सुरू झाली म्हणजे हें अखिल ब्रह्मांड ब्रह्मदेवाची सहस्र वर्षेपर्यंत नारायणाच्या उदरांत झोप घेत स्वस्थ पडतें. हा जो निद्रेचा काल यालाच रात्री अशी संज्ञा दिली आहे. या कालीं

पितामह ब्रह्मदेव योगनिर्द्वेत गर्क असतात. मग अशीही सहस्रयुगमानाची रात्र संपली म्हणजे सर्व लोकांचे आजोबा जे भगवान् ब्रह्मदेव ते जागे होतात व पुन्हा सृष्टि करावी अशी त्यांचे मनांत इच्छा उत्पन्न होऊन ते पुन्हा सृष्टीच्या उद्योगाला लागतात. उद्योगाला लागले म्हणजे सृष्टि कोणत्या रीतीने करावी वगैरे गोष्टींबद्दलची पूर्वकल्पांतील स्मृति त्यांना उपस्थित होते. पूर्वी काय काय गोष्टी घडल्या, आपण सृष्टीचे कामी कसकसा यत्न केला होता, ब्रह्मांडातील सूर्यादिदेव व पिंडांतील किंवा प्राणिमात्रांच्या देहांतील नेत्रादि इंद्रियगोल यांची योजना कसकशी व कोठे होती, या सर्व गोष्टींची त्याला आठवण होते, व ते पहिल्या नमुन्यावर सृष्टि रचू लागतात. मात्र वस्तूंच्या बाह्य स्वरूपांत कधी कधी थोडा फेर दिसण्यांत येतो. सृष्टीच्या उद्योगाला ब्रह्मदेव लागला म्हणजे पूर्वी कल्पांतीं द्वादशादित्यांच्या किरणांनी जीं भूतें दग्ध झालीं होती म्हणून सांगितलें तीं सर्व देव, ऋषि, यक्ष, गंधर्व, पिशाच, उरग व राक्षस यांसह युगारंभाला जन्मास येतात. हेमंतादि सर्व ऋतूंचे शीतोष्णादि भाव त्या त्या ऋतूंत पूर्वीच्या ठरावाप्रमाणेंच पुन्हा उत्पन्न होतात, व ब्रह्मदेवाच्या रात्रीत म्हणजे लयकालांतही पूर्वकल्पांतील लयकालाच्या स्वरूपानेंच वस्तुमात्र लीन असतें. रात्र सरली म्हणजे प्रजाकर्ता ब्रह्मदेव परमात्म्याच्या उदरांतून बाहेर येऊन वर सांगितल्याप्रमाणें सहस्रयुगांचा दिवस करून त्या अवकाशांत क्रमाक्रमानें पूर्ववत् सृष्टिरचना करितो; व कालाच्या संख्येचें व विभागाचें त्याला परिपूर्ण ज्ञान असल्यामुळें दिवसाची मर्यादा भरतांच सहस्रयुगांची रात्र निर्माण करून प्रजेचा पुन्हा संहार करतो.

रात्र संपली कीं, पुनरुत्पत्ति करतो. हा चाला पुनःपुन्हा चालूच आहे. मात्र, हे भरत-श्रेष्ठा, प्रत्येक कल्पांत जे कोणी देव, मनुष्य किंवा ऋषि आपल्या शुद्धाचरणानें देहात्म-बुद्धित्यागपूर्वक सनातन ब्रह्माशीं एकभाव पावतात, ते मात्र या पुनःसृष्टीच्या तडाक्यांत सांपडत नाहींत, ते कायमचे मुक्त होतात. सर्व देवाधिदेव, सर्व शक्तिमान्, सर्वात्मा हरि याचीं स्थूल आणि सूक्ष्म अशीं दोन रूपें आहेत. त्यांतील सांप्रत चालू असलेला वैवस्वत मनु हा त्याच्याच तेजाचा अंश स्थूल रूपानें प्रकट झाला असल्यामुळें व ज्या वृष्णिवंशांत सर्व असुरांचा नाश करून सर्व लोकांचें हित करण्याच्या संकल्पानें परमात्मा हरि स्वतः प्रकट झाला त्या वृष्णिकुलाची हकीकत तुझ्या प्रश्नास्तव मला सांगणें प्राप्त झालें असल्यानें व या वृष्णिकुलाची पूर्वपीठिका सांगण्याच्या संबंधांत प्रस्तुत चालू असलेल्या वैवस्वत मनूचा उल्लेख करण्याचें ओवांस आल्यामुळें या वैवस्वत मनूचें वृत्त मी तुला थोडेंसें विस्तारानें सांगणार आहे.

## अध्याय नववा.

—०:—

### द्वादश आदित्यांची उत्पत्ति.

वैशंपायन सांगतात:—दक्षकन्या अदिति हिचे ठिकाणीं कश्यपापासून विवस्वान् हा उत्पन्न झाला. त्वष्टाचा जी मोठी रागीट असून सर्व त्रैलोक्यांत सुरेण या नांवानें प्रख्यात होती, ती या विवस्वानाची भार्या झाली. या कुळांत हिचें नांव संज्ञा असें ठेविलें होतें. ही संज्ञा जातीचीच मोठी रूपवान् व तपस्वी असून हल्लीं उमेदीचे भरांत असल्यामुळें तिला तो तापदायक पति रुचेना. कारण त्याच्या अत्यंत तेजामुळें त्या क्रोमल व सुंदर स्त्रीचे

अवयव ठिकाठिकाणीं भाजून तिच्या रूपाचा बिघाड होत चालला, यामुळे ती त्याच्यावर संतुष्ट नव्हती. या विवस्वानालाच मार्तंड असेही नांव होतें. हें पडण्याचें कारण असें झालें कीं, याचे खेपेस याची आई अदिति ही गरोदर असतां बुध भिक्षेसाठीं तिचे दारांत आला. परंतु, गर्भभारानें तिचें पाऊल मंदावल्यामुळे तिला झपडिशीं जाऊन भिक्षा घालतां आली नाहीं. त्यायोगानें बुधानें रागावून तिला शाप दिला कीं, ‘ हा तुझा “ अण्ड ” म्हणजे गर्भ मृत होईल. ’ त्यावरून अदितीला आपला अण्ड मृत आहे असें भासून त्या गर्भाला पुढें मृतांड म्हणजे मार्तंड असें नांव पडलें. शाप असून हा गर्भ जिवंत कसा उपजला म्हणशील तर अदितीचा भर्ता जो कश्यप त्यानें स्वखीला बुधानें दिलेला शाप ऐकतांच तिची दया येऊन आपल्या तपोबलानें तो शाप दूर केला, व हा अण्डांत मृत नाहीं असें प्रेमानें तिला म्हणाला; तेव्हांपासून त्या गर्भाचें मार्तंड हेंच नांव पडलें. असो; आपल्यापेक्षां अत्यंत तेजस्वी अशा त्या विवस्वानाची संगती त्या कोमल स्त्रीला अतीच असह्य होऊं लागली. कारण हा विवस्वान् म्हणजे तिन्ही लोकांना नित्य तापवून सोडणारा जो सूर्य तोच होय. तथापि अशाच्याही संगतींत त्या संज्ञेला तीन अपत्यें झालीं. त्यांपैकीं पहिले गर्भापासून वैवस्वत मनु हा जन्मला. यालाच प्रजापति, श्राद्धदेव असेंही म्हणतात, व दुसरे खेपेला जुळेंच झालें; त्यांत एक मुलगा व एक मुलगी अशीं अपत्यें होतीं. मुलाचें नांव यम व मुलीचें नांव यमुना. येथपर्यंत संज्ञेनें भर्त्याबरोबर कसेबसे दिवस काढले; परंतु जवळ जातांच भाजून काढणारें त्याचें तें द्वाड रूप तिला आवडेंना व सोसेहीना. तेव्हां रूपानें हुबेहूब आपल्यासारखी अशी तिनें सवर्णा नांवाची आपली प्रतिच्छाया उत्पन्न केली.

कारण ही संज्ञा जादूंत मोठी प्रवीण होती. निर्माण करतांच ती तिची छाया हात जोडून संज्ञेपुढें उभी राहून म्हणाली, ‘ शुचिस्मिते, मी काय करावें हें मला सांग. हे सुंदरि, मी तुझ्या सर्वथा आज्ञेत आहे; करितां मी तुझी काय कामगिरी करूं तें मला सांग. ’

संज्ञा म्हणते:—हे सवर्णे, देव तुझें कल्याण करो. मी आतां माझ्या बापाचे घरीं जातें व तूं ह्या माझे घरांत मनांत कांहीं एक किंतु न आणितां माझे जागीं रहा. हे दोन माझे मुलगे आहेत व सुरेखशी दिसते आहे, ही माझी मुलगी आहे. या तिन्ही मुलांना तूं माझेचप्रमाणें जीव लावून वागीव; व मीं योजिलेली युक्ति ही भगवान् मार्तंडाला कांहीं झालें तरी सांगूं नको.

छाया उत्तर करिते:—हे देवि, तूं खुशाल आपल्या बापाच्या घरीं जा. तुझ्या नवऱ्याला आपोआप संशय येऊन त्याच्या निरासार्थ माझ्या वेणीला आंसडा देऊन तो विचारीपर्यंत अथवा मला शापाची भीति घालीपर्यंत मी मिळून रहस्यभेद करणार नाहीं, ही खात्री ठेव.

वैशंपायन सांगतात:—छायेचें हें आश्वासन घेऊन व तिला जपून वागण्याविषयीं पुनः पुनरपि बजावलें असतां तुझ्या शब्दाबाहेर मी तिळभर जाणार नाहीं असें तिनें दिलेलें वचन घेऊन ती विचारी संज्ञा लाजत लाजतच बापाकडे गेली. परंतु न बोलावितां नवऱ्याच्या घरून उठून ती आपले घरीं आली, हें पाहतांच बापानें तिची निर्भर्त्सना करून तूं आलीस तशी आपल्या नवऱ्याच्या घरीं चालती हो, म्हणून पुनःपुनः तिला निक्षून सांगितलें. बापाकडे डाळ शिजेना तेव्हां आपलें खरें रूप लपवून व घोडीचें कृत्रिम रूप घेऊन ती

सुंदरी उत्तर कुरुप्रदेशांत जाऊन तेथें गवत चरत राहिली.

इकडे तिनें आपले ठिकाणीं उभी करून ठेविलेली जी तिची छाया ती आपली पहिली स्त्री संज्ञाच आहे असें समजून तिच्याशीं आदित्य हा पूर्ववत् संबंध ठेवीत असतां त्याचेपासून तिला आदित्यासमान एक पुत्र झाला. हे जनमेजया, हा पुत्र याचा सापत्न वडील बंधु जो वैवस्वत मनु त्याच्याशीं दिसण्यांत हुबेहुब सारखा असल्यामुळे त्याला सावर्ण अशी संज्ञा पडली, व हाच पुढें सावर्णमनु या नांवानें मनु होईल. यानंतर त्या छायेला आदित्यापासून दुसरा एक पुत्र झाला. त्याचें नांव शनैश्वर. या छायारूप संज्ञेला जेव्हां स्वतःचे दोन पुत्र झाले तेव्हांपासून पहिल्या मुलांपेक्षां या मुलांवर ती अधिक प्रेम करूं लागली. ही गोष्ट पहिल्यांतील वडील जो वैवस्वतमनु त्यानें सहन केली; परंतु त्याचा धाकटा भाऊ जो यम, तो सहन करीना. कांहीं आंगचे पोरपणानें, कांहीं संतापानें व कांहीं पुढें मोठा अनर्थ ओढवावयाचा होता त्या योगानें यमाला तशी बुद्धि होऊन त्यानें या भेदभावाबद्दल संज्ञेची सडकून खरडपट्टी काढली, व तिला तंबीही दिली. पण हें संज्ञेला कसें खपावें व काय म्हणून खपावें? तें बोलणें तिचे जिवाला फारच झोंबलें व संतापून जाऊन तिनें यमाला तत्काळ शाप दिला कीं, 'तूं जी ही मजवर मला लथ मारण्यासाठीं तंगडी उचलली आहेस ही गळून पडेल,' असा तिनें जेव्हां ताडकन् शाप दिला. तेव्हां संज्ञेचा हा शाप ऐकून यमाचेंही मन फार उदास झालें, व तिचे ते शब्द त्याला सारखे टोंचीत राहिले. अशा स्थितींत तो बापाकडे जाऊन हात जोडून दीनवाणीनें झालेली सर्व हकीकत बापाला सांगून म्हणाला, 'आपण तरी कृपा करून हा आईनें दिलेला शाप दूर करा. मी आईला

बोलूं नये; पण एका अर्थीं मी बोललों यांत माझा तरी अपराध काय? आपणच न्याय सांगा कीं, आई म्हटली म्हणजे तिनें सर्व मुलांशीं सारखे प्रेमानें वागावें कीं नाहीं? परंतु ही आमची आई आमचेकडे पाहातही नाहीं, पण आमचा जो धाकटा भाऊ आहे त्याचे सगळे थाटमाट करीत असते. ही गोष्ट आम्हांला कशी रुचावी. तेव्हां रागाचे तडाक्यांत मीं पाय उचलला खरा, नाहीं म्हणत नाहीं; परंतु, उचलला मात्र, तिच्या देहावर मारिला नाहीं. बाकी हेंही करणें योग्य नव्हे खरें, परंतु पोरपणानें किंवा मूर्खपणानें मजकडून ही गोष्ट झाली, इकडे लक्ष देऊन वास्तविक तिनें मला क्षमा केली पाहिजे होती. परंतु तें कांहीं न करितां ती मला म्हणाली, 'पोरा, मी तुझी आई अर्थात् मी तुला देवाप्रमाणें वंद्य असें असतां तूं आपली मर्यादा उल्लंघून ज्या अर्थीं हा मजवर पाय उचलिलास त्या अर्थीं हा गळून पडेल. यांत अंतर व्हायचें नाहीं.' तर बाबा, तुम्हींच सांगा कीं, एकवेळ पोर वाईट होऊं शकेल. कारण किती झालें तरी पोरच तें; परंतु माता कधीं कुमाता होईल काय? हे तपस्वि-श्रेष्ठा, परंतु माझ्या जन्मदात्रीनेंच मला शाप दिला आहे, ही गोष्ट आपण ध्यानांत घ्या, व आपल्या कृपाबलानें तरी हा माझा पाय गळून न पडेल असें करा.'

विवस्वान् ( सूर्य ) म्हणतो:—बेटा, तुझ्यासारख्या सत्यवादी व धर्मवेत्त्या मुला-ला ज्या अर्थीं इतका क्रोध आला त्या अर्थीं या कामांत कांहीं तरी मोठेंच गूढ असलें पाहिजे. एरवीं आई मुलाला असा शाप देईल असें होणें नाहीं. आतां तूं शाप दूर व्हावा म्हणून म्हणतोस परंतु तुझ्या आईचे शब्द मला फिरवितां येत नाहींत. तथापि मी तिचे शब्दाला कायम राखून इतकीच तडजोड करितों

कीं, तिनें तुझा पाय गळून पडेल म्हणून म्हटलें आहे तो गळून म्हणजे हाडासकट संबंध तुटून भुईवर न पडतां त्याचें मांस किडे पडून सडून भुईवर पडेल. म्हणजे या युक्तीनें तुझे आईचाही शब्द खरा झालासा होऊन तुझाही कायमचा घात न होतां तूं सुखी होशील. म्हणजे तिचा शापही पुरा झाला व तूंही बचावलास. याप्रमाणें यमाची समजूत काढून आदित्य संज्ञेकडे गेला व तिला म्हणाला, “अग, सर्व मुलें तुझीच; खरें पाहातां तुझे साऱ्यांवरच सारखें प्रेम असावें, परंतु पाहावें तों तुझे प्रेमांत वारंवार विषमपणा आढळून येतो, असें कां असावें तें मला फोडून सांग. ” सूर्यानें असें तिला खोदून विचारलें. परंतु, खरी गोष्ट सांगणें तिला इष्ट नसल्यामुळें ती टाळाटाळ करूं लागली व खरें कांहीं सांगेना. अशी स्थिति झाली त्यावेळीं सूर्यानें समाधि लावली व योगबलानें खरा प्रकार काय आहे, तो ध्यानांत आणिला; आणि झालेली लबाडी ध्यानांत येतांच तिला शाप देऊन नाहीशी करण्याच्या वेतांत येऊन त्यानें त्वेषानें तिचा बुचडा धरिला. नवरा इतक्या बाणीवर आलेला पाहून व तो माझे केश धरी तों मी बोलणार नाहीं. असें आपण जें संज्ञेला वचन दिलें होतें त्याची मर्यादा झाली असें पाहून, छायेनें अधिक टाळाटाळ न करितां सूर्याला अक्षरशः कच्ची हकीकत होती तशी सांगितली. तिचे मुखांतून ती हकीकत कानीं येतांच विवस्वान् क्रोधाचे आवेशांत तडक त्वष्ट्याकडे चालता झाला. पण त्याला पाहातांच त्वष्ट्यानें तत्काल त्याच्या योग्यतेनुरूप त्याचें पूजन करून, व हा आतां संतापानें आपणास जाळून टाकणार असा रंग दिसतांच मोठ्या युक्तीनें त्याची समजूत काढून त्याला शांत केलें. त्वष्टा म्हणाला, “हे विवस्वाना, तुला तसें वाटतें खरें,

परंतु माझी मुलगी तुला सोडून गेली यांत तिचा तिळभरही दोष नाही. काय करील विचारी ! तुझे हें रूप म्हणजे नुसता आगीचा लोळ. हा एक तर तिचे डोळ्याला गोड दिसत नाही; दुसरे, तिच्या शरीराला तो सहन होत नाही. तेव्हां निरुपायास्तव तुला सोडून ती निघाली. पण निघाली म्हणून तिनें काडीभरही गैरवर्तन केलें नाही. आजच तुला तुझी ती स्त्री घोडीचें रूप घेऊन उत्तर कुरु-प्रदेशांतील हिरव्यागार कुरुणांत फिरतांना दृष्टीस पडेल. तेथें तिची स्थिति पाहिली असतां तिचें आचरण फारच पवित्र असून ती सदैव तपश्चर्येत निमग्न आहे, असें तुला दिसेल. बापडी केवळ पिकलीं पानें खाऊन असल्यामुळें अत्यंत दीन व रोड होऊन गेली आहे; व तुजविरहित अन्य पुरुष तिला पाहाणें नसल्यामुळें माथ्यावर जटा वाढवून पूर्ण ब्रह्मचर्यानें ती रहात आहे. ऐनयौवनांत पतिविरह सोसावा लागल्यानें विचारी हत्तीच्या सोंडेच्या तडाक्यांत सांपडलेल्या सुकुमार पद्मिनीप्रमाणें हैराण होऊन गेली आहे, तथापि इतकी दशा झाली असतांही तिनें तिळभर अमार्गी पाऊल ठेविलें नाही, यास्तव ती सर्वांच्या स्तुतीस पात्र आहे. तिनें आपलें वर्तन इतकें शुद्ध कसें राखलें म्हणशील तर, हे किरणनाथा, तिनें योगाचा आश्रय केला असून तिचें योगसामर्थ्यही फार वाढलें आहे. असा; एतावता माझी मुलगी तुझ्या संगतीं राहाण्यास धर्मतः नाकबूल नाही, परंतु तुझ्या या विक्राळ रूपापुढें तिचा उपाय चालत नाही. या कामीं मला एक उपाय सुचला आहे. त्याविषयीं तुझी जर कनुली असेल तर तो मी अमलांत आणतो. तो उपाय असा कीं, तुझे हें ओबडधोबड व वांकडें मुसकें आणि तेजाचा केवळ लोळ असलें भ्यासूर रूप मी बदलून माझ्या मनांत आहे त्या-



प्रमाणें याला अति मोहक आकार देतों.” त्वष्ट्याची ही गोष्ट सूर्याला रुचली, व सूचने-बद्दल त्याचे आभार मानून त्याला वाटेर तसें आपलें रूप फिरवावें अशी त्यानें त्वष्ट्याला अनुज्ञा दिली. सूर्याचा हा कबूलजबाब पदरांत येतांच त्वष्ट्यानें सूर्याला चाकावर घालून त्याचे रूपांत जो ओबडधोबडपणा होता व तेजांत जो भ्यासूरपणा होता तो साफ कांतून काढिला. याप्रमाणें त्या कुशल त्वष्ट्यानें तें रूप कांतून काढिलें असतां चरकीं धरलेल्या भांड्याप्रमाणें तें फारच साफसूफ व सुबक दिसूं लागलें व त्या दिवसापासून सूर्याच्या मुखमंडलावर कायमची लाली चढूं लागली. त्वष्ट्यानें चरकावर घातल्यावेळीं त्या रूपावरील तेजाचा जो तास किंवा चुरा खालीं पडला त्यापासून तेजस्वी असे बारा आदित्य निर्माण झाले, त्यांचीं नांवें:—धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इंद्र, विवस्वान्, पूषा व पर्जन्य हा दहावा, त्याच्यापुढें त्वष्टा, व उत्पत्तिक्रमानें शेवटला परंतु महत्त्वानें सर्वांत वरिष्ठ असा बारावा विष्णु. आपल्या देहापासून असले द्वादश आदित्य निर्माण झाले हे पाहून सूर्यदेवाला फारच आनंद झाला. असो; एवढें झाल्यावर त्वष्ट्यानें सूर्याची गंध, पुष्प, अलंकारांनीं पुनरपि पूजा करून त्याला एक देदीप्यमान मुकुट दिला, व प्रार्थना करून म्हणाला, “ हे देवा, आपली भार्या वडवेचें म्हणजे घोडीचें रूप घेऊन उत्तर कुरुप्रदेशांतील हिरव्याचार कुरणांत फिरते आहे, तिजकडे आपण निःशंकपणें जा. ” त्वष्ट्याचें हें वाक्य ऐकून सूर्यालाही मौज वाटली व आपल्या भार्याला गोंड वाटण्याकरितां आपणही गमतीनें अश्वार्थें रूप घेऊन अंतर्गामीं योगबलानें आपली स्त्री काय करीत आहे व कोठें

आहे हें त्यानें न्याहाळलें. त्यावेळीं ती घोडीचें रूप घेऊन निर्भय संचार करीत आहे, व तिच्या व्रतस्थपणामुळें व तेजाच्या उग्रतेमुळें कोणीही प्राणी तिचे जवळ जाऊं शकत नाही, असें त्याचे दृष्टीस पडलें. मग तिचे वर्तनानें अंतर्गामीं खुष होऊन मोठ्या प्रेमानें तो तिज-जवळ जाऊन भिडला व कामविव्हल होऊन तिला भोग देण्याच्या रंगांत आला, परंतु हा आपला पति हें तिच्या ध्यानांत आलें नसल्यानें त्याला परपुरुष समजून ती त्याची मैथुनेच्छा सिद्धीस जाऊं देईना व तडातड दुगाण्या झाडूं लागली. परंतु अशा वेळीं सूर्याला काम-वेग अनावर झाल्यानें त्यानें तिच्या मुखांतच आपलें वीर्य सोडिलें, पण त्या पवित्र स्त्रीनें तें तेथेंही ठरूं न देतां फुरद्रीशीं तें परत उडविलें. तें नेमकेंच त्या अश्वरूपधारी सूर्याच्या नाकपुड्यांत घुसलें; पण कोठेंही गेलें तरी देवाचें अमोघ वीर्य तें ! तें फुकट जावयाचें नाही, यामुळें तेथेंच त्या वीर्यापासून वेद्यांमध्ये श्रेष्ठ असे दोन अश्विनौदेव निर्माण झाले; यांतील एकाचें नांव नासत्य व एकाचें दक्ष. शिवाय अश्विनी म्हणजे घोडीपासून झाल्यामुळें या दोघांना अश्विनीकुमार असेही म्हटलें आहे. सारांश, आठवा प्रजापति जो मातंडसूर्य त्याचेपासून अश्विनीचें रूप धारण केलेली जी त्याची संज्ञा नामक भार्या तिचे ठिकाणीं हे अश्विनीकुमार निर्माण झाले. नंतर उभयतांनींही आपलीं पूर्वरूपें ग्रहण केलीं. त्यावेळीं संज्ञेला सूर्याचें रूप अतिशय मनोहर आहेसें दृष्टीस पडून फार आनंद झाला.

असो; आतां आपण यमाकडे वळूं. मार्गे सांगितलेच आहे कीं, यमानें छायेची अवज्ञा केल्यामुळें तिनें त्याला शाप दिला. तो शाप बसल्यापासून यम अंतर्गामीं फार कष्टी

झाला व त्याचा पूर्वीचा सर्व द्वाडपणा जाऊन त्याची वृत्ति फार निवळली; मग त्याने आपल्या प्रजांचें पालन फार धर्मनीतिपूर्वक —केवळ धर्मराजाप्रमाणें—केलें. या त्याच्या सत्कर्मानें तो फारच तेजास चढला, व त्याच गुणामुळें त्याला पितरांचें आधिपत्य व लोकपालकत्व असे दोन अधिकार मिळाले. इकडे त्याचा वडील भाऊ जो सावर्णमनु तो तपाच्या नादीं लागला व अजूनही मेरू पर्वतावर तो प्रभावशाली प्रजापति मोठें घोर तप करीत बसला आहे. या तपाच्या सामर्थ्यानें येत्या मन्वंतरांत त्याला सावर्णिक मनुचा अधिकार प्राप्त होणार आहे. असो; त्याचा भाऊ जो शनैश्वर त्याला तर नभोमंडलांत ग्रहरूपानें कायमची जागा मिळाली आहे. वर जे नासत्य म्हणजे जुळे अश्विनीकुमार सांगितले ते स्वर्गातील वैद्य झाले आहेत. याप्रमाणें, हे राजा, सेवत (?) हाही अश्वाना शांति देणारा झाला. त्वष्ट्यानें सूर्याला चरकीं लावले असतां जें त्याचें फाजील तेज कांतून पडलें होतें, त्या तेजापासून विष्णूच्या हातांत राहाणारें व युद्धामध्ये कधीही पराभव न पावणारें जें सुदर्शन चक्र तें निर्माण केलें. हें सुदर्शन चक्र करण्याचा मूळ हेतु दानवांचा साफ फडशा उडविणें हाच होता. यम व वैवस्वत मनु यांची जी धाकटी यमी नांवाची बहिण ती सर्व लोकांना पावन करणारी अशी यमुना नांवानें श्रेष्ठ नदी होऊन भूलोकांत वाहाते आहे. छायेचे जे दोन मुलगे त्यांतील पहिल्याला मनु असेंही म्हणतात, व सावर्ण असेंही म्हणतात. या मनुचा भाऊ म्हणजे छायेचा दुसरा पुत्र जो शनैश्वर हा सर्वलोकमान्य ग्रह होऊन आकाशांत जाऊन बसला, हें पूर्वीच सांगितलें आहे.

जो कोणी देवांचें हें जन्मवृत्त श्रवण

करील किंवा त्याचें मनन करील, तो विपत्ती-पासून मुक्त होऊन मोठ्या कीर्तीला चढेल.

## अध्याय दहावा.

—:०:—

### वैवस्वत मनुची संतति.

वैशंपायन सांगतात:—हे जनमेजया, वैवस्वत मनुला त्याच्याच तोडीचे नऊ पुत्र झाले, त्यांचीं नांवे:—इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्णु, शर्याति, नरिष्य, प्रांशु, नाभागारिष्ट, करूष व पृषध्र, असे हे नऊ. हे राजा, हे पुत्र होण्यापूर्वी मनु प्रजापतीनें मित्रावरुण देवतांना उद्देशून पुत्र व्हावा या इच्छेनें एक इष्टि केली; ती इष्टि चालली असतां व नऊ पुत्र उत्पन्न होण्याच्या अगोदर मित्रावरुणांच्या अंशानें मनूनें आहुती दिली; ती आहुती देतांच देव, गंधर्व, मनुष्य व तपोधन मुनि या सर्वासच परम संतोष होऊन ते म्हणाले, “शाबास, शाबास, काय तरी या मनूच्या तपाचें सामर्थ्य! केवढा तरी याचा वेदज्ञानासंबंधी अधिकार.” हे राजा, असें सांगतात कीं, देवादिक याप्रमाणें जो आनंदांनें उद्धारत आहेत तोंच त्या इष्टींतून दिव्य वस्त्र धारण केलेली, दिव्य अलंकारांनीं शृंगारलेली व जिची अंगगठण मोठी दिव्य आहे अशी इला नांवाची एक स्त्री उत्पन्न झाली. तिला पाहातांच, राजा मनु म्हणाला कीं, हे कल्याणि, मजबरोबर चल. तें ऐकून आपणास पुत्र व्हावा अशी ज्याला इच्छा झाली होती त्या मनु प्रजापतीला ती इला पुढीलप्रमाणें धर्म-युक्त वाक्य बोलली. इला म्हणाली, ‘हे वदान्य-श्रेष्ठा, ज्याअर्थी मी मित्रावरुणांच्या हविर्भागा-पासून उत्पन्न झालें आहे त्याअर्थी मी त्यांचे सन्निध जातें; कारण असें न करीन तर मजकडून अधर्म होऊन माझा नाश होईल. करितां तूं माझे आड येऊं नको, असें म्हणून

ती सुंदरी मित्रावरुणासन्निध जाऊन उभी राहिली व हात जोडून म्हणाली, 'देवहो, मी तुमच्या अंशापासून उत्पन्न झालें आहे, त्या-अर्थी मी आपली काय सेवा करावी तें मला सांगा. हा मनु तर मला म्हणतो आहे कीं, तूं मजबरोबर रहा. तर मी कसें करूं ?' या-प्रमाणें ती धर्मनिष्ठ साध्वी इला विनंति करीत असतां मित्रावरुणांनीं तिला जें उत्तर दिलें तें ऐकः—ते म्हणाले, 'हे सुश्रोणि, तुझ्या या धर्म-निष्ठेनें, विनयानें, दमानें व सत्यानें आम्हीं फारच खूष झालों, तर तूं आमची कन्या म्हणून लोकांत प्रसिद्ध होशील व यानंतर तुला याच देहीं पुरुषत्व प्राप्त होऊन, हे त्रैलोक्यसुंदरी, तूं या मनूचा वंश चालविणारा सुद्युम्न नांवानें प्रख्यात पुत्र होशील. तूं सर्व प्रजाजनांला आवडता होशील, धर्मशील होशील व तुज-पासून मनुवंशाची वृद्धि होईल.' मित्रावरुणांचें हें वचन ऐकतांच ती आपला पिता मनु याकडे जावयाला निघाली. जात असतां वाटेत ती बुधाचे दृष्टीस पडली, व त्यानें तिला 'भोग दे' म्हणून प्रार्थना केली. तीही तरुण असल्यानें त्याला वश झाली, व त्यांचे संयोगा पासून पुरूरवा नांवाचा प्रसिद्ध पुत्र तिला झाला. त्या पुत्राला जन्म दिल्यावर तिचा स्त्रीपणा जाऊन तिला पुरुषत्व प्राप्त झालें, व सुद्युम्न या नांवानें त्या रूपानें ती प्रसिद्ध झाली. त्या पुरुषरूपांत असतां त्याला उत्कल, गय व विनता असे तीन पुत्र झाले. यांपैकी उत्कलाला उत्कल देशाचें राज्य मिळालें; विन-ताशाला पश्चिम दिशेचें व गयाला पूर्वेकडील गया-नगरी ही त्याची राजधानी झाली. असो; अरिंदमा, वैवस्वत मनु हा आपल्या मूळरूपांत म्हणजे सूर्यरूपांत लीन झाल्यावर त्याच्या दहा पुत्रांनीं त्याच्या ताब्यांत असलेल्या या पृथ्वीचे

दहा वांटे केले. त्यांपैकी यज्ञस्तंभानीं व अरण्यें आणि रत्नें वगैरे यांच्या खाणी यांनीं चिन्हित असलेला जो मध्यदेश तो नऊ भावांतील ज्येष्ठ जो इक्ष्वाकु त्यानें घेतला. न्याय पाहातां हा वांटा सुद्युम्नाला मिळाला पाहिजे होता; परंतु तो मूळ कन्यारूप असल्यानें त्याला तें राज्य मिळालें नाहीं. वसिष्ठांनीं त्या धर्मनिष्ठ सुद्युम्नाची प्रतिष्ठान म्हणजे प्रयागप्रांतीं स्थापना केली. पुढें तें राज्य प्राप्त झाल्यावर सुद्युम्नानें तें आपला पुत्र पुरूरवा याजकडे दिलें. उत्क-लाला लोकविख्यात तीन पुत्र होते. त्यांचीं नांवें धृष्टक, अंबरीषः व दंड. तपस्वीलोकांना अतिशय सोईकर व सर्व लोकप्रसिद्ध जें दंड-कारण्य आहे, तें या दंड राजानेंच निर्माण केलें. या दंडकारण्याचें माहात्म्य असें आहे कीं, त्यांत पाऊल टाकतांच मनुष्य पापमुक्त होतो. स्त्री आणि पुरुष या उभयतांचीही लक्षणें ज्याचे ठिकाणीं आहेत असा जो सुद्युम्न किंवा इल (इला हिला पुरुषत्व आल्यावर इल असेंही म्हणत.) हा आपल्या ऐल नामक पुत्राच्या जन्मानंतर त्याला राज्य देऊन आपण स्वर्गीं गेला. नरिष्यन् याच्यापासून शक नांवाचे पुत्र झाले. नाभागापासून नृपश्रेष्ठ जो प्रसिद्ध अंबरीष तो झाला. धृष्णूपासून रणशूर असें धार्ष्टक संज्ञक क्षत्रिय कुल उत्पन्न झालें. करूषा-पासून मोठा पराक्रमी व रणमस्त असा कारूष नामक हजार क्षत्रियांचा समुदाय उत्पन्न झाला. नाभागारिष्टाला जे पुत्र झाले ते जन्मतः क्षत्रिय असतां कर्मदोषानें वैश्य झाले. प्रांशूला शर्याति नांवाचा सुप्रसिद्ध असा एकच पुत्र झाला, नरिष्यंताला दम नांवाचा

१ हा इल राजा एकदां शरवणांत गेला असतां पार्व-तीचे शापानें पुनः स्त्री झाला व नंतर शिवाचे कृपेनें एक महिना स्त्री व एक महिना पुरुष अशी त्याची व्यवस्था झाली.

एक मोठा शास्ता पुत्र झाला. शर्यातीला एक मुलगा व एक मुलगी, अशीं दोन अपत्ये झालीं. त्यांपैकी मुलाचें नांव आनर्त व मुलीचें नांव सुकन्या; हीच पुढें च्यवन ऋषीची स्त्री झाली. आनर्ताला रेव नांवाचा मोठा तेजस्वी पुत्र झाला. आनर्ताच्या राज्याला आनर्त देश म्हणत असून कुशस्थली ही त्याची राजधानी होती. रेवाला एकंदर शंभर पुत्र झाले. त्यांपैकी त्याचा ज्येष्ठ पुत्र ककुब्जी नांवाचा मोठा धार्मिक होता. यालाच रैवत असेंही म्हणत. बापापासून याला कुशस्थलीचें राज्य मिळालें. पुढें त्याला रेवती नांवाची कन्या झाली. ती उपवर झाली असतां तिला बरोबर घेऊन तो ब्रह्मलोकीं गेला. तेव्हां ब्रह्मदेव गात बसले होते. त्यामुळें तो तें गायन ऐकतच ब्रह्मदेवाचा एक मुहूर्तपर्यंत बसला. एक मुहूर्त झाल्यावर कास बोलावयाचें तें बोलून मृत्युलोकीं तरुणच्या तरुण परत आला. परंतु, तो आपल्या राजधानीस परत येऊन पाहातो तों तिचें सर्वच स्वरूप बदलून गेलें होतें. तिला अनेक द्वारे किंवा नगरवेशी बांधल्या असून यामुळेंच तिचें पूर्वीचें कुशस्थली हें नांव बदलून द्वारवती हें नांव पडलें होतें. एकंदरीत ती फार मनोहर झाली होती. वासुदेव म्हणजे कृष्णप्रभृति जे भोज, वृष्णि व अंधककुलोत्पन्न राजे यांचा तिजवर ताबा असून तीत यादवांचा फार भ्रमण होता. हे राजा, एक मुहूर्तांत एवढा फेरबदल झाला कसा म्हणून म्हणशील तर हा मुहूर्त ब्रह्मदेवाचा. अर्थातच आपलीं माणसांचीं किती तरी युगे एवढ्यांत लोटलीं व यामुळें सहजच अशी उलथापालथ झाली. असो; स्व-नगरीस आल्यावर नगरीच्या स्थित्यंतराचें कारण काय तें सर्व खरें खरें समजून घेतल्यावर त्यानें आपली व्रतशील कन्या रेवती ही कृष्णाचा बंधु जो बलराम त्याला दिली, व

आपण मेरुशिखरावर जाऊन तप करीत बसला. इकडे धर्मात्मा बलरामही त्या तरुण रेवतीशीं रममाण होऊन सुखांत राहिला.

## अध्याय अकरावा.

—:—

### धुंधुवधवर्णन.

जनमेजय विचारतो:—हे द्विजश्रेष्ठा, आतां आपण सांगितलें कीं, रैवत राजा ब्रह्मलोकाहून परत आला तों मानवांचीं युगेंच्या युगे लोटलीं, पण तो तरुणच्या तरुण परत आला. बरें, त्याची कन्या रेवती ही तेथें आल्यावर त्यानें बलरामास दिली; तेव्हां तीही तरुणच होती, हें उघडच झालें. तर मी असें विचारतो कीं, इतकीं युगे लोटलीं तरी रेवती किंवा तिचा बाप रैवत यांपैकी कोणालाच वार्धक्य कसें आलें नाहीं ? शिवाय संसार टाकून जर शर्यातीचा प्रपौत्र रैवत मेरूपृष्ठावर तपश्चर्येला गेला तर त्याची संतति अजून पृथ्वीवर चालू आहे हा चमत्कार काय, हें मला सर्व कृपा करून सांगावें.

वैशंपायन सांगतात:—वा जनमेजया, त्या ब्रह्मलोकांत तहान, भूक, वार्धक्य अथवा मृत्यु कांहींच नाहींत. इतकेंच नव्हे परंतु तेथें निरनिराळे ऋतुदेखील नाहींत (सर्वदा वसंतच असतो.) यामुळें, हीं दोघे तेथें गेलीं त्या वेळीं ज्या अवस्थेंत होती त्याच अवस्थेंत उघडच तीं परत आलीं. असो; ककुब्जी रैवत हा ब्रह्मलोकाला गेला, तेव्हां त्याच्या पश्चात् त्याची राजधानी जी कुशस्थली तिच्यावर राक्षस व पिशाच यांनीं हल्ला करून तिचा नाश मांडिला. त्यावेळीं त्या धार्मिक ककुब्जीचे मागे शंभर बंधु त्या नगरींत होते. ते राक्षसांच्या त्रासानें जीव घेऊन धडपणीं बारावाटा पळाले. ते ज्या ज्या

मुलखाला पळून गेले, त्या त्या मुलखांतील जे जे धर्मभोळे क्षत्रिय राजे होते ते ते त्यांना पाहून भयभीत झाले व आपली जागा सोडून पळाले व ठिकठिकाणीं पर्वताचा आश्रय धरून राहिले. मग त्यांच्या जागीं वुसलेले हे शंभर बंधु तेथेंच स्वस्थपणें नांदूं लागले; व त्या त्या जागीं त्यांचा मोठा वंशविस्तार झाला; आणि शार्यातनांवांनं जे सुप्रसिद्ध योद्धे ऐकूं येतात ते सर्व त्यांचीच संतति. असो; मनूचा जो नाभागादिष्ट म्हणून पुत्र सांगितला त्याला दोन पुत्र ( आईच्या जातीमुळे ) वैश्य झाले; परंतु पुढें तपोबलानें ते ब्राह्मण्य पावले. करुणाला कारुष नांवाचे मोठे रणमस्त क्षत्रिय पुत्र झाले. आम्हीं असें ऐकतो कीं, प्रांशूला प्रजापति नामक एकच पुत्र होता, व पृषध्रानें आपल्या गुरूची गाय मारिली त्या पातकानें तो क्षत्रिय असतां शूद्रत्वाला पावला. हे भरतश्रेष्ठा जनमेजया, याप्रमाणें वैवस्वत मनूचे नऊ पुत्रांचा वृत्तांत तुला सांगितला. त्याला इक्ष्वाकु म्हणून जो पुत्र झाला त्याचे उत्पत्तीची कथा अशी आहे: मनूला एकवार शिक आली व त्या शिकेबरोबर हा पुत्र उभा राहिला व त्याला इक्ष्वाकु असें नांव दिलें. या इक्ष्वाकूला पुढें शंभर पुत्र झाले. हे सर्वही मोठे दानशूर होते. यांचा वडीलभाऊ विकुक्षी नांवाचा होता. याचे विकुक्षित्वामुळे ( ढेर-पोटामुळे ) हा लढण्याला निरुपयोगी होता; व त्या कारणानें लढाईवर न जातां अयोध्येचें राज्यच करीत राहिला. हा मोठा धर्मज्ञ असून याला शकुनिप्रभृति बहुत पुत्र झाले. हे सर्व राजे झाले. त्यांपैकीं पन्नास उत्तरापथ देशाचें रक्षणकर्ते निघाले, व चाळीस आणि आठ यांनीं दक्षिण दिशा राखिली. या अडेवाळी-सांना रक्षणाचे कामीं विकुक्षि ऊर्फ शशाद याचीही मदत असे. हे जनमेजया, तूं म्हण-

शील कीं, विकुक्षीला शशाद हें नांव कुठून आलें, तर ऐक. एकदां इक्ष्वाकूचे घरीं अष्टकां नांवाचें श्राद्ध होतें. या दिवशीं इक्ष्वाकूनें आपला पुत्र विकुक्षी याला सांगितलें कीं, तूं चांगला बलाढ्य आहेस तर रानांत जा आणि चांगली शिकार करून आजच्या श्राद्धासाठीं बरेंचसें मृगमांस घेऊन ये. पित्याचे आज्ञेप्रमाणें रानांत जाऊन विकुक्षीनें पुष्कळशी शिकार मारिली. परंतु, ती तशीच घरीं घेऊन येण्याच्या पूर्वीं शिकारीच्या श्रमानें त्याला अतिशय क्षुधा लागून त्यापैकीं त्यानें एक शश ( ससा ) तेथेंच खाल्ला. नंतर तें मांस घेऊन तो घरीं आला व बापापुढें तें त्यानें ठेविलें. परंतु, जवळ कुल-गुरू त्रिकालज्ञ वसिष्ठमुनि होते, त्यांनीं सांगितलें कीं, मांस उच्छिष्ट आहे, हें श्राद्धाचे उप-योगीं नाहीं. त्यावरून प्रश्न करितां विकुक्षीनें खरी हव्हीकत सांगितली व त्यानें ससा खाल्ला म्हणून त्याला त्या वेळेपासून शशाद असें नांव पडलें; व त्याच्या अपराधाबद्दल पित्यानें त्याला राज्यांतून काढून लाविलें. तो बहुतकाळ तसाच परागंदा होता. पुढें त्याच्या बापाचें म्हणजे इक्ष्वाकूचें जेव्हां देहावसान झालें तेव्हां तो स्वनगरास परत येऊन तेथील राजा झाला. या शशादाला पुढें ककुत्स्थ नांवाचा मोठा वीर्य-शाली पुत्र झाला. याला ककुत्स्थ हें नांव पडण्याचें कारण असें झालें कीं, पूर्वीं देव व असुर यांचें युद्ध चाललें असतां देवांनीं याला आपल्या साहाय्य बोलविलें. तेव्हां तो म्हणाला कीं, मी इंद्राचे पाठीवर बसून युद्ध करीन. ही गोष्ट तुम्हांला कबूल असेल तर मी साहाय्य येतो. देवांनीं निरुपायास्तव इंद्राला कबूल करविलें. त्या वेळीं इंद्रानें मोठ्या वृषभाचे रूप घेतलें.

१ मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन आणि भाद्रपद या महिन्यांतील वद्य अष्टमीस जें आहिताग्नि ( जे गृहस्थ धर्माप्रमाणें अग्नि राखतात. ) श्राद्ध करतात तें.

मग हा शशाद पुत्र त्या वृषभाच्या ककुद् म्हणजे वर्शिडावर बसला. त्या वेळेपासून त्याला ककुत्स्थ असे नांव पडलें. या ककुत्स्थाला पुढें अनेना नांवाचा मुलगा झाला. अनेनाला पृथु नांवाचा मुलगा झाला. या पृथूचा पुढें विष्टराश्व, विष्टराश्वचा आर्द्र, आर्द्राचा युवनाश्व, व युवनाश्वचा पुत्र श्रावस्त हा झाला. श्रावस्ती नामक जी प्रसिद्धपुरी ती याच राजानें बसविली. या श्रावस्ताला बृहदश्व नांवाचा मोठा लौकिकवान् पुत्र झाला. या बृहदश्वाला कुवलाश्व नांवाचा मोठा धार्मिक पुत्र झाला. या कुवलाश्वानें धुंधु नांवाच्या बलाढ्य राक्षसाला मारिलें, त्यामुळें त्याचें धुंधुमार असे नांव पडलें.

जनमेजय म्हणतो:—हे ब्रह्मन्, कुवलाश्वाला ज्याच्या वधामुळें धुंधुमार असे नांव पडलें त्या धुंधु राक्षसाच्या वधाचें सर्व वृत्त ऐकावें, असें मनांत आहे.

वैशंपायन सांगतात:—कुवलाश्वाला धनुर्विद्येंत अत्यंत निपुण, मोठे बलाढ्य, अजिंक्य, दानशूर, यागकर्ते व धार्मिक असे शंभर पुत्र झाले. मुलाला मुलगे झाले असे पाहून राजा बृहदश्व कुवलाश्ववर राज्यकारभार सोंपवून आपण तपस्येसाठीं वनांत जावयास निघाला. तो तिकडे चालला असतां उत्तंक नांवाचा विप्रर्षि त्याला आडवा आला. उत्तंक म्हणाला कीं, हे राजा, तूं जातीचा क्षत्रिय, प्रजारक्षण करणें हेंच तुझे मुख्य कर्तव्य; ही कर्तव्यचिंता एकीकडे झुगारून देऊन तपाला निघून जाणें हें तुला न्यायानें करितां येणार नाही. घराबाहेर पडल्यानें तूं कदाचित् एकटा निश्चित होशील, परंतु तुजसारखा समर्थ पालक नाहीसा

झाल्यामुळें शेंकडों प्रजा चिंताक्रांत होतील. याकरितां तूं अरण्यांत न जातां परत चल आणि प्रजांचें रक्षण कर. माझ्या आश्रमानजीक जो सपाट वैराण मुख्य आहे, तेथें कसलीही वस्ती नसून समुद्रांतील वाळुनें तो केवळ भरून गेला आहे. त्या वाळुकेच्या पोटांत जमिनीखालीं मधुराक्षसाचा पुत्र एक धुंधु नांवाचा मोठा विशाल व बलाढ्य आणि देवतांनाही अवध्य असा भयंकर राक्षस दडी देऊन राहिला आहे, व लोकांचा संहार करण्याची आपल्या अंगीं शक्ति यावी या उद्देशानें तो संवत्सराच्या अखेरीस एकदां सुस्कारा टाकतो, पण त्या सुस्कार्याबरोबर पृष्ठावरील पर्वत, झाडे व अरण्ये यांसह सर्व पृथ्वी हादरून जाते, व त्याचे उच्छ्वासाबरोबर धुळीचे जे प्रचंड लोळ उडतात, त्यांनीं आकाशांतील सूर्याचा रस्ता आंखला जातो; त्याच्या उच्छ्वासाबरोबर भूमीतून धूर, ठिणग्या व निखारे यांचे सारखे फवारे वर उडत राहून सता दिवसपर्यंत भूकंप सुरू असतो, व या अनर्थांमुळें, हे प्रजापालका, त्याच्या जवळच असलेल्या माझ्या आश्रमांत मला वस्ती करणें कठीण झालें आहे; तर त्या अगडबंब राक्षसाला जनहितबुद्धीनें तूं मार, म्हणजे सर्व लोक निर्भय व स्वस्थ होतील. या दुर्घट कर्माला, हे राजा, तूच एक समर्थ दिसतो आहेस, व या कामीं तुला उपयोगीं पडेल असा श्रीविष्णूनें मला पूर्वयुगांत एक वर देऊन ठेविला आहे; तो असा कीं, “तूं ज्या कोणाकडून या महाबलाढ्य भयंकर राक्षसाला मारविशील त्या पुरुषाचें माझ्या या वरसामर्थ्यामुळें तुझे शब्दांनीं तेज अतिशय वाढेल” असें मला श्रीविष्णूंनीं सांगितलें आहे, व त्यांच्या वचनाचा विनियोग मी तुझे ठिकाणीं करणार आहे; कारण, हे पृथ्वीपाला, हा धुंधु म्हणजे सामान्य

१ भागवतांत याला एकवीस हजार पुत्र होते असे लिहिलें आहे; परंतु या स्थलीं मुळांत “शत” असा शब्द आहे. हा अनेकाधीं घेतल्यास हजारों अर्थ करितां येईल, तथापि एकवीसच हा बोध शक्य नाही.

नव्हे. त्याची ताकद अशी कांहीं अचाट आहे कीं, देवांचाही शक तेथें चालत नाही, व त्याचें तेजही फार असल्यानें सामान्य तेजाचा मनुष्य शेंकडों वर्षें झटला तरी देखील त्याचा उच्छेद व्हावयाचा नाही, करितां तूं एवढें काम कर.

बृहदश्व म्हणाला:—आपली आज्ञा मला अमान्य नाही. परंतु मीं संकल्पपूर्वक शस्त्र खालीं ठेविलें असल्यामुळे मला तें परत घेतां येत नाही. तथापि आपल्या कार्यार्थ हा माझा पुत्र कुवलाश्व याला आज्ञा देतो व माझी खात्री आहे कीं, हा आपल्या हेतूप्रमाणें त्या धुंधूचा वध करील. असें म्हणून धुंधूच्या वधाविषयी आपल्या पुत्राला आज्ञा देऊन तो दडनिश्चयी राजर्षि तपश्चर्येसाठीं पर्वतावरच निवून गेला. इकडे आपले शंभर पुत्र बरोबर घेऊन कुवलाश्व उत्तंकासहित धुंधूच्या मुसक्या आवळण्यासाठीं गेला. तो धुंधुवधाला प्रवृत्त होणार असें पाहतांच उत्तंकाचे शब्दावरून जनहितास्तव परमात्मा भगवान् विष्णु यांनीं आपलें तेज त्या कुवलाश्वचे ठिकाणीं घातलें. तें अजिंक्य तेज कुवलाश्वचे देहांत शिरतांच आकाशांत मोठा गजर झाला कीं, हा श्रीमान् कुवलाश्व अवध्य झाला आहे. आज हा धुंधूला खास ठार मारील. असें म्हणून देवांनीं सर्वभर दिव्य-पुष्पांची त्याजवर वृष्टि केली व आकाशांत देवांचे नगारेही आनंदानें झडूं लागले. मग आपल्या सर्व पुत्रांसह समुद्रभागीं जाऊन जो भाग कायमचा वाळुकेनें आच्छादून गेला होता तो त्या वीर्यवान् राजानें सर्व खणून काढविला. हे कौरवेश्वरा, तो कुवलाश्व जातीचाच बलाढ्य व तेजस्वी होता. तशांत साक्षात् नारायणाच्या तेजःप्रवेशानें त्याला अधिकच पुष्टि आली, मग त्याचें सामर्थ्य काय विचारावें ? त्याचे आज्ञेनें त्याचे पुत्र तें वाळवंट खणीत चालले असतां

पश्चिम दिशेला झांकून राहिलेला तो जगड-वाळ धुंधु राक्षस त्यांना आढळला. ते त्याच्या नजीक ठेपतांच त्यानें सहज आंग हालविलें त्याबरोबर तळांतील समुद्राचें पाणी उसळून चंद्रोदयाबरोबर भरतीचा समुद्र ज्या वेगानें धांवतो त्या वेगानें बाहेर धाऊं लागलें; व तोंडांतून त्यानें क्रोधानें जे आगीचे भपकारे सोडिले त्याबरोबर तो जगताची राख करितो असें वाटलें. निदान त्या खणणाऱ्या शंभर राजपुत्रांपैकीं तीन वजा करून बाकीचे सत्याण्णव तेथल्या तेथेंच जळून गेले. हे कौरवेश्वरा, पुत्रांची ती दशा पाहतांच आतां आपण स्वतःच सरसावेलें पाहिजे असें मनांत आणून त्या महातेजस्वी राजानें त्या महाबलाढ्य धुंधूला गांठलें; अंगीं योगसामर्थ्य उत्कट असल्यानें तो राक्षस जें झपाट्यानें पाणी वर उसळवीत होता तें सर्व त्या कुवलाश्वानें पिऊन शोषून टाकिलें. व जल आणि योगसामर्थ्य यांच्या साहाय्यानें राक्षसाच्या तोंडांतून उठणारा अग्नि विझवून टाकिला. नंतर प्रत्यक्ष गांठ घालून आपल्या आंगचे ताकतीनें त्यानें त्या धडेल पाणराक्षसाला ठार करून आपण सांगितलेली कामगिरी मीं बजाविली अशा आशयाचा उत्तंकाला इषारा केला. त्याच्या त्या कर्तबगारीनें प्रसन्न होऊन उत्तंकानें त्याला वर दिला कीं, हे महात्म्या राजा, तुझे घरीं अखंड लक्ष्मी नांदेल; शत्रूंकडून तुझा केव्हांही पराजय होणार नाही; धर्मावर तुझे प्रेम राहून अंतीं तुला कायमचा स्वर्गवास मिळेल. शिवाय जे तुझे पुत्र या कामीं राक्षसानें मारिले आहेत त्यांनाही स्वर्गलोकांत कायमची वस्ती मिळेल.

## अध्याय वारावा.

—:०:—

## गालवोत्पत्तिवर्णन.

वैशंपायन सांगतात:—राक्षसानें मारून कुवलाश्वाचे जे तीन पुत्र उरले त्यांतील दृढाश्व हा ज्येष्ठ होता, असें सांगतात; व चंद्राश्व आणि कपिलाश्व हे दोघे कुमार त्याचे धाकटे भाऊ होते. धुंधुमाराचा जो हा दृढाश्वपुत्र त्याचा पुत्र हर्यश्व म्हणून झाला. या हर्यश्वाला निकुंभ नांवाचा पुत्र झाला. याला लढाईची फार आवड असे. या निकुंभालाही संहताश्व नांवाचा मोठा संग्रामशूर पुत्र झाला. या संहताश्वाचे अक्रुशाश्व व क्रुशाश्व असे दोन मुलगे झाले; या संहताश्वाची साधूंना मान्य व त्रैलोक्यांत विख्यात अशी दृषती नांवाची हिमवत कन्या स्त्री होती. तिजपासून याला प्रसेनजित् नांवाचा पुत्र झाला. या प्रसेनजिताला गौरी नांवाची पतिनिष्ठ स्त्री मिळाली. परंतु पुढें भर्त्याच्या शापानें ही बाहुदा नांवांनं प्रसिद्ध असणारी नदी झाली. या गौरीपासून प्रसेनजिताला युवनाश्व नांवाचा एक प्रतापी पुत्र झाला. या युवनाश्वाचे पोटी त्रैलोक्यांत ज्याचा जयजयकार आहे असा मांधाता नामक प्रसिद्ध राजर्षि जन्मास आला. शशीबिंदूची कन्या चैत्ररथी ती या मांधात्याची स्त्री होती. तिलाच बिंदुमती असेंही नांव असे. ही अत्यंत पतिनिष्ठ असून मोठी सुशील होती व हिच्या रूपाची सर तर त्रिभुवनांत दुसऱ्या कोणत्याही स्त्रीला नव्हती. असल्या स्त्रीचे ठिकाणीं मांधात्यानं दोन पुत्र निर्माण केले. दोघेही मोठे धार्मिक असून एकाचें नांव पुरुकुत्स व दुसऱ्याचें मुचुकुंद असें होतें. या पुरुकुत्साला, राजा, त्रसदस्यु हा पुत्र झाला. या त्रसदस्यूला नर्मदा नामक स्त्रीचे ठिकाणीं संभूत नामक पुत्र झाला. संभूताचा पुत्र सुधन्वा नामक राजा. या सुधन्वा-

ला शत्रूंचें मर्दन करणारा असा त्रिधन्वा नामक पुत्र झाला. त्या त्रिधन्वाला त्रय्यारुण नांवाचा पुत्र झाला. या त्रय्यारुणाला सत्यव्रत नांवाचा एक पुत्र झाला. हा सत्यव्रत मोठा दुष्ट बुद्धीचा असून हा एकदां लग्नांतील पाणिग्रहणमंत्रांच्या आड आला. यापूर्वीं यानें दुसऱ्याची लग्न लाविलेली बायको उपटून आणिली. हा मोठा पोरकट, हूड, कामी, मूर्ख व रंगेल होता; व यानें कामाधीन होऊन शहरांतील कोणा एका गृहस्थाची मुलगी हाताखाली घातली होती. असला हा अधर्मी कारटा-नव्हे कांटाच-आपले पोटीं आला असें वाटून त्रय्यारुणाला फार दुःख झालें; व रागाचे झटक्यांत “कार-द्व्या, मर, चालता हो” म्हणून त्यानं त्याला वारंवार सांगितलें. तेव्हां बापाला तो पुन्हा पुन्हा विचारूं लागला कीं, तुम्ही मला टाकतां तर मीं जावें कोठें? बापानें उत्तर केलें, “जा, चांडाळांत जाऊन रहा. तुझ्यासारख्या कुलांगार कारट्याला पुत्र म्हणावें किंवा असला पुत्र मला असावा असली मुळीं इच्छा नाही.” बापानें असें जेव्हां निक्षून सांगितलें तेव्हां तो शहर सोडून चालता झाला. त्यावेळीं कुलगुरु भगवान् वसिष्ठही त्याच्या आड आले नाहींत. तो सत्यव्रत मोठा छातीचा वेरड होता. तो न डगतां चांडाळांत जाऊन राहिला. इकडे त्याचा बाप त्रय्यारुणही उठून रानांत चालता झाला. सत्यव्रताच्या या अनाचारामुळें त्या देशांत बारा वर्षेपर्यंत पाऊस पडला नाहीं. त्या दुष्काळाच्या तडाक्यांत महातपस्वी विश्वामित्र आपले स्त्रीपुत्र त्या मुलखांत टाकून आपण समुद्रतीरीं तपश्चर्येकरितां गेला. पश्चात् त्याचे स्त्रीनं पोटाला अन्न नाहीं म्हणून आपल्या तीन पुत्रांपैकीं एक पुत्र गळ्याला दोरी लावून बाजारांत उभा केला व शंभर गाई मोल घेऊन विकावयास काढला. इतक्यामध्ये महर्षि विश्वाम-



मित्राचा पुत्र गळ्याला दोरी बांधून पशूप्रमाणें विकला जात आहे असें पाहून बलाढ्य व दयाशील जो सत्यव्रत त्यानें विश्वामित्राचा संतोष व्हावा म्हणून व दयेस्तवही त्याला विकू न देतां आपण त्याचें पोषण केले. हा सोडविलेला मुलगा पुढें गालव नांवांनें प्रसिद्ध असा कौशिक कुलांतला मोठा महर्षि झाला. याला गालव नांव पडण्याचें कारण गळ्याला बांधला होता हें.

## अध्याय तेरावा.

—:०:—

### त्रिशंकुचरित्र.

वैशंपायन सांगतात:—मागील अध्यायांत सांगितल्याप्रमाणें विश्वामित्रपुत्राची विक्री बंद केल्यापासून त्या सत्यव्रतानें विश्वामित्रावरील भक्ति, त्याच्या दीन कुटुंबाबद्दल ती अनुकंपा व वसिष्ठाचा इतउत्तर शिष्य न होण्याची प्रतिज्ञा; या तीन कारणांमुळे मोठ्या आस्थेनें व नम्रपणानें विश्वामित्राच्या कुटुंबपोषणाचा भार आपणावर घेतला. त्यानें रानांतील हरण, डुकर, रेडे मारून आणावे व त्यांचें मांस विश्वामित्राचीं मुलेंमाणसें ज्या झोंपडींत रहात होती त्या झोंपडीच्या नजीकच्या वृक्षाला टांगून ठेवावें. बाप निवून गेल्यापासून हा सत्यव्रत कोणाशीं न बोलतां मनांतल्यामनांत संकल्प करून बापाचे आज्ञेप्रमाणें बारा वर्षे व्रतस्थ रानांत राहिला. या काळांत अयोध्या नगरी, लव्यारुणाचें राज्य व त्याच्या अंतःपुरांतील सर्व स्त्रिया यांचें रक्षण कुलोपाध्याय या नात्यानें वसिष्ठ ऋषींनीं केलें. पोरपणामुळे म्हणून म्हणा किंवा पुढें कांहीं गोष्ट घडून याषयाची होती तिचे बळानें म्हणा, हा सत्यव्रत वसिष्ठाचा प्रथमपासूनच तिट्कारा करीत असे; त्यांतून बापानें त्याला रानांत

हांकलून लाविते वेळीं वसिष्ठानें बापाचें निवारण केलें नाहीं; त्यावरून तर त्याचा त्यावर विशेषच राग झाला; परंतु निवारण न करण्यांत वसिष्ठाचा कांहीं विशेष हेतु होता. तो असा कीं, सत्यव्रतानें मागील अध्यायीं सांगितल्याप्रमाणें जरी दुसऱ्याची बायको हिरावून आणली होती, तरी तिचे पाणिग्रहणसमयीं सप्तपदीचे मंत्र पूर्ण होण्याचे पूर्वीच त्यानें ती हरण केली असल्यामुळे वसिष्ठाचे दृष्टीनें सत्यव्रत हा परस्त्रीहरणकर्ता नसून फक्त कन्याहरणकर्ताच होता; व या कारणानें तो बारा वर्षे व्रतस्थ राहिल्यास निष्पाप होईल व नंतर त्याला घरांत परत घेतां येईल. ह्या मतलबास्तव वसिष्ठ त्याचे आड आले नाहींत; परंतु वसिष्ठांचा गूढभाव सत्यव्रताचे ध्यानीं न येऊन वसिष्ठ हे धर्मज्ञ असूनही आपलें परित्राण करीत नाहींत, असें भासून तो त्यांचा मनांत अधिकच राग करूं लागला. खरें पहातां भगवान् वसिष्ठांनीं त्याचें कल्याण व्हावें म्हणूनच असें केलें होतें; पण हें सत्यव्रताचे ध्यानांत न आल्यामुळे तो त्यांच्यावर रागावूनच वनांत चालता झाला. मागे त्याचे वर्तनानें त्याचे पित्याचे मनांत जो असंतोष उत्पन्न झाला होता, त्या दोषानें राज्यांत बारा वर्षे पाऊस पडला नाहीं. रानांत गेल्यावर जें हें तीव्र व्रत सत्यव्रतानें बारा वर्षेपर्यंत आचरण केलें, त्यामुळे त्याचे हातून त्याचें कुल शुद्ध होईल, ही गोष्ट वसिष्ठांचे ध्यानीं आल्यामुळे व बापानें हांकलून दिल्यामुळे ते त्याच्या आड आले नाहींत; शिवाय वसिष्ठांचा हेतु असा होता कीं, कारण पडल्यास सत्यव्रताचा पुत्र आपण गादीवर बसवूं. परंतु रानांत गेल्यापासून सत्यव्रतानें आपल्या श्रमानें विश्वामित्र ऋषींचें

१ सप्तपदीचे मंत्र पुरे होईपर्यंत कन्येला भार्यात्व येत नसतें, असें शास्त्रमत आहे.

दीन कुटुंब पोषण करण्याचें महद्गत एक-  
निष्ठेनें व बिनबोभाट बारा वर्षेपर्यंत चालविलें.  
असें चाललें असतां एक दिवस सत्यव्रताला  
कोठेंही मांस म्हणून मिळेंना. इतक्यांत मनास  
येईल ती वस्तु देणारी कामधेनु नांवाची वसि-  
ष्ठांची गाय सत्यव्रताचे दृष्टीस पडली. आधींच  
तो शिकार करून थकला होता, त्यांत भुके-  
नेंही पीडिला होता; शिवाय वसिष्ठांवर त्याचा  
रोख होताच; खेरीज त्याला भूलही पडली;  
अशा अनेक गोष्टी एकत्र होऊन त्यानें त्या  
कामधेनूचा वध केला. नंतर तिचें मांस त्यानें  
स्वतः खाल्लें व वसिष्ठांच्या मुलांसही खाऊं  
घातलें. ही गोष्ट वसिष्ठांच्या कानीं जातांच  
ते क्रुद्ध होऊन त्या राजपुत्राला म्हणाले, ' हे  
क्रूरा, ज्या अर्थी पित्याचा रोष व उपाध्या-  
याच्या गाईचा वध असे दोन महत्पातकरूपी  
शंकु तुझ्या बोकांहीं बसलेलेच आहेत, त्या  
अर्थी असंस्कृत मांस भक्षणरूप पातकाचा  
तिसराही शंकु मी तुझे बोकांहीं बसवितों !

वैशंपायन सांगतात:—याप्रमाणें त्या  
सत्यव्रताच्या गळ्यांत अडकलेले हे तीन महा-  
पातक रूप शंकु पाहून वसिष्ठ त्याला त्रिशंकु  
असें म्हणाले व तेव्हांपासून त्रिशंकु हेंच त्याचें  
नांव पडलें. असो; कांहीं काळानें विश्वामित्र  
तपश्चर्येहून परत आले, व आपल्या बायका-  
मुलांचें उदरभरण सत्यव्रतानें केलें, हें ऐकून  
खूष होऊन त्याला म्हणाले, ' तुला वाटेल तो  
वर माग. तेव्हां ' मी सदेह स्वर्गास जावें,'  
असा वर त्यानें विश्वामित्राजवळ मागितला.  
इतक्यांत बारा वर्षांचें अवर्षण नाहीसिं झालें; मग  
विश्वामित्रानें त्रिशंकूला त्याच्या बापाचे राज्या-  
वर नेऊन बसविलें, व त्याजकडून एक मोठा  
यज्ञ आरंभिला; व सर्वदेवता व वसिष्ठ पहात  
असतां त्यांचे समक्ष त्या समर्थ विश्वामित्रानें

त्रिशंकूला देहासकट स्वर्गावर चढविलें.  
त्रिशंकूची कैकय वंशांतील सत्यरथानामक स्त्री  
होती, तिचे पोटी हरिश्चंद्र नांवाचा अत्यंत  
निष्पाप असा एक पुत्र निपजला. या हरिश्चं-  
द्राला त्रैशंकर असेंही म्हणत, व यानें राजसूय  
यज्ञ केल्यामुळें याला संम्राट् अशी पदवी  
मिळाली होती. हरिश्चंद्राला रोहित नांवाचा  
वीर्यवान् पुत्र झाला. या रोहितानें आपल्या  
सत्तेचा उत्कर्ष व्हावा म्हणून रोहितपुर म्हणून  
प्रसिद्ध नगर आहे, तें वसविलें. नंतर राजर्षी  
रोहितानें बहुत दिवस प्रजापालन करून राज्य  
भोगलें. भोगांतीं हा सर्व संसार असार आहे,  
असें त्याचे ध्यानीं येऊन त्यानें आपलें तें नगर  
ब्राह्मणांना देऊन टाकिलें. या रोहिताला हरित  
नांवाचा पुत्र होता. हरिताला चंचु नांवाचा पुत्र  
झाला. चंचूला पुढें विजय व सुदेव असे  
दोन पुत्र झाले. पहिल्याला विजय असें नांव  
पडण्याचें कारण त्यानें क्षत्रियमंडळावर जय  
मिळविला होता. या विजयाला अर्थशास्त्र व  
राजनीति यांत निपुण असा रुरुक नांवाचा  
पुत्र होता. रुरुकाला वृक नामक पुत्र झाला.  
वृकाला पुढें बाहुनामें पुत्र झाला. हा बाहु  
तसल्या धर्मयुगांत उत्पन्न झाला असूनही  
फारसा धार्मिक नव्हता. यामुळें शक, यवन,  
कांबोज, पारद व पल्लव यांचे साह्यानें हैहय  
व तालजंघ या क्षत्रियांनीं त्याला जिंकलें. बाहूला  
सगरनामें पुत्र झाला. याला सगर नांव पड-  
ण्याचें कारण असें झालें कीं, तो गर म्हणजे  
विषें यासह जन्मास आला. विषप्रयोग केला  
असतां हा जिवंत कसा जन्मला याचें उत्तर

१ त्रिशंकूचा यावेळीं स्वर्गांत जाण्याचा हेतु कायमच  
स्वर्गवास करण्याचा नष्ट केवळ स्वर्गातील मौजा पाहून  
परत येणें हाच होता.

२ याचे वेळीं याची आई गर्भावर असतां तिच्या सव-  
तानें दुष्टाव्यानें तिला विष घातलें होतें.

असें आहे कीं, त्यावेळीं याची आई भृगुकुलो-  
त्पन्न और्वक्रुषि याचे आश्रमांत गेली, व त्या  
ऋषीच्या कृपेनें ती व तिचा गर्भ दोन्हीही सुर-  
क्षित राहिलीं. याच ऋषीपासून पुढें आग्नेयास्त्र  
प्राप्त होऊन त्याचे बळावर सगरानें सर्व पृथ्वी  
जिंकिली, हैहय व तालजंत्र यांचा विध्वंस केला;  
व स्वतः धर्माभिमाना व धर्मवेत्ता असल्यामुळें  
शुक, पल्हव व पारद यांचे धर्माचा उच्छेद केला.

### अध्याय चवदावा.

—:—

#### सगरोत्पत्तिवर्णन.

जनमेजय विचारतो:—हे तपोधना, उद-  
रांत विष गेलें असतां तो सगर त्या विषासह  
सजीव कसा जन्मला ? शकादिक हे क्षत्रिय  
असतांना व सगर हाही धर्मनिष्ठ असतांना  
त्यानें क्रोधावेशानें त्या क्षत्रियांचा धर्म म्हणजे  
एक प्रकारें स्वधर्मच उच्छिन्न केला हें कसें ?  
तें सर्व सविस्तर मला सांगा.

वैशंपायन सांगतात:—सगराचा बाप बाहू-  
राजा हा फार व्यसनी निघाल्यामुळें, हे राजा,  
शकांच्या साहाय्यानें हैहय व तालजंत्र यांनीं  
त्याचें राज्य हरण केलें. या कामांत यवन,  
पारद, कांबोज, पल्हव व खस, याही पांच  
गणांनीं हैहयाच्या साहाय्य शिपाईगिरी केली  
होती. राज्य हिरावल्यामुळें बाहूराजा रानांत  
चालता झाला. पाठोपाठ त्याची यादवी नांवाची  
गरोदर स्त्रीही चालत आली. हिला तिचे  
सवतीनें ती बाहेर पडण्याच्या अगोदरच विष  
घातलें होतें. ती पाठोपाठ आलेली पाहून  
राजाला अधिकच दुःख झालें; व त्या दुःखांत  
त्यानें प्राण सोडिले. तेव्हां देवी त्या  
वनांत भर्त्याची चिता रचून आपण चितेवर  
चढली. इतक्यांत भृगुकुलोत्पन्न और्वक्रुषि यांना  
दया येऊन त्यांनीं तिला फिरविलें व आपल्या

आश्रमांत नेलें. तेथें ती प्रसूत होऊन त्यांचे  
कृपेनें तो गर्भ विषासहच सजीव उत्पन्न झाला.  
हाच तो महाबाहू सगर राजा. जन्म होतांच  
और्वानें त्याचें जातकर्मादि करून त्याला वेद-  
शास्त्र पढविलें; आणि नंतर देवांना देखील  
असह्य असें महाघोर आग्नेयास्त्र दिलें. अगोदरच  
सगर जातीनें बलाढ्य होता व तशांत असल्या  
अस्त्राचें त्याला पाठबळ मिळालें. तेव्हां त्यानें  
संहारकर्ता रुद्र ज्याप्रमाणें जीवांना पटापट  
मारितो, त्याप्रमाणें रागाचे तडाक्यांत सर्व  
हैहयांस तत्काल मारून टाकिलें. त्यानें त्याची  
लोकांमध्ये फारच कीर्ति झाली. हैहयांना  
चीत केल्यावर यवन, कांबोज, पारद व पल्हव  
यांसह शकांचें निर्मूलन करण्याचे उद्योगास  
तो लागला. त्या महात्म्या वीरानें त्यांचेवर  
जेव्हां गहजब उडविला तेव्हां ते विवेकी वसिष्ठ  
मुनीना शरण येऊन त्यांचे पायां पडले. त्या  
वेळीं शरणागताचें रक्षण केलेंच पाहिजे, ही  
धर्ममर्यादा ध्यानीं आणून महातेजस्वी वसि-  
ष्ठांनीं त्यांना अभय दिलें, व सगराचें निवा-  
रण केलें. गुरूची आज्ञा व स्वतःची प्रतिज्ञा  
या दोन्ही सांभाळण्याची जेव्हां सगरावर पाळी  
आली, तेव्हां त्यानें शकादिकांचा नाश न  
करितां त्याऐवजीं त्यांचे धर्माचा नाश केला,  
व त्यांचेकडून वेषांतर करविलें तें असें. शकांचें  
अर्धें शीर मुंडून त्यांना सोडून दिलें व यवन  
आणि कांबोज यांचें सर्वच शीर मुंडून टाकिलें.  
पारदांकडून मोकळ्या जटा ठेवविल्या व पल्ह-  
वांकडून दाढ्या राखविल्या; व या सर्वांकडून  
नच वेदाध्ययन व वषट्कार हे हक्क काढून  
घेतले. त्याचप्रमाणें कोली, सर्प, महिष, दीर्घ,  
चोल, केरल व शकादि पूर्वोक्त चार हे सर्व  
क्षत्रिय असतां वसिष्ठाचे सांगण्यावरून महा-  
त्म्या सगरानें त्यांचे धर्माचा उच्छेद केला.  
पुढें त्या धर्मविजयी राजानें खस, तुषार,

चोल, मद्र, किष्किंधक, कौतल, वंग, साल्व व कौकणक, या सर्वास जिंकून अश्वमेधाची दीक्षा घेऊन अश्व मोकळा सोडिला. तो त्याचा मेधीय अश्व फिरत फिरत पूर्व-दक्षिण समुद्राच्या कांठाला पोचला असतां कोणी पळविला, तो भूमीच्या तळाशी नेला. तेव्हां त्या सगरानें आपले पुत्रांकडून ती जागा खणविली; व त्यांनीं जेव्हां समुद्रप्राय विशाल असा अति खोल खड्डा खणिला तेव्हां ते शेवटीं अशा स्थळीं पोचले कीं, तेथें सर्व सृष्टीचा पालक जो आदिपुरुष देवाधिदेव सर्वात्मा, ज्याला कृष्णही म्हणतात असा तो पुरुषोत्तम, कपिलाचे रूपानें निजलेला होता. यांचे खणण्याचे खडबडीमुळे तो जेव्हां जागृतीवर येऊन डोळे उघडूं लागला, तेव्हां त्याचे नेत्रांतून जें तेज उठलें त्या तेजानें चार वजा करून बाकीचे ते सर्वही ( साठ सहस्र ) सगरपुत्र जळून खाक झाले. चार उरले त्यांचीं नांवें:—बर्हकेतु, सुकेतु, धर्मरथ व शूरपंचजन. या चौघांनीं पुढें सगराचा वंश चालविला. सगर राजाला परमात्मा कपिलरूपी नारायणानें अनेक वर दिले, ते असे:—इक्ष्वाकूचा वंश अक्षय्य राहील, त्याच्या कीर्तीची पीछेहाट कधींही होणार नाही; प्रत्यक्ष समुद्र पुत्ररूपानें त्याच्या उदरीं जन्मेल; सगराला अक्षय्य स्वर्गवास मिळेल; त्याचप्रमाणें सगराचे जे पुत्र नेत्राच्या तेजामुळे भस्म झाले होते, त्यांनाही अखंड उत्तमलोकप्राप्ति होईल. इतके वर दिल्यावर समुद्रानें मूर्तिमान् होऊन त्या सगर राजाची अर्घ्यपूर्वक पूजा केली, व त्याबद्दल सगरानें त्याला आपलासा म्हणवून सागर असें नांव दिलें. नंतर समुद्राकडून त्याला त्याचा नाहींसा झालेला मेधीय अश्व परत मिळाला. नंतर त्या महायशस्वी सगरानें शंभर अश्वमेध केले. त्याच्या पुत्रांची

संख्या साठ हजार होती, असें आमचे ऐकण्यांत आहे.

## अध्याय पंधरावा.

—:०:—

### सगरवंश चालू.

जनमेजय विचारतो:—हे वैशंपायना, सगराला शूर व पराक्रमी असे साठ हजार पुत्र झाले म्हणून आपण सांगितलें तर एकट्याला एवढी अतोनात संतति झाली तरी कशी ?

वैशंपायन सांगतात:—हे राजा, तपाचरणानें ज्यांचीं पातकें दग्ध झालीं होतीं अशा दोन स्त्रिया सगराला होत्या. त्यांपैकीं वडील ही विदर्भराजाची कन्या असून केशिनी या नांवानें ती प्रख्यात होती. त्याची जी धाकटी स्त्री ती अरिष्टनेमी राजाची मुलगी असून ती अत्यंत धार्मिक होती, व रूपानें तर तिचे तोडीची दुसरी कोणी स्त्री पृथ्वींत नव्हती. हे जनपाला, और्वक्त्रुपीनं या दोन्ही स्त्रियांना वर मागायला सांगितले, ते असे; एकीनें साठ हजार पुत्र व्यावे व एकीनें वंश धारण करील असा एकच पुत्र व्यावा. या दोहोंपैकीं आपले इच्छेप्रमाणें दोहों वरांतील कोणता तरी एक पतकरावा. असें और्वीनें म्हटलें तेव्हां एक जी स्वभावाची लोभी होती ती म्हणाली, ‘ मला आपले शूर असे साठ हजारच पुत्र पाहिजेत; दुसरी म्हणाली, ‘ज्याचे योगानें हा वंश अखंड राहणार आहे, असला तो एकच पुत्र मला पुरे.’ यावर और्वमुनीनीं तुमचे म्हणण्याप्रमाणें होईल, म्हणून त्यांना आशीर्वाद दिला. त्या गुणानें केशिनीला सगरापासून एकच पुत्र झाला, त्याचें नांव असमंजस असें ठेविलें होतें.

१ मत्स्यपुराणांत हीं नांवें भानुमती व प्रभा अशीं दिली आहेत.

२ म० पु० हा जौर्व असें म्हटला आहे.

हाच पुढें पंचजन नांवानें मोठा प्रख्यात बलाढ्य राजा झाला. दुसरी जी उरली, ती वियांनीं ठेंचलेला असा एक लांबचलांब दुधेभोपळा व्याली असें ऐकितों. या दुधेभोपळ्यांत तिळा-तिळाएवढे असे हे साठ हजार गर्भ होते. त्यांना सगरानें वेगळे वेगळे करून तुपाचे मडक्यांत घालून ठेविलें, व एकेका मडक्यावर एकेक याप्रकारें त्या गर्भांचे पोषणार्थ साठसहस्र दाया ठेविल्या. मग ते गर्भ वाढीस लागून क्रमाक्रमानें पूर्ण झाले, व दहा महिने भरतांच सर्व अवयव पूर्ण होऊन योग्य वेळीं घटांतून बाहेर आले. हे सर्वही दिसण्यांत मोठे फळड छोकरे होते व त्यांना पाहून सगरालाही प्रेमाचें मोठें भरतें आलें. हे राजा, याप्रमाणें भोपळ्याचे रूपानें गर्भ प्रकट होऊन त्यांतून हे इतके साठ सहस्र पुत्र निपजले; आतां समजलास? परंतु, मागें सांगितल्याप्रमाणें हे<sup>१</sup> कपिल-परमात्म्याच्या नेत्रतेजानें दग्ध झाले. तेव्हां केशिनीचा एकुलता एक जो असमंजस किंवा पंचजन तोच राजा झाला. या पंचजनाला अंशु-मान् नांवाचा वीर्यवान् पुत्र झाला. याला पुढें दिलीप नामक पुत्र झाला; या दिलीपाची खटांग या नांवानेंच जास्ती प्रसिद्धी आहे. हा खटांग राजा स्वर्गांतून भूलोकीं आला व सूक्ष्मबुद्धि व ब्रह्मैक-भावना यांच्या बलानें चित्तैकाग्र्य करून एका मुहूर्तांत स्वर्ग, मृत्यु, पाताल या

तिन्ही लोकांचें ध्यानबलानें निरीक्षण करून हे सर्वही मिथ्या आहेत, खरें काय तें सर्व-व्यापि एक ब्रह्म आहे, असा निश्चय करून हा बुद्धिमान् राजा एका मुहूर्ताचे अवकाशांत मुक्त झाला. या दिलीपाला भगीरथ नांवाचा पुत्र झाला. हा मोठा कीर्तिमान्, भाग्यवान्, समर्थ व पराक्रमानें केवळ इंद्रतुल्य होता; यानें श्री-गंगेला स्वर्गांतून भूलोकीं आणून सागरास मिळविलें. या त्याच्या कृतीमुळें गंगा ही त्याची कन्या मानिली जाऊन त्या दिवसापासून तिला भागीरथी असें नांव वंशांचा इतिहास जाणणाऱ्या ज्ञात्यांनीं दिलें आहे. या भगीरथाला पुढें श्रुत नांवाचा पुत्र झाला; श्रुताला नाभाग नांवाचा मोठा धार्मिक पुत्र झाला, या नाभागाचे पोटी अंबरीष जन्मला. हा अंबरीष सिंधुद्वीपाचा बाप झाला. सिंधुद्वीपाला पुढें अयुताजित् नामक पुत्र झाला; या वीर्यवान् अयुताजिताला ऋतुपर्ण नांवाचा मोठा यशस्वी मुलगा झाला. प्रसिद्ध नल राजाचा परममित्र व देवांच्या अक्षविद्येंत म्हणजे फासे खेळण्यांत निपुण म्हणून जो ऋतुपर्ण तोच हा. या बलाढ्य ऋतुपर्णाला आर्तपर्णि नांवाचा पुत्र झाला. याचा मुलगा सुदास नामक झाला; हा सुदास इंद्राचा मोठा दोस्त होता. सुदासाला पुढें सौदास नामें पुत्र झाला, या सौदासालाच मित्रसह व कल्माषपाद अशींही नांवें आहेत. या कल्माषपादाचा पुत्र सर्वकर्मा नांवानें विश्रुत आहे. सर्वकर्माला पुढें अनरण्य हा पुत्र झाला. अनरण्याचा पुत्र निघ्न. निघ्नाला अनमित्र व

१ दुसरी म्हणजे धाकटी, हिचें नांव ईलिनी होतें.

२ गताध्यायीं चार खेरीज बाकी दग्ध झाले असें लिहिलें आहे, परंतु येथे तसें नाहीं.

३ हा वृत्तीनें विरक्त असल्यानें सुदाम वेडे चाळे करी; म्हणून याला 'असमंजस' असें म्हणत.

४ देवांनीं याला युद्धांत साह्यार्थ स्वर्गास नेलें होतें, तेथून आल्यावर.

५ स्वर्गांत गेला असतां देवांना याचे साह्यानें जय मिळाला तेव्हां यानें मृत्युलोकीं माझे आयुष्य किती उरलें म्हणून पुसलें, तेव्हां एक मुहूर्त असें देव म्हणाले.

१ आपणास नरमांस वाढल्याबद्दल वसिष्ठ याला शाप देऊं लागले असतां आपला अपराध नाहीं असें पाहून यानेंही परत शापासाठीं आपलें ओंजळींत पाणी घेतलें होतें, पण तें त्याचे खीचे आड येण्यामुळें यानें शेवटीं आपलेच पायांवर टाकिलें, त्या योगानें त्याचे पाय काळे पडून याला 'कल्माषपाद' असें नांव पडलें.

रघु असे दोन राजर्षिश्रेष्ठ पुत्र होते. पैकीं अनमित्राला धर्मनिष्ठ व विद्वान् असा दुल्लिदुह नामक पुत्र झाला; या दुल्लिदुहाचा पुत्र दिलीप, हाच प्रसिद्ध श्रीरामचंद्राचा निपणजा. दिलीपाला रघु नांवाचा दीर्घबाहु पुत्र झाला; हा रघु मोठा बलाढ्य असून अयोध्येचा राजा झाला; रघूपासून अज झाला, अजापासून दशरथ, दशरथाचे पोटीं महायशस्वी धर्ममूर्ति श्रीरामचंद्र अवतरला; रामाला पुढें कुश पुत्र झाला. कुशापासून अतिथी, अतिथीपासून निषध, निषधाचा नल, नलाचा नभ, नभाचा पुंडरीक, त्याचे पुढें क्षेमधन्वा, क्षेमधन्याला प्रतापी देवानीक व देवानीकाला अहीनगु नामक बलाढ्य पुत्र झाला. या अहीनगूचा पुत्र सुधन्वा, सुधन्याचा अनल, अनलाचा धर्मनिष्ठ उक्थ. या उक्थाचा पुत्र वज्रनाभ, वज्रनाभाचा शंख. या शंखालाच ध्युषिताश्च अशी संज्ञा आहे. याचा पुत्र पुष्प, त्याचा अर्थसिद्धि, अर्थसिद्धीचा सुदर्शन, सुदर्शनापासून अग्निवर्ण, अग्निवर्णाला शीघ्र नामक पुत्र झाला. शीघ्राचा पुत्र मरु. हा मरु योगाभ्यासांत निमग्न होऊन कलापसंज्ञक द्वीपांत जाऊन राहिला. या मरूचा पुत्र सुप्रसिद्ध राजा बृहद्बल.

हे राजा, पुराणांत नल या नांवानें दोन राजे प्रसिद्ध आहेत. यांतील एक नल वीरसेनाचा पुत्र, व दुसरा नल तो इक्ष्वाकूचा वंश वाढविणारा. हे राजा, याप्रमाणें इक्ष्वाकू वंशांतले राजे प्राधान्यतः तुला सांगितले. विवस्वान् जो

सूर्य त्याचे वंशांत हे अति तेजस्वी राजे होऊन गेले. प्रजेला पुष्टि देणारा जो भगवान् सूर्य त्याचा पुत्र जो वैवस्वत मनु ज्याला श्राद्धदेव असें म्हणतात, त्याची ही वंशावळ जो कोणी लक्षपूर्वक पठण करील त्याला संतति होऊन अंती विवस्वान् जो सूर्य त्याच्या रूपाला तो मिळेल; तसाच इहलोकींही तो निष्पाप सत्वसंपन्न व दीर्घायु होईल.

## अध्याय सोळावा.

—:०:—

### पितृवर्णन.

जनमेजय विचारतो:—हे वैशंपायना, आपण मनुवंशानुकीर्तनें सांगत असतां विवस्वान् याला श्राद्धदेवही म्हणत असें सांगितलें; तर श्राद्धदेव ही संज्ञा विवस्वानाला कां प्राप्त झाली व श्राद्धाचा श्रेष्ठ विधि कोणता, हें, हे विप्र-श्रेष्ठा, ऐकावयाची माझी इच्छा आहे; त्याचप्रमाणें पितर पितर म्हणतात ते कोण ? हे पहिल्याप्रथम कसे उत्पन्न झाले ? त्याचप्रमाणें वेदवेत्ते ब्राह्मण, असें सांगतांना आम्हीं ऐकिलें आहे कीं, स्वर्गांत हे जे पितर म्हणून आहेत ते देवांचेही दैवत आहेत, हें कसे ? तसेंच या पितरांचे कांहीं गण म्हणून सांगितले आहेत ते कोणचे ? या पितरांचें सामर्थ्य काय ? आम्हीं येथें श्राद्ध करावें, त्यानें स्वर्गांत ते पितर कसे तृप्त होतात व तृप्त होऊन त्यांनीं तेथून आशिर्वाद दिले असतां त्या योगानें आमचें येथें कल्याण कसें होतें ? हे सर्व प्रश्न व पितरांची एकूण उत्पत्ति या सर्वांचा उलगडा समजावा, असा हेतु आहे.

वैशंपायन म्हणतात:—बा जनमेजया, तुझा प्रश्न ऐकून मला फार आनंद झाला. ठीक आहे. तुला मीं पितरांची श्लाघ्य उत्पत्ति कशी झाली, आपण केलेल्या श्राद्धानें स्वर्गांत

१ मुळांत प्रपितामह असा शब्द आहे, पण त्याचा अर्थ पणजा असा करून हिशोब जुळत नाही, कारण राम, दशरथ, अज, रघु व दिलीप या हिशोबानें दिलीप निपणजा होतो.

२ मत्स्य पु० अ० १२ श्लोक ४८ यांत रघु हा दिलीपाचा बाप म्हटला आहे.

पितर कसे संतुष्ट होतात व संतुष्ट झाल्यावर तेथून आमचें कल्याण कसें करितात, तें सांगतों ऐक. तूं जे हे कांहीं प्रश्न विचारतोस ते सर्व प्रश्न पितामह भीष्म शर-शय्येवर पडले असतां त्यांना धर्मराजानें विचारले होते. भीष्मांनींही तत्पूर्वी त्याच शंका मार्कंडेयाला विचारिल्या होत्या, व मार्कंडेयांचें त्याविषयीं समाधान सनत्कुमारांनीं केलें होतें, अशी या विषयाची परंपरा आहे; तेव्हां भीष्म-युधिष्ठिरांचा झालेला संवाद मी तुला सांगतों. युधिष्ठिरानें विचारिलें, 'हे भीष्मा, जर कोणाचे मनांत आपल्याला पुष्टी प्राप्त व्हावी असें असेल तर ती त्याला कशी प्राप्त व्हावी? व काय कर्म केलें असतां लोकांचा शोक दूर होईल, तें आपण मला सांगा; आपण धर्मज्ञ आहां, म्हणून मी आपल्याला विचारितों.' भीष्म म्हणतात, 'बा युधिष्ठिरा, पितरांचें श्राद्ध हें वाटेल तें तें फल देणारें एक अनुष्ठान आहे, म्हणून जो कोणी शुचिर्भूतपणानें व तत्परतेनें पितृश्राद्धें करून पितरांचा संतोष करितो तो श्राद्धकर्ता इहलोकीं व मरणोत्तर परलोकींही आनंदांत राहातो. हे राजा, ज्याला धर्मेच्छा असेल त्याला पितर धर्मबुद्धि देतात; ज्याला संततीची इच्छा असेल त्याला संतति देतात, व ज्याला पुष्टीची इच्छा असेल त्याला पुष्टि देतात.'

धर्मराज म्हणतो:—पितामहा, आपण हें म्हणतां खरें, पण जसें कर्म करावें तसें फल घ्यावें, हा कायदा सर्व प्राण्यांना सारख्याच नियमानें लागू असल्यामुळें कोणाचे पितर स्वर्गांत असतील तर कोणाचे नरकांतही असतील; मग जे स्वतःच नरकांत आहेत ते दुसऱ्याला पवित्र फल कोठून देणार? बरें, जो जो कोणी श्राद्ध करितो तो तो चांगल्याच फलाची इच्छा करितो व यासाठीं वारंवार

श्राद्धकालीं लोक आपला पिता, पितामह व प्रपितामह या त्रयीच्या उद्देशानें पिण्ड देऊन श्राद्धें करीत असतात. हीं श्राद्धें पितरांना कशीं पोचतात, व त्यांतील जर कांहीं नरकांत असले तर तेथून ते आपणास सत्फल कसें देऊं शकतात? ज्या वेळीं केव्हां पितर नरकांत असतील त्या वेळीं जें आपण यजन करितों तें अशाच पितरांचें किंवा त्याऐवजीं दुसऱ्याच कोणाचें? शिवाय स्वर्गांतील देवही पितरांचें यजन करितात म्हणून आम्ही ऐकतों हें कसें? हे भीष्मा, आपण अत्यंत तेजस्वी आहां, करितां माझे हे सर्व प्रश्न पुरापूर उलगडून सांगा. आपली बुद्धि केवळ अलोट आहे, यास्तव येथें पितरांचे उद्देशानें केलेल्या श्राद्धानें इहलोकीं आपला बचाव कसा होतो?

भीष्म उत्तर करितात:—हे अरिमर्दना, पितर ते कोण, आपण ज्यांची पुजा करितों ते शिवाय कोण? या गोष्टीचा उलगडा पूर्वीं एक वेळीं मी माझे परलोकनिवासी पित्याला श्राद्धसमयीं पिण्ड देण्यास उद्युक्त झालों असतां माझे पित्यानें समक्ष येऊन मला सांगितला आहे तो मी तसाच तसाच तुला सांगतों; ऐक. चमत्कार असा झाला कीं, मी आपल्या सूत्र-ग्रंथांत सांगितल्या विधीप्रमाणें भूमीवर धर्म आंथरून तेथें माझे पित्याचे उद्देशानें पिण्ड ठेवीत असतां एकाएकीं तेथील भूमि उकलली, व तींतून आमचे बागा पूर्वीं जिवंत असतां त्यांचा जसा बाहुभूषणें वगैरेनीं अलंकृत व रक्तवर्ण अंगुली व तल रानांनीं युक्त सुंदर हस्त असे तसाचेतसा हात बाहेर आला, व 'या माझे हातावर पिण्ड दे' असे पित्याचे शब्द माझे कानीं आले. ते ऐकून मी चापापून म्हटलें, 'अरेरे, मी विचार न करितां धर्मावरच पिण्ड ठेवीत होतों' ही मोठी चूक होई होती. बाकी तेथें माझा तरी काय इलाज? बौधायन सूत्रांत जो

श्राद्धविधि सांगितला आहे त्यांत असा प्रत्यक्ष हात येतो असे कोठेही सांगितले नाही. असो, माझे हे बोल ऐकून व मी दिलेला पिण्ड घेऊन माझा पिता प्रसन्न होऊन बहुत गोड शब्दांनी मला हणाला, कीं, बाबारे, तुझेसारखा धर्मज्ञ व ज्ञाता सत्पुत्र माझे पोटी आल्यानें मी इहपरलोकीं कृतार्थ झालों आहे. हे निष्पापा, तूं मोठा दृढव्रत आहेस असें पाहून या लोकांत (तुझे द्वारे) धर्माचे कामी व्यवस्था लावावी म्हणून तूं जे आतां मला प्रश्न विचारिलेस ते प्रश्न विचारण्याची बुद्धि मीच तुझे ठिकाणीं उत्पन्न केली; कारण एक तर धर्माचे बाबतींत राजा जी गोष्ट प्रमाण धरून चालतो, तीच प्रमाण धरून प्रजा ही राजाचें अनुकरण करितात; शिवाय जो कोणी धर्माचें रक्षण करितो त्याला प्रजांच्या सत्क्रियांचें चतुर्थांश फल मिळतें. त्याचे उलट जो मूर्ख राजा प्रजांचें धर्मरक्षण करित नाही त्याला त्यांच्या पापाचा चतुर्थांश भोगावा लागतो; परंतु, हे भीष्मा, तूं अनादि-सिद्ध झाला आलेले जे वेदधर्म तेच प्रमाण धरून चालला आहेस, हें पाहून मला तुजविषयीं निरुपम प्रेम उत्पन्न झाली आहे, व यामुळे मी तुजवर प्रसन्न होऊन केवळ आपस्वुषीनें तुला त्रैलोक्यांतही अन्यत्र न मिळणारा असा वर देतो, तो ऐक. 'तुझे मन अंत जावत्काल जगावें असें असेल तावत्काल मृत्यूचा अंमल तुजवर चालणार नाही, तुझी जेव्हां परवानगी मिळेल तेव्हां मग मृत्यूचा शक तुझेवर चालू होईल, याशिवाय तुला आपली काहीं मागावयाचें असले तर, हे भरतश्रेष्ठ, तुझे मनांत असेल तें निःशंक मागा, मी घ्याव्यास तयार आहे.'

भीष्म म्हणतात:—हे युधिष्ठिरा, याप्रमाणें बाबा बोलले असतां मी त्यांस अभिवादन करून हात जोडून म्हटलें कीं, आपली अशी मजवर कृपा झाली त्या अर्थी, हे पुरुषश्रेष्ठा,

मी आज कृतकृत्य झालों; तथापि, मी आणखीही आपणापासून काहीं मागून घेण्यास पात्र आहे असें ज्या अर्थी आपण म्हणतां त्या अर्थी आपण होऊनच मघाशीं ज्याचा अंशतः निर्देश केला होता तो प्रश्न मी आपणास सविस्तर पुसणार आहे. तेव्हां माझा धर्मनिष्ठ पिता मला म्हणाला, 'तुझ्या मनांत येईल तो प्रश्न मला खुशाल विचार, तूं वाटेल ती शंका काढ, तिचा उलगडा करण्यास मी समर्थ आहे.'

भीष्म म्हणतात:—बाबांचें हें बोलणें भूमीचे पोटांतूनच चाललें होतें. आपले बाबा पुण्य-बलांनें उत्तम लोकाला गेलेले आहेत, तेव्हां अशांच्या मुखांतून निर्णय ऐकण्याची संधी पुन्हा येणारी नाही असें वाटून मी मोठ्या कौतुकानें माझे बाबा भूमीचे आड असतां तशा स्थितीतच त्यांना प्रश्न केला. मीं म्हटलें 'आम्ही असें ऐकितों कीं, पितर हे देव आहेत व ते देवांनाही पूज्य आहेत, तेव्हां आम्ही जी श्राद्ध-कार्त्तव्य पूजा करितों ती देवांची कीं पितरांची, कीं आणखी कोणाची? आम्ही येथें श्राद्ध करावें त्यानें परलोकीं गेलेले पितर तृप्त कसे होतात, किंवा श्राद्धाचें फल तरी काय? देव, मनुष्य, दानव, यक्ष, उरग, गंधर्व, किन्नर व नाग हे सर्वच पितृश्राद्ध करितात, तेव्हां हे कोणाची पूजा करितात म्हणावें? या बाबतींत मला मोठा जबरदस्त संशय आहे व तो निवृत्त करून घेण्याची उत्कंठाही अतिशय आहे. बाबा, माझे मतानें आपण धर्मज्ञ, नव्हे सर्वज्ञच आहां; याकरितां हा माझा संशय दूर करा.'

हें भीष्माचें वाक्य ऐकून त्याचा पिता शंतनु म्हणाला, 'हे वत्सा, पितर मूळ कसे उत्पन्न झाले, श्राद्धांत त्यांना दिलेल्या अन्नाचें फळ आपणास कसे मिळतें व पितरांचें श्राद्ध करण्याचें कारण काय? इत्यादि जे प्रश्न तूं मला



केले आहेस त्यांचें थोड्यांत उत्तर देतों तें स्वस्थ मनानें ऐक. ( हे जे पितर म्हणून म्हणतात ते मृत्युलोकीं मरण पावून परलोकीं गेल्यावर किंमतीस चढलेले लोक अशांतला अर्थ नव्हे. ) हे पितर म्हणजे आदिदेव जो ब्रह्मदेव त्याचे पुत्रच होत; व यांची याच उद्देशानें स्वतंत्र सृष्टि व यांचा स्वर्गांतही मान मोठा आहे; कारण तेथेही यांस देवता म्हणून समजतात; व देव, असुर, मनुष्य, यक्ष, सर्प, गंधर्व, किलर, नाग, इत्यादि सर्व लोक ज्यांचें यजन करितात, ते हेच पितर. श्राद्धकालीं अन्नादि दानानें यांचें आप्यायन झालें म्हणजे ते उलट जगताला आप्यायित ( संतुष्ट ) करतात, अशी खुद्द ब्रह्मदेवाची सांगी आहे. यास्तव, हे महाभागा, असे जे हे पितर त्यांचें तूं निरलसपणें उत्कृष्ट श्राद्धविधीनें यजन कर. म्हणजे ते तुझें वाटेक त्या रीतीनें कल्याण करितील. कारण जो जें इच्छील तें फल देण्याचें त्यांचे अंगीं सामर्थ्य आहे. आमचे विशिष्ट नामगोत्रादिकांचा उच्चार करून तूं या पितरांचें आराधन केलेंस म्हणजे आम्हीं स्वर्गांतही असलों तरी ते पितर तेथें आमचें संतर्पण करितील; एवढें मीं तुला सांगितलें. आतां उरलेलें सारें, आज येथें श्राद्धासाठीं बोलाविलेले हे मार्कंडेयऋषि तुला सांगतील. हे मार्कंडेयऋषि मोठे पितृभक्त असून आत्म-ज्ञानी आहेत, व यांनीं आज जें आपल्या येथें श्राद्धाचें आमंत्रण घेतलें तें मजवर अनुग्रह करण्यासाठींच, असें मी समजतों; याकरितां तुला जें कांहीं विचारणें असेल तें या समर्थीनां विचार. ' असें सांगून आमचे बाबा तेथेंच गुप्त झाले.

## अध्याय सतरावा.

—:०:—

### पितृभक्तिवर्णन.

भीष्म सांगतात:—नंतर बाबांच्या या आज्ञेवरून मीं पूर्वीं खुद्द बाबांना जे प्रश्न विचारले होते, तेच प्रश्न एकाग्रचित्त करून मार्कंडेयांना विचारले; तेव्हां ते महातपस्वी व धर्मात्मा मार्कंडेय मला म्हणाले, 'बा भीष्मा, तूं निष्पापच आहेस, तरीही विशेष शुद्धचित्त ठेवून ऐक म्हणजे तुझ्या शंकांचीं सविस्तर उत्तरें सांगतों. बाबारे, मीं अत्यंत दीर्घायु आहे, पण हें दीर्घायुत्व मला पितरांचे प्रसादानेंच मिळालें आहे व आजपर्यंत माझा जो जगतांत एवढा मोठा लौकिक झाला, त्याचेंही मूळ पितृभक्तिच होय. आतां मला पितरांच्या उत्पत्तीचें ज्ञान कोटून झालें तें ऐक. सहस्रावधि वर्षे चालणारा जो युगांतकाल त्या समयीं मीं मेरु पर्वतावर राहून अत्यंत दुश्चर असें तप करित होतों. तप करितां करितां एक दिवस असा चमत्कार झाला कीं, मेरु पर्वताचे उत्तर बाजूनें ज्याच्या तेजांनें दाही दिशा उजळून गेल्या आहेत असें एक अत्यंत विस्तीर्ण दिव्य विमान पर्वतावर येऊन उतरलें. त्या विमानांत एक पलंग ठाकलेला होता व त्या पलंगावर केवळ सूर्याप्रमाणें जाज्वल्य असा एक उग्र तेजाचा पुरुष मीं निजलेला पाहिला. आकारानें हा पुरुष फार मोठा नव्हता, तर केवळ आंगठ्याएवढा होता; पण त्याचें तेज इतकें गाढ होतें कीं, तो केवळ आगीची ज्योतच दिसे व तसल्या तेजस्वी विमानांत असला पुरुष म्हणजे अग्नीचे ठिकाणींच अग्नि ठेविल्याप्रमाणें दिसत होता. असो; मीं विमानांत बसलेल्या त्या समर्थ पुरुषाला शिरसाष्टांग वंदन करून प्रश्न केला कीं,

१ मार्कंडेयाला मूळ सोळा वर्षेच आयुष्य होतें, परंतु तो पुढें दीर्घायु झाला, हें सर्वास माहीतच आहे.

‘हे विभो, आपल्याकडे आमची नजर देखील आपले तेजामुळे धजत नाही; तर आपल्या स्वरूपाचे सम्यक्ज्ञान आह्मांस कसे व्हावे? माझे अल्पमतीला असे वाटते की, ‘आपण तपोबलाने निर्माण झालेले केवळ शुद्धसत्त्वात्मक देवांचेही दैवत आहां.’ हे माझे शब्द ऐकून हंसून ते धर्मात्मे म्हणाले, ‘बाबारे, तू निर्मळ आहेस खरा; तथापि ज्या अर्थी माझे स्वरूपाचा सम्यक्बोध होत नाही, त्या अर्थी तू तपश्चर्या चांगले प्रकारे केली नाहीस.’ असे बोलून त्यांनी तत्क्षणीं आपले रूप बदलले, व असा कांहीं अत्युत्तम पुरुषाचा आकार घेतला कीं, तशा आकाराचा सुंदर पुरुष मी पूर्वी कधीही पाहिला नव्हता.

सनत्कुमार (हा पुरुष म्हणजेच सनत्कुमार) म्हणाले, “बाबारे, सर्वशक्तिमान् जो ब्रह्मदेव त्याचा मी फार जुनाट मानसपुत्र आहे. तू तर्क केलास त्याप्रमाणे मीही तपोबलानेच निर्माण झालों असून शुद्धसत्त्वात्मक आहे. हे भार्गवा, पूर्वीपासून देवमंडळांत सनत्कुमार म्हणून ज्याचे नांव कानीं येत असते तोच मी आहे. वत्सा, तझे कल्याण असो. तुझी कोणती इच्छा मी पूर्ण करावी हें सांग. ब्रह्मदेवाचे जे दुसरे सात दुर्धर्षपुत्र आहेत ते सर्व माझे धाकटे भाऊ. त्यांचे वंश सृष्टींत चालू आहेत. त्यांचीं नांवें ऋतु, वासिष्ठ, पुलह, पुलस्त्य, अत्रि, अंगिरा व मरीची. या सर्वांचे देवगंधर्वही पूजनसेवन करितात, व हे सातजण आपले तपोबलाने त्रैलोक्याचे रक्षण करितात. मी या भानगडीत पडत नाही. मी प्रजोत्पादन व ऐहिक इच्छा यांना पांटा देऊन यतिधर्म स्वीकारिला आहे; व चित्ताचा आत्मरूपाचे ठिकाणीं लय करून सर्वदा स्वरूपी रममाण असतां. मी उत्पन्न झालों तेव्हां शरी-

रानें व मनानें जसा बाल किंवा कुमाररूप होतो तसाच इतकीं युगे लोटलीं तरी अजून आहे. व या कारणाने मला सनत् म्हणजे निरंतर कुमार म्हणजे बालरूप, या अर्थानें सनत्कुमार हेंच नांव पडलें आहे. माझे दर्शन व्हावे या इच्छेनें तू भक्तिपूर्वक माझे आराधन केलेस, त्या योगानें हा मी तुझ्या दृष्टीस पडलों आहे. ‘तुझा कोणता हेतु मी पूर्ण करूं तें सांग.’ हे भीष्मा, याप्रमाणें सनत्कुमारांनीं मला आज्ञा केली असतां, पितरांची उत्पत्ति व श्राद्धाचें फल, यांसंबंधीं तू जे आज मला प्रश्न केलेस तेच मी प्रसन्न झालेल्या त्या भगवंताला केले, व त्या दिव्य पुरुषानें माझे संशय दूर केले. त्याचा माझा संवाद बहुत वर्षे झाल्यानंतर सनत्कुमार मला म्हणाले कीं, हे विप्रर्षे, तुझ्या प्रश्नानें मी फार संतुष्ट झालों आहे, तेव्हां या पितरांच्या संबंधीं मूळपासूनची कच्ची हकीकत मी तुला सांगतां ऐक. हे आपले (ब्रह्मदेवाचे) आराधन करितील या संकल्पानें ब्रह्मदेवानें देव निर्माण केले. परंतु ब्रह्मदेवाला एका बाजूला सोडून ते लोभी देव आपल्यालाच फल मिळावें, या उद्देशानें यजन करूं लागले. तें पाहून ब्रह्मदेवानें त्यांस शाप दिला. त्यामुळे त्या सर्व देवांची अकल नाहीशी होऊन ते केवळ मूर्ख बनले. त्यांना जेव्हां कांहीं कळना कीं वळेना, तेव्हां त्यांचें अनुकरण करणारे लोकही मूढ झाले. शेवटीं शापाचे तडाक्यांत सांपडलेले ते सर्व देव पितामहाला वारंवार नमन करून लोकानुग्रहार्थ विनवूं लागले. तेव्हां ब्रह्मदेव त्यांना म्हणाला, ‘तुम्ही माझी पूजा न करितां आपलीच पूजा चालविली हा तुम्हांकडून मोठा व्यभिचार झाला आहे; याकरितां तुम्हाला प्रायश्चित्त केलें पाहिजे. तें प्रायश्चित्त इतकेंच कीं, तुम्ही आपल्या पुत्रांची प्रार्थना करा म्हणजे ते

तुम्हाला अक्कल शिकवितील आणि तुम्ही शुद्धी-  
वर याल. ब्रह्मदेवानें जेव्हां याप्रमाणें त्यांना  
निकून सांगितलें तेव्हां त्या लघुत्वामुळें ते अंत-  
र्यामी व्यथित झाले; परंतु निरुपायामुळें ते  
ब्रह्मदेवाचे आज्ञेप्रमाणें कृतदोषाचे प्रायश्चित्तार्थ  
म्हणून, दीन होऊन, आपले पुत्रांस उपाय  
पुसते झाले. त्या वेळीं पुत्रांनीं चित्तनिरोध  
करून ध्यानपूर्वक अंतर्यामी शोध केला व  
त्यांना सांगितलें कीं, “ बापहो, प्रायश्चित्तें  
एकच प्रकारचीं नाहींत. धर्मरहस्यांत जे निपुण  
आहेत, ते काया, वाचा आणि मन या तीनही  
साधनांनीं नित्य प्रायश्चित्तें केलीं पाहिजेत,  
असें सांगतात; व स्वतःही ते याप्रमाणेंच नित्य  
करीत आले आहेत.” याप्रमाणें पुत्रांनीं कान-  
उघाडणी करून प्रायश्चित्ताचें महत्त्व व रहस्य  
सांगतांच त्या देवमंडळीची अक्कल ताळ्यावर  
आली. त्या वेळीं त्यांचे पुत्रांनीं त्यांना “ बरें  
आहे; तुमचें काम झालें, त्या अर्थी ‘पुत्रहो’  
तुम्ही आलेत तसे परत जा ” असा निरोप  
दिला. तेव्हां आपले पोरगे उलट आपणासच  
‘पुत्रहो’ म्हणून (एखाद्या उन्मत्ताप्रमाणें)  
बोलले, हा प्रकार काय ? हा आपला अपमा-  
नच नव्हे काय ? ह्याचा उलगडा करून ध्यावा,  
अशा बुद्धीनें ते पुनः ब्रह्मदेवाकडे आले. त्यांचें  
गाव्हणें ऐकून ब्रह्मदेवानें उत्तर केलें, ‘तुमचे  
पोरगे तुम्हाला पुत्रहो म्हणाले तें हिशोबीच  
म्हणाले. हें तुम्ही आपणांस ब्रह्मवादी म्हणजे  
श्रुतिज्ञ म्हणवीत असून तुम्हाला कसें कळत  
नाहीं ? “ यस्तानि विजानात्सपितुः पिता सत् ”  
अशी एक श्रुति आहे, ती तुम्हाला माहीत  
आहेना ? तिचा अर्थ काय बरें ? ज्ञानी पुत्र  
हा आपल्या पित्याचाही पिता आहे. तुम्ही  
त्यांना शरीर दिलें या कारणानें तुम्ही त्यांचे  
पिते व ते तुमचे पुत्र हा न्याय जसा खरा  
आहे, तसाच, त्यांनीं तुम्हाला ज्ञान दिलें

यामुळें ते तुमचे बाप व तुम्ही त्यांचे पुत्र,  
हाही न्याय तसाच खरा आहे. सारांश, तुम्ही  
एकमेकांचे बाप व एकमेकांचे पुत्रही आहांच  
आणि म्हणून तुमचे पोरानीं तुम्हाला “ पुत्र हो ”  
म्हणून म्हणण्यांत अन्याय किंवा अपमान  
कोठेंच नाहीं. ”

याप्रमाणें ब्रह्मदेवानें समजूत घालतांच ते  
स्वर्गवासी देव आपले पुत्रांकडे परत जाऊन  
त्यांस मोठ्या प्रेमानें म्हणाले, “ बापहो, ब्रह्म-  
देवानें आमची समजूत घातली; तीवरून  
तुम्ही आमचे ज्ञानदाते अतएव एका अर्थी  
आमचे बापच आहां. हा न्याय आम्हांस  
पडला व आमचा सर्व राग जाऊन, हे धर्मज्ञहो,  
आम्ही प्रसन्न झालों आहों, तर तुमची काय  
इच्छा आहे, आम्ही तुम्हांस कोणता वर द्यावा  
तें सांगा. तुम्ही आम्हाला जें ‘पुत्रहो’  
म्हणून संबोधिलें तें यथार्थ आहे. त्यांत कांहीं  
चूक नाहीं. आतां तुम्ही ज्या अर्थी आम्हांला  
‘पुत्र’ म्हणून म्हटलें आहे त्या अर्थी आम्ही  
आतां तुम्हांस “ पितर ” ही कायमची संज्ञा  
देतो. नाग, दानव, राक्षस, इत्यादिकांपैकीं  
कोणीही श्राद्धकालीं आपल्या गत पितरांच्या  
उद्देशानें ज्या ज्या क्रिया करील, त्या त्या  
फलद्रूप होतील. त्या अशा कीं, श्राद्धीय अन्ना-  
दिकानें तुम्ही प्रथम संतुष्ट झालां म्हणजे तुमचे  
द्वारानें श्राद्धकर्त्याचे पितर तृप्ति पावतील व  
त्या पितरांचे द्वारे पितरांची शाश्वत देवता जी  
सोम (चंद्र) त्याला पुष्टि येईल. याप्रकारें  
श्राद्धक्रियांनीं सोम पुष्ट झाला म्हणजे तो  
स्थावरजंगम वस्तूंनीं व्यापलेलें हें समुद्रारण्यपर्वत-  
मय जें जगत् त्याला ( आपल्या किरणांनीं ) पुष्टि  
देईल. आपणास पुष्टि प्राप्त व्हावी, या उद्देशानें  
जे कोणी गृहस्थ पितृश्राद्धें करतील त्यांस  
पितर (तुम्ही) सदैव संतति व पुष्टि देतील.  
त्याचप्रमाणें जो कोणी आपल्या स्वतःचे पित-

रांच्या नामगोत्राचा स्पष्ट उच्चार करून श्राद्ध-  
कालीं तीन पिंड देईल, त्याचे पितर आपल्या  
कर्मगतीमुळे कोणत्याही योनींत व कोणत्याही  
स्थळीं असले तरी तुम्ही त्या श्राद्धकर्त्यानें  
केलेल्या दानानें प्रसन्न होऊन त्याचे तीन पूर्वजांस  
संतुष्ट करा. ही कामगिरी तुम्हीं करावी,  
अशी परमेष्ठी ब्रह्मदेवानें पूर्वीच आज्ञा दिली  
होती, ती आज तुम्हांस कळविली आहे. तर हे  
देवहो, ती तुम्हीं खरी करावी, व आपण इत-  
उत्तर परस्परांचे बापही आहों व लेकरही  
आहों, असें मानून प्रेमानें चालूं.

सनत्कुमार म्हणतातः—आतां ते देवच  
पितर कसे व पितरच देव कसे आणि परस्पर  
तेच पितर कसे, पितर आणि देवही कसे, हें  
कोडे उलगाडलें ना ?

## अध्याय अठरावा.

—:—

### श्राद्धफलकथन.

मार्कंडेय म्हणतातः—हे भीष्मा, अत्यंत  
तेजस्वी, केवळ देवांचाही देव शोभेल अशा  
सनत्कुमारानें आतां सांगितल्याप्रमाणें पितरांचा  
इतिहास मला समजाविला असतां मला पुनरपि  
कांहीं शंका आल्या त्या मीं अरिनिहंत्या  
चिरंजीवी भगवान् सनत्कुमारापासून पुनरपि  
उलगाडून घेतल्या; त्यांची हकीकत, हे गंगापुत्रा,  
मी तुला मुळापासून सर्व सांगतों, ती समजून घे.  
मी त्या सनत्कुमारास विचारलें कीं, आपण  
मला देव हेच पितर व पितर हेच देव होत व  
ते पितर सोमाला पुष्टि देतात, इत्यादि सांगितलें;  
पण असे हे जे पितृगण त्यांची संख्या किती  
आहे व ते कोणते लोकांत राहातात तें मला  
सांगावें. या प्रश्नावर सनत्कुमारांनीं उत्तर केलें  
कीं, हे याजकश्रेष्ठा, स्वर्गांत राहाणाऱ्या या

पितरांचे गण आहेत; त्यांपैकी चौथे मूर्तिमान्  
म्हणजे शरीरी आहेत व तीन अमूर्तिमान् म्हणजे  
अशरीरी आहेत. हे तपोधना, त्यांचें वसति-  
स्थान, त्यांची उत्पत्ति, पराक्रम व महत्त्व हीं  
सविस्तर सांगतों तीं एक. या सातापैकीं जे  
अमूर्त म्हणून पितृगण सांगितले त्यांचे वसति-  
स्थानाला सनातनलोक असें म्हणतात. हे पितृ-  
गण मोठे देदीप्यमान असून ते सर्व प्रजापतींचे  
पुत्र होत. या गणांतील वैराज नांवाचे जे  
पितृगण आहेत ते विराज प्रजापतींचे पुत्र  
म्हणून प्रख्यात आहेत. यांचें देवगण शास्त्र-  
विहित कर्मानें आराधन करित असतात. हे  
पितर म्हणजे प्रथम योगभ्रष्ट तपस्वी असतात.  
योगाची पूर्णता न झाल्यामुळे हे मुक्तीस न  
जातां केवळ सनातन ब्रह्मलोकास मात्र जातात.  
तेथें एक सहस्र युगपर्यंत प्रजाप्रतीसह वास  
करून पुढील कल्पाचे आरंभीं सनकादिक रूपानें  
ब्रह्मदेवापासूनच उत्पन्न होतात. मग यांस पूर्व-  
जन्मांतील स्मृति प्राप्त होऊन पूर्वजन्मी अपूर्ण  
स्थितींत राहिलेल्या अप्रतिभ सांख्य योगाच्या  
अभ्यासाला ते लागतात, व अखेरीस त्यांचा  
योग पूर्णतेस जाऊन ते सिद्ध ब्रह्मज्ञानी होतात  
व नंतर जेथून पुनरावृत्ति नाहीं अशा शाश्वत-  
पदाला पोचतात. हे मार्कंडेया, हे पितृगण  
इहलोकीं जे कोणी नवीन उमेदवार योगाभ्यासा-  
विषयीं यत्न करित असतात त्यांच्या योग-  
सिद्धीला हे साहाय्य करितात, व हेच आपल्या  
योगबलानें प्रथम सोमाला पुष्टि आणीत असतात.  
याकरितां हे जे योगी पितृगण यांचे उद्देशानें  
विशेषकरून श्राद्धें केलीं पाहिजेत. सोमाची

१ सुकाल, आगिरस, सुस्वधा व सोमप हे चौथे,  
यांना कर्मप्रभावानें दिव्य देह मिळालेले आहेत.

२ वैराज, अग्निष्वात्त व बहिष्पद हे तीन गण अमूर्त  
आहेत, त्यांना निश्चितसें रूप नाहीं. जेव्हां जे वाटेले  
ते रूप ते घेऊं शकतात.

वृद्धि करणारे जे महात्मे त्यांची ही पहिली पिढी होय. यांना मेना नांवाची एक मानस-कन्या झाली. ही गिरिश्रेष्ठ जो हिमालय त्याची पत्नी. हिला हिमवानापासून झालेल्या पुत्रास 'मेनाक' असे म्हणतात. त्या 'मेनाकाचा' पुत्र मोठा शोभिवंत व नानारत्नांनी युक्त असा क्राँच नांवाचा महापर्वत होय. 'मेनाक' पुत्राशिवाय शैलराजा जो हिमालय त्याने आपल्या 'मेना' स्त्रीचे ठिकाणी अपर्णा, एकपर्णा व एकपाटला या नांवांच्या तीन कन्या उत्पन्न केल्या. या तिन्ही कन्यांनी देव व दानव यांनाही दुश्चर असे घोर तप करून त्रैलोक्यांतील स्थावर-जंगम सृष्टीस त्राही त्राही करून सोडिले. यापैकी एकपर्णा नांवाची जी कन्या होती ती वनस्पतींचे एकच पर्ण भक्षण करून रहात असे. दुसरी एकपाटला ही पाटल वृक्षाचे एक पुष्प खाऊन राही. तिसरी जी अपर्णा ती मात्र कधीही खात नसे. तो तिचा तीव्र नियम पाहून तिची आई जी 'मेना' तिचे मातृप्रेमामुळे आंतडें पिळे व ती आपल्या घोर तप करणाऱ्या मुलीला 'उमा' म्हणजे अगे असें करू नको म्हणून वारंवार निवृत्त करण्या-विषयी यत्न करी. पुढे आईच्या 'उमा' 'उमा' अशा वारंवार शब्दोच्चारामुळे त्या सुंदर मुलीला त्रैलोक्यांत उमा असेच म्हणू लागले व हिची योगनिष्ठेविषयीही सर्वत्र फार ख्याति झाली. हे भार्गवा, या जगतांत या तीन कुमारी सदैव राहावयाच्याच. या सर्वही बहिणी आपले शरीर सर्वदा तपश्चर्येच्या कामी लावणाऱ्या, योगबलाने युक्त व ब्रह्मवेत्त्या असून सर्वही ऊर्ध्वरेत्या आहेत. या तीन बहिणीपैकी

वयाने वडील, योग्यतेने श्रेष्ठ, रूपकांतीने अप्रतिम व योगबलाने वरिष्ठ अशी जी उमा ती देवाधिदेव जो शंकर त्याचे पदरीं पडली. दुसरी जी एकपर्णा ती बुद्धिमान् महात्मा, योगाचार्य, जो असितकुलोत्पन्न देवल त्याला दिली, व एकपाटला ही जैगीषव्याला दिली. उमेच्या या दोघीही बहिणी तिचेप्रमाणेच महा भाग्यवान् असून योगनिष्ठांच्याच पदरीं पडल्या.

मरीचिप्रजापतीचे पुत्र जे अग्निष्वात्त नांवाचे पितर आहेत ते सोमपद या नांवाने प्रसिद्ध असलेल्या लोकांत राहातात. हे सर्वही अपारतेजस्वी आहेत. देवही यांचे संतर्पण करितात. यांना अच्छोदा नदी ही मानसकन्या होती. हिजपासूनच अच्छोद नांवाचे जे परम रमणीय विख्यात सरोवर आहे ते निर्माण झाले. हिने आपले पितर पूर्वी कधीही पाहिले नव्हते आणि यामुळे पुढे जेव्हा ते अमूर्त स्थितीत तिच्या दिव्यदृष्टीला आढळले तेव्हा आपण ज्यांच्या मनोबलाने उत्पन्न झाले तेच हे म्हणजे हे आपले पितर हे त्या शुचि-स्मितेच्या लक्षांत आले नाही व यामुळे ती सुंदरी

पक्षाने कितीही यत्न केला तरी आपला बिंदुपात होऊ देत नाहीत व कदाचित् चुकून झालाच तर प्रतिपक्ष्याच्या इंद्रियांतून तो आकर्षण करून पुन्हा ठिकाणी स्थापू शकतात. वज्रोली-मुद्रेचा अभ्यास करणाऱ्या योग्याच्या शरीराला उत्तम सुवास येऊ लागतो, व त्याला जरा-मृत्यूचे भय उरत नाही. योगनिपुण स्त्रियाही या मुद्रेच्या बलाने आपले रज पुरुषाला खेचू देत नाहीत. सारांश, स्त्री व पुरुष हीं दोघीही ऊर्ध्वरेता होऊ शकतात. ऊर्ध्वरेत्या स्त्रीपुरुषांना पुराणकाळी किती मान असे याची साक्ष तर्पणांतील "ऊर्ध्वरेतस्तर्पयामि" या शब्दांकडे लक्ष दिले असतां कळून येईल.

१ वीर्यबिंदूचा निरोध करणाऱ्या. योगशास्त्रांत वज्रोली या नांवाची एक मुद्रा सांगितली आहे, त्या मुद्रेच्या अभ्यासाने स्त्री किंवा पुरुष हीं रतिकाली आपआपल्या वीर्याचे पतनापूर्वीच आकर्षण करून टाकतात व प्रति-

१ म्हणजे अग्निने साध्य जी पित्र्यादि इष्टिकमें त्यांत ज्यांचे ग्रहण केलें जातें ते.

२ या सरोवराचे नांव वाणभट्टाने आपले कादंबरींत घेतलें आहे.

खुद् आपल्या पितरांना पाहात असूनही अज्ञानामुळे त्यांना परपुरुषाप्रमाणे लाजली, व अद्रिका नामक अप्सरेला बरोबर घेऊन विमानांत बसून स्वर्गलोकांत फिरत असणाऱ्या अमावसु नांवाच्या आयूच्या यशस्वी पुत्राला पाहून मोहित झाली. खरे पाहातां हा वसु किंवा अमावसु आकाशगामी पितरांपैकीं एक असतां हिनें त्यावर लोलुप होऊन त्याजविषयीं कामवासना धरिली; व या पातकामुळे म्हणजे भलत्याचीच कामार्थ प्रार्थना केल्यामुळे ती योगापासून भ्रष्ट होऊन स्वर्गांतून पतन पावली. खालीं पडतां पडतां वाटेंत तिला परमाणूहूनही सूक्ष्म आकाराचीं अशीं तीन विमानें दिसलीं; व त्यांत अग्नींत असलेल्या विस्तवाचे ठिणगीप्रमाणें अव्यक्त व अत्यंत सूक्ष्म अशा स्वरूपाचे तिचे खरे पितर तिच्या दृष्टीस पडले. तेव्हां लज्जेनें खालीं मान घालून दुःखित होत्साती ' मला तारा, मला तारा ' असें म्हणूं लागली. त्या वेळीं तूं ' भिऊं नको, भिऊं नको ' अशा शब्दांनीं तिला आश्वासन दिल्यामुळे ती तशीच आकाशांत थबकून राहिली. नंतर मोठ्या दीनवाणीनें तिनें पितरांची प्रार्थना करून त्यांना प्रसन्न करून घेतलें, तेव्हां ते मर्यादोलंघन केल्यामुळे ऐश्वर्यापासून भ्रष्ट झालेल्या स्वकन्येला म्हणाले, ' हे शुचिस्मिते, तूं ज्याअर्थी स्वदोषामुळे ऐश्वर्यभ्रष्ट झाली आहेस त्या अर्थी तुला मृत्युलोकीं गेलेंच पाहिजे. कारण असा नियम आहे कीं, स्वर्गांत राहणारे जे देव त्यांचे कर्माचीं फळे त्यांना तत्काळ व त्याच शरीरांत म्हणजे ज्या शरीरांकडून तीं कर्म केलीं गेलीं असतील त्या शरीरांतच मिळतात. परंतु, मनुष्यलोकांतील नियम वेगळा आहे. त्या लोकांत केलेल्या कर्माचीं फळे मरणोत्तर प्राप्त होतात. यासाठीं, हे कन्ये, तूं आतां मृत्युलोकीं जाऊन तेथें तपश्चर्या करून नंतर

मरण पावशील. तेव्हां पुन्हा येथें येऊन तुला तपाचें फल भोगावयास मिळेल. करितां तूं संतोषानें मृत्युलोकीं जा. याप्रमाणें पितरांनीं सांगितलेली गोष्ट ऐकून तिनें संतोष पावून त्यांची कृपा संपादिली. तेव्हां ते सर्व दयार्द्र होऊन त्यांनीं ध्यानस्थितीत पुढें अवश्य होणारी गोष्ट कोणती ती ध्यानीं घेऊन मोठ्या प्रसन्न चित्तानें तिला म्हणाले कीं, हे मुली, तुझें ज्यावर मन गेलें होतें तो महात्मा अमावसु पृथ्वीवर मनुष्ययोनींत राजकुलांत उत्पन्न झाला आहे. त्याची तूं कन्या होशील व तो जन्म पुरा झाला म्हणजे पुन्हा या दुर्लभ लोकाला प्राप्त होशील. मृत्युलोकांत असतां तूं पराशर मुनींचा वारस असा एक पुत्र प्रसवशील. तो मोठा ब्रह्मर्षी होईल व आजकाल जो एकच एक अखंड वेद आहे त्याचे तो भाग करून चार वेद करील. पराशराला अशा लक्षणांचा पुत्र देऊन नंतर तूं पूर्वजन्मींचा जो महाभिष नांवाचा राजा तो सांप्रत मृत्युलोकीं, शंतनु नांवाचा राजा झाला आहे. त्याची तूं स्त्री होऊन त्याला विचित्रवीर्य नांवाचा एक धर्मनिष्ठ पुत्र व चित्रांगद नांवाचा आणखी एक सुलक्षणी पुत्र, असे दोन पुत्र देऊन नंतर तूं पुन्हा या लोकास येशील. तूं पितरांची अमर्यादा केलीस यास्तव तुला वाईट जन्म प्राप्त होईल. तूं अमावसूचीच कन्या होशील व तीही अद्रिका नामक जी अप्सरा त्याजबरोबर होती, तिच्याच पोटी येशील; व तूं अट्टाविसाव्या चौकडींत जें द्वापर-युग त्या युगांत एका मत्स्याच्या उदरांतून बाहेर येशील. पितरांनीं याप्रमाणें तिला सांगितल्यावर ती अच्छोदा मत्स्याच्या पोटी येऊन धीवरकुलांत प्रगट झाल्यानें ती लोकांत धीवर-कन्या म्हटली गेली; व पुढें त्या धीवरानें ती वसुराजाला नजर केल्यामुळे ती त्याही राजाची कन्या मानली गेली.

बर्हिषद् नांवांनै स्वर्गांत प्रसिद्ध असलेले पितृगण स्वर्गाच्या ज्या रमणीय प्रदेशांत राहातात त्या प्रदेशाला वैभ्राज असे नांव आहे. हे पितृगणही अमित तेजस्वी आहेत. हे मोठे तपस्वी, महाभाग व महात्मे पुलस्त्य नामक प्रजापतींचे पुत्र आहेत. सर्व देव, यक्ष, गंधर्व, राक्षस, नाग, सर्प व सुपर्ण हेही यांचा फार मान राखतात. यांची जी मानसकन्या ती पीवरी नांवांनै विख्यात आहे. ती स्वतः योगनिष्ठ असून योग्याची स्त्री व योग्याचीच माता होणार आहे. ही गोष्ट येत्या द्वापरयुगांत होणार. हे धर्मनिष्ठा, त्या काळीं पराशराच्या कुलांत शुक नांवाचा महातपस्वी योगी उत्पन्न होईल. तो व्यासमुनीपासून अरणीचे ठिकाणी उत्पन्न होईल, व तो तेजांनै निर्धूम अग्नीप्रमाणे जाज्वल्य असेल. हा शुकमुनि वर सांगितलेली पीवरी नांवाची जी बर्हिषद् नांवाची कन्या तिचे ठिकाणी मोठे बलिष्ठ व योगाचे केवळ आचार्य असे चार पुत्र व एक कन्या निर्माण करील. या पुत्रांचीं नांवे:—कृष्ण, गौर, प्रभु व शंभू हीं असतील व कन्येचें नांव कृत्वी. ही अणुह राजाची राणी होऊन ब्रह्मदत्ताची जननी होईल. याप्रमाणे असले योगनिष्ठ व महाव्रत पुत्र निर्माण करून व आपला पिता जो व्यास यापासून धर्माचीं विविध स्वरूपे ऐकून घेऊन तो धर्मनिष्ठ महायोगी शुक जेथून पुनरावृत्ति नाही अशा पदाला जाईल. हे पद म्हणजे दुःखशोकरहित अव्यय व शाश्वत असे ब्रह्मच होय.

आतां जे अमूर्त पितर सांगितले त्यांपैकी सुकालसंज्ञक पितर वसिष्ठप्रजापतीपासून उत्पन्न झाले असून ते मोठे तेजस्वी व मूर्तिमान् धर्म असे आहेत. ते ज्योतींनीं भासमान असणाऱ्या स्वर्गाच्या भागांत आवडीनें राहातात. हा भाग सर्व इच्छित वस्तूंनीं सुसंपन्न असा आहे. यांचे

पासूनच वृष्णि व अंधक वंशासंबंधी कथेला उद्भव होतो. हेही पितर महामान्य असून ब्राह्मण त्यांचें तर्पण करीत असतात. यांची जी मानसकन्या आहे ती गौ या नांवांनै स्वर्गांत प्रसिद्ध आहे. हे मार्कंडेया, ही तुझ्याच वंशांत दिली जाऊन शुकाची प्रिय राणी होईल. या गौ नामक कन्येलाच एकशृंगा असें वहिवाटीत म्हणतात. ही गौ साध्यनामक जे देवगण त्यांचें भूषणस्थान आहे.

सूर्यमंडलांत मरीचिगर्भ नांवाचे लोक आहेत, तेथें अंगिरसाचे पुत्र ( जे हविष्मंत नांवाचे पितर ) ते राहातात. यांना साध्यनामक देवांनीं पूर्वीं वाढविलें, अशी कथा आहे. ज्या क्षत्रियांना स्वर्गादिक फलांची इच्छा असेल ते या पितरांचें पूजन करितात. या पितरांची यशोदा नामक कन्या विश्रुत आहे. ही विश्वमहताची स्त्री, वृद्धशर्म्याची सून व राजर्षि महात्मा दिलीप याची आई. हा दिलीप मोठाच कीर्तिशाली झाला. हे मार्कंडेया, त्यांनै देवांच्या युगांत एक सुप्रसिद्ध असा अश्वमेध नांवाचा महायज्ञ केला. त्या यज्ञांत शांडिल्यनामक सुप्रसिद्ध वंशांत जन्म घेणारा अग्नि प्रकट झाला. त्या वेळीं यज्ञार्थ तेथें आलेल्या अनेक महर्षींनीं दिलीपाचें तें सामर्थ्य पाहून प्रेमाचे भरांत अनेक गाथा गाडल्या. त्यांचा सारांश हा कीं, जे कोणी एकाग्रचित्तानें सत्यनिष्ठ व महोदार अशा दिलीपराजाचें यज्ञसमयीं अवलोकन करतील त्या प्रेक्षकांनाही स्वर्ग प्राप्त होईल.

पुलह महर्षीपासून सुस्वधा नामक द्विजश्रेष्ठ उत्पन्न झाले. हे कर्दम प्रजापतीचे पितर

१ मत्स्यपु० अ. १५ श्लोक १४ यांत “ पादज ” म्ह० शूद्र यांचें संतर्पण करितात, असें सांगितलें आहे.

२ या ठिकाणीं मत्स्यपुराणांत ( अ० १५ श्लोक १५ ) शुकैस्य दैता परित्—असा पाठ आहे

होत. हे स्वर्गातील कामगसंज्ञक लोकांत रहातात; व आकाशांत यांना अनियंत्रित गति असल्यामुळे हे पक्षीरूपाने संचार करितात. हे मार्कंडेया, यांची उपासना फलार्थी वैश्यगण करितात. यांच्या मानसकन्येचे नांव विरजा हे आहे. हे ऋषे, ही ययातीची आई व नहुषाची पट्टराणी. याप्रमाणे मी तुला हे तीन पितृगण सांगितले; आतां हा चौथा समजून घे. या चौथ्या गणांतील पितरांना 'सोमप' अशी संज्ञा आहे. हे कवीची कन्या जी स्वधा तिचे ठिकाणी हिरण्यगर्भ जो अग्नि त्यापासून उत्पन्न झाले. शूद्र लोक यांची पूजा करितात. स्वर्गातील ज्या लोकांत ते रहातात त्यांस 'मानस' अशी संज्ञा आहे. नर्मदा नांवाची जी सुप्रसिद्ध श्रेष्ठ नदी ती यांची मानसकन्या. ही नदी उगमापुढे कांहीं अंतरापर्यंत दक्षिणमार्गाने वाहात जात असून आपल्या स्पर्शाने प्राणिमात्राला पावन करिते. ही पुरुकुच्छाची स्त्री व त्रसदस्यूची आई. याप्रमाणे ही सात पितरांची हकीकत झाली. हे मार्कंडेया, युगा-युगाचे ठायीं जेव्हां जेव्हां धर्माचा ऱ्हास होतो त्या त्या वेळीं प्रजापालक जो मनु तो या सप्तपितरांची ज्यांत विशेष पूजा केली जाते अशा प्रकारचीं श्राद्धे लोकांत प्रवृत्त करतो. हे द्विज-श्रेष्ठा, या सातही पितृगणांत यम हा प्रथम उत्पन्न झाला असल्यामुळे वेदांत त्याला पितृपति अशीच संज्ञा दिली आहे, व त्याचा हा अग्रमान ध्यानांत आणून त्यालाच 'श्राद्धदेव' असेंहि म्हणतात.

१ मत्स्यपुराण अ० १५। श्लो० १९ यांत “  
दुष” असे नांव दिलें आहे.

२ यदवधि तव तीरे पातकी नैति गंगे।

तदवधि भवजालैर्नैवमुक्तः कदास्यात्।

तवजलकणिकालं पापिनां पापशुद्धौ।

नर्मदाष्टकं.

हे मार्कंडेया, आतां श्राद्धाचे विधान सांगतो तें ऐक. सर्व पितृश्राद्धांत पात्रें रुप्याचीं किंवा निदान रुप्यानें मढविलेलीं तरी असावीत. कारण रुपें हें पितरांना फार प्रिय आहे. असल्या रजत पात्रांत वाढलेलें श्राद्धान्न स्वधाशब्द-पूर्वक अर्पण केल्यानें पितर फार संतुष्ट होतात. श्राद्धकालीं प्रथम सोम, अग्नि व यम यांचे अर्शीत आहुती देऊन संतर्पण करावें. अग्नि नसल्यास जलांत देणें. याप्रकारें जो भक्तिपूर्वक पितरांचा संतोष करितो, त्याला पितरही संतुष्ट करितात. पितर त्याला शरीर, पुष्टि व विपुल संतति देतात. त्याचप्रमाणें स्वर्ग देतात, आरोग्य देतात. फार काय सांगावें तो जे कांहीं इतर इच्छील तेंही सर्व देतात. हे मुने, पितृकार्याचे महत्त्व देवकार्यापेक्षांही विशिष्ट आहे. कारण, देव हे मोठे चेंगट व प्रसन्न होण्याला कठीण. पितर बिचारे अक्रोध म्हणजे शांत व त्वरित कृपा करणारे असे आहेत. म्हणून स्मृत्यादिकांत देवांपेक्षांही पितरांचा संतोष प्रथम करण्याकडे विशेष कटाक्ष आहे. पितरांपासून लोकांचे फारच श्रेष्ठ कल्याण होतें. शिवाय पितरांचा प्रसाद सदा स्थिर आहे म्हणजे त्यांची पूजा केली आणि ते अमुक वेळीं प्रसन्न झाले नाहीत, असें कधीं घडतच नाही. यास्तव, हे भृगुकुलोत्पन्ना मार्कंडेया, अशा पितरांना तूं नमस्कार कर. ही गोष्ट तुला विशेष आग्रहाने सांगण्याचे कारण असें आहे कीं, तूं मोठा पितृभक्त आहेस व त्यांतूनही, हे ब्राह्मणा, तुझी मजवर विशेष भक्ती आहे. आज मी तुझे कल्याण करणार आहे व तें कसें तें तुला प्रत्यक्ष पाहातां यावे म्हणून मी तुला दिव्य दृष्टि व अनुभवाचे

१ सोमाय पितृमते, अग्नये कव्यवाहनाय, यमा-यागिरसे स्वधा नमः, या शब्दांनीं आहुती देणें.

२ ही सवलत फक्त तीर्थाचे ठिकाणीं आहे.



सामर्थ्य, हीं दोन्हीही देतो. हे निष्पापा मार्कंडेया, मी जो मार्ग सांगतो, तो फार सावध-चित्तानें ध्यानांत घे. वास्तविक पहातां तूं कांहीं सामान्य पुरुष नव्हस. तूं मोठा सिद्ध आहेस. तथापि देवांची योगगति व पितरांची श्राद्ध-फलरूपी परागति चर्मचक्षूनें तुला दिसणार नाही. असें बोलून तो देवश्रेष्ठ त्याच्या जवळच बसलेल्या मला देवांनाही दुर्लभ अशी विज्ञान सहित दिव्यदृष्टि देऊन त्याला इष्ट त्या मार्गाला गेला. जातांना तो जळत्या आहवनीय अग्नीसारखा झळकत होता.

हे कुरुश्रेष्ठा, त्या सनत्कुमार देवाच्या प्रसादानें मला जें ज्ञान प्राप्त झालें तें या मृत्युलोकांत मनुष्यांना प्राप्त होणें फार कठीण आहे. याकरितां तूं तें नीट समजून घे.

## अध्याय एकोणिसावा.

—:०:—

### पितृकल्पवर्णन.

मार्कंडेय सांगतात:—हे भीष्मा, सनत्कुमारांनीं मला सांगितलें कीं, पूर्वयुगीं भरद्वाज वंशांतले कांहीं ब्राह्मण होते. हे योगाभ्यास करीत असतां मध्येंच दुराचरण करूं लागल्यामुळें योगापासून भ्रष्ट झाले. त्या भ्रष्ट स्थितींत ते मानस नांवाचें जें विशाल सरोवर त्याचे पैलतीरीं वेढे होऊन पडले, आणि एखाद्याची वस्तु पाण्यांत पडली असतां तो जसा धुंडीत बसतो, त्याप्रमाणें दुराचरणानें गमविलेल्या योगसिद्धीची त्यांना हळहळ लागून मूढाप्रमाणें ते तसे हळहळतच राहिले व अखेरीस योगसिद्धि प्राप्त झाल्यावांचूनच कालानें त्यांना गांठिलें. नंतर, ते योगभ्रष्ट ब्राह्मण मरणोत्तर दीर्घकालपर्यंत देवलोकांत राहून पुढें कुरुक्षेत्रांत कौशिक कुलांत उत्पन्न होतील. तेथे ते नरश्रेष्ठ पितरांच्या उद्देशानें धर्मकार्यार्थ म्हणून

पश्चादिकांची हिंसा करीत फिरतील. नंतर त्या भ्रष्टांना पुन्हा नीच योनींत जन्म येईल; मात्र त्यांनीं पूर्वजन्मीं पितरांचें आराधन करून मिळविलेल्या प्रसादबलानें ते नीच योनींत असतांही त्यांची पूर्वस्मृति कायम राहिल, व तीमुळें त्यांची बुद्धि ताळ्यावर येऊन त्यांची धर्माकडे प्रवृत्ति होत जाईल. नंतर स्वकर्माच्या सामर्थ्यानें पुनरपि ब्राह्मणजन्म प्राप्त होईल. त्या ब्राह्मणजन्मांत त्यांनीं प्रथम जन्मांत अर्धवट सोडलेला जो योगाभ्यास तो त्यांना पुन्हा साध्य होईल, व त्या अभ्यासबलानें ते शाश्वत पदाला पावतील.

हे मार्कंडेया, या गोष्टीवरून तुझ्या ध्यानांत येईल कीं, सद्धर्माचरण हें कधींही नाश पावत नाही. मध्यें कितीही अडथळे आले तथापि ते पुनरपि कर्त्याचे बुद्धीला सन्मार्गाकडे ओढीत नेतात. याकरितां तुझी मति वारंवार धर्माकडे लागूं दे. विशेषतः योगाचरणाकडे मति लागली असतां ती दिवसेंदिवस फारच उत्तम होत जाईल. पण, बाबा, योग कांहीं वाटेवर पडला नाही. अल्पबुद्धीच्या लोकांना हा कधींच प्राप्त होत नाही. कदाचित् मोठ्या कष्टानें प्राप्त झालाच तरी हे मुख लोक मृगयादि नाना क्रूर व्यसनांच्या नादीं लागून प्राप्त झालेल्याची नासाडी करितात व स्वतः सदा अधर्मानेंच राहातात आणि आपल्या गुरूंचाही द्रोह करितात; अशांच्या हातीं योग लागत नाही, तर तो कोणाच्या हातीं लागतो तें ऐक.

जे लोक न मागण्याजोग्या ज्या वस्तु आहेत त्या कधींही मागत नाहीत; शरण आलेल्यांचें रक्षण करितात; दुर्बलांची अवहेलना करीत नाहीत; पैशाच्या उबेमुळें उन्मत्त होत नाहीत; ज्यांचे आहारविहार व स्वकर्तव्यासंबंधी सर्व व्यापार हिशोबी व नेमस्त असतात; जे सदा ध्यान व अध्ययन यांत निरत असतात; नाय-

नाट झालेल्या वस्तूसाठी सोधण्या घालीत बसत नाहीत; केव्हाही विषयोपभोगांत गढून पडत नाहीत; मद्यमांस भक्षण करीत नाहीत; स्त्रीशी विलास करण्यांत आला तो दिवस घालवीत नाहीत; ब्राह्मणसेवेविषयी अदक्ष असत नाहीत; हलकट गोष्टीत मन घालीत नाहीत; आळसानें ज्यांना गिळलें नाही; मान-सन्मानाची ज्यांना विशेष चाड नाही; व जे आत्मप्रशंसेंत फारसे पडत नाहीत; जे वृत्तीनें अति शांत; ज्यांनीं क्रोध जिंकला आहे; ज्यांना बढाई व मीपणा यांचा विटाळही नाही; व जे सदा पुण्य-मय विचारानें भरलेले असतात, अशांनाच योग प्राप्त होतो. योग ही चीज मृत्युलोकांत फार दुर्मिळ आहे. भाग्यवान् असतील तेच व्रताचरण करितात. पूर्वकाळचे ब्राह्मण असे असत. प्रसंगी त्यांचे हातून चुकीने दोष घडलाच तर त्याची पुरी आठवण ठेवून ते आपला रस्ता सुधारीत व ध्यान आणि अध्ययन यांत गर्क राहून शांतीचे मार्गाला लागत.

हे धर्मज्ञा मार्कंडेया, योगधर्माहून अधिक महत्त्वाचा असा दुसरा कोणताही धर्म नाही. हा धर्म सर्वही धर्मांत वरिष्ठ आहे. यासाठी, हे भृगुकुलोत्पन्ना, त्याचीच कांस धर. तूं जर अल्पाहार करणारा, जितेंद्रिय, तत्पर, पवित्र व श्रद्धावान् होशील तर तुला आस्ते आस्ते कालगतीने योगसिद्धि प्राप्त होईल.

असें बोलून भगवान् सनत्कुमार जागचे जागीं अदृश्य झाले. ते गेल्यापासून मी त्यांची उपासना करण्यांत एकसारखा अठरा वर्षेपर्यंत निमग्न होतो; परंतु तीं अठरा वर्षे मला केवळ एका दिवसासारखी वाटली; किंवा मला कालाचें कसें तें भानच उरलें नाही. मी जेव्हां शुद्धीवर आलों, तेव्हां शिष्याजवळ पूसतपास केली, त्यावरून मला अठरा वर्षे लोटलीं असें कळलें. हे भीष्मा,

त्या देवाच्या कृपेचा प्रभाव केवढा म्हणून सांगूं? त्या अठरा वर्षांत मला तहान लागली नाही; भूक लागली नाही; किंवा अन्नपाणी नाही म्हणून मी यत्किंचितही कोमेजलों किंवा थकलों नाही.

## अध्याय विसावा.

—:०:—

### चटकोपाख्यान.

मार्कंडेय म्हणतात:—हे भीष्मा, आतां सांगितल्याप्रमाणें सनत्कुमार देव अंतर्धान पावल्यावर त्यांच्या वचनप्रभावानें दिव्यदृष्टि व विज्ञान हीं तत्काल माझे ठायीं प्रकट झालीं; व त्यांच्या योगानें, हे गांगेया, सनत्कुमारांनीं कुरुक्षेत्रांत कौशिक कुलांत जे सात पुत्र आले म्हणून मला सांगितलें होतें ते मला प्रत्यक्ष दिसूं लागले. या साताभावांपैकीं ब्रह्मदत्त नांवाचा जो सातवा भाऊ होता तो राजा झाला. याचा स्वभाव व आचरण यांवरून हा ब्रह्मदत्त पितृ-वर्ती या नांवानें विशेष प्रख्यात होता. हा कांपिल्य नामक श्रेष्ठ नगरींत राहाणारा जो पृथ्वीपति अणुह त्यापासून त्याची स्त्री जी शुक्रकन्या कृत्वी तिचे ठायीं जन्मला.

भीष्म म्हणतात:—हे युधिष्ठिरा, महातपस्वी महाभाग मार्कंडेय यांनीं या अणुह राजाची वंशावळ मला जशी सांगितली तशीच ती मी तुला सांगतो एक.

युधिष्ठिर म्हणतो:—ताता, आपण एकुण वंशावळ सांगणारच आहांत, पण प्रथम विशेषतः अणुह राजा, हा कोणाचा पुत्र होता, हा कोणत्या काळी होता, व राजा ब्रह्मदत्तासारखा महायशस्वी व धर्मेनिष्ठ पुत्र ज्याचे पोटी जन्मला त्याची वीर्यवत्ता तरी कसल्या प्रकारची होती

१ यांचीं नांवें—१ स्वसृप, २ क्रोधज, ३ हिंस्र, ४ पिशुन, ५ कवि, ६ वाग्दुष्ट, ७ पितृवर्ती ( ब्रह्मदत्त ).

व त्या सात भावांपैकी ब्रह्मदत्त हा कनिष्ठ असून राजा कां व कसा झाला, हें मला सांगावें. या ब्रह्मदत्ताचें चरित्र मी जें विशेष विस्तारानें ऐकूं इच्छितों याचें कारण, हे द्युति-मंता, असें आहे कीं, भगवान् शुकासारखा लोकपूज्य ऋषि आपली कृत्वी नामक कीर्तिमान् कन्या भलत्याच पोंचट माणसाला देणार नाही. अर्थात् तो तसाच कांहीं वीर्यवान् असला पाहिजे. याकरितां आपण त्याचें वृत्त मला सांगा. शिवाय त्याचे ते मार्कंडेयांनीं सांगितलेले बाकीचे भाऊ संसारांत कसे वागत होते, तें मला सांगा.

भीष्म म्हणतात:—हे धर्मा, माझा आज्ञा जो राजर्षि प्रतीप त्याचा हा ब्रह्मदत्त राजा समकालीन होता, असें माझे ऐकिवांत आहे. हा मोठा भाग्यवान्, योगी, प्राणिमात्राचें कल्याण करण्यांत तत्पर व प्राणिमात्राची भाषा जाणणारा होता; व ज्यानें तपोबलानें शिक्षानामक वेदांग निर्माण करून संहितेचा पदपाठ व एकंदर वेदांगांचा क्रम प्रचारांत आणिला; व योग शिकविण्यांत अत्यंत निपुण असल्यानें ज्याला योगाचार्य अशी संज्ञा आहे तो गालव ऋषि याचा मित्र होता; व योगिश्रेष्ठ कंडरीक हा त्याचा सचिव होता. महाभाग मार्कंडेय ऋषींच्या सांगण्याप्रमाणें पाहातां ब्रह्मदत्तादि सातही बंधु पूर्वजन्मीं निरनिराळ्या जातींत जन्मले असून परस्पर अत्यंत प्रेमळ मित्र होते;

१ या ठिकाणीं लक्ष्मीवैकटेश छापखान्यांतील छापील प्रतींत “ ऋतज्ञः सर्व भूतानां ” असा पाठ आहे, बंगालींत “ कृतज्ञः ” असा पाठ आहे. परंतु या दोन्ही पाठांपेक्षां आमचे जवळील लेखी प्रतींत “ रतज्ञः ” असा पाठ आहे व त्याला मत्स्यपुराणांतिल “ योगवित् सर्व जंतूनां रतवेत्ता भवत्तदा ” ( अ० २०, श्लो० २५ ) या श्लोकाचा दुजोरा आहे. यासाठीं आम्हीं तोच पाठ धरला हे.

व अखेर या जन्मीं ते सहोदरच झाले.

हे राजा युधिष्ठिरा, पुरुकुलोत्पन्न जो महात्मा ब्रह्मदत्त त्याच्या अति जुनाट वंशाचा वृत्तांत मी तुला सांगतों, तो ऐक. पुरुकुलांत बृहत्क्षत्र नांवाचा जो राजा झाला त्याला सुहोत्र नामक परम धार्मिक पुत्र झाला. त्या सुहोत्राला हस्ति नामक पुत्र होता. प्रसिद्ध जें हस्तिनापुर ( हल्लींची दिल्ली ) हें प्रथम यानेंच वसविलें. या हस्तीला अजमीढ, द्विजमीढ व पुरुमीढ असे तीन पुत्र होते. पैकीं अजमीढाला धूमिनी नामक स्त्रीचे ठिकाणीं बृहदिषु हा पुत्र झाला. हे राजा, या बृहदिषूचे पोटी महायशस्वी बृहद्धनु हा पुत्र झाला. हा मोठा धार्मिक असल्यामुळें याला बृहद्धर्मा असें म्हणत. याला पुढें सत्यजित् हा झाला. त्याचा विश्वजित्, विश्वजिताचा पुढें राजा सेनजित् झाला. या सेनजिताला लोकविख्यात असे चार पुत्र झाले. यांचीं नांवें:—रुचिर, श्वेतकेतु, महिम्नार व वत्स. यांपैकीं वत्स हा अवंतीचा राजा होता; व रुचिराला पृथुसेन नांवाचा महायशस्वी पुत्र होता. पृथुसेनापासून पार झाला. पारापासून नीप. नीपाला मात्र अत्यंत तेजस्वी, शूर व बाहुशाली असे महारथि शंभर पुत्र होते; व हे सर्वही राजे झाले; व या सर्वांनाही नीपच म्हणत. या नीपांचा वंश वाढविणारा समर नांवाचा जो पुत्र तो कांपिल्य नगरींत राहात असे व याला नांवाप्रमाणेंच समराची फार आवड असे. या समराला पर, पार व सदश्च असे तीन मोठे धर्मज्ञ पुत्र होते. पैकीं पराला पृथु नांवाचा पुत्र झाला. पृथूला सुकृत नामक पुत्र झाला व तो आपल्या सदाचरणानें सर्वगुणसंपन्न झाला. याला पुढें

१ जीवांचे ( शत्रु ) मित्रभाव जन्मजन्मांतरां कसे दृढावत जातात व विशिष्ट कुटुंबांत विशिष्ट प्रवृत्तींचीच माणसें कां जन्मतात, याचा अंशतः निवाडा यांत आहे.

विभ्राज झाला. विभ्राजाचा पुत्र कृत्वीचा नवरा व शुक्राचार्याचा जांवई जो सुप्रसिद्ध अणुह तो होय. अणुहाचा पुत्र बलवान् राजर्षी ब्रह्मदत्त हा झाला. त्याला योगनिष्ठ व शत्रुमर्दन असा विश्वक्सेन नामक पुत्र झाला. हा जो विश्वक्सेन हा खरें पाहातां ब्रह्मदत्ताचा पूर्वज म्हणजे आज्ञा जो विभ्राज तोच कांहीं कर्मगतीनें ब्रह्मदत्ताचे पोटी पुनः जन्मास आला होता. ब्रह्मदत्ताला याशिवाय सर्वसेन या नांवाचा पुत्र होता. ब्रह्मदत्ताचे घरांत बहुत कालपर्यंत पूजनी या नांवाची एक चिमणी राहात असे. तिनें या सर्वसेनाचे डोळे फोडले. आतां या ब्रह्मदत्ताचा विश्वक्सेन म्हणून जो वर महापराक्रमी पुत्र सांगितला, त्याला राजा दंडसेन नामक पुत्र झाला. या दंडसेनाला भल्लाटसंज्ञक पुत्र होता, याला कर्णाने युद्धांत मारिलें आहे. हा भल्लाट मोठा शूर व वंशोद्धार करणारा होता. मात्र याचे पोटी जो पुत्र आला तो मोठा वाईट निपजला. कारण, याच्या एकट्याच्या दुष्कृतीमुळे उग्रायुधराजाने मागे सांगितलेले जे याचे नीपसंज्ञक पूर्वज त्यांच्या एकंदर वंशविस्ताराचा पूर्ण उच्छेद करून टाकिला. एवंच, हा दुर्बुद्धि मोठा कुलांगार निपजला. नीपांचा नायनाट करणाऱ्या त्या उग्रायुधाला जेव्हां अत्यंत गर्व झाला व मोठी घमेड चढली त्या वेळेस, हे युधिष्ठिरा, मी त्याला युद्धांत चीत केला.

धर्मराज म्हणतो:—महाराज, हा उग्रायुध कोणाचा पुत्र, कोणच्या कुळांत जन्मला व आपण त्याला युद्धांत काय म्हणून मारिलें, हें सर्व मला सांगा.

भीष्म सांगतात:—बाबारे, मागे जो अजमीढ राजा सांगितला, त्याला यवीनर नांवाचा एक विद्वान् पुत्र होता; यवीनराचे पोटी धृतिमान् झाला; धृतिमानाचा पुत्र सत्यधृति, सत्य-

धृतीचे उदरीं प्रतापशाली दृढनेमी हा जन्मला. पुढे राजा सुधर्मा हा दृढनेमीचा पुत्र झाला. सुधर्म्याला पुढे सार्वभौम राजा हा पुत्र झाला. याला सार्वभौम म्हणण्याचें कारण खरोखरच तो सर्व पृथ्वीचा मालक झाला होता. याच्या सुप्रसिद्ध वंशांत पुढे पौरवांना आनंद देणारा महान् नांवाचा राजा झाला; पुढे महानाला रुक्मरथ झाला, असें लिहिलें आहे. रुक्मरथाचा पुत्र सुपार्श्व, सुपार्श्वचा पुत्र सुमति हा मोठा धार्मिक होता. सुमतीला सन्नति नांवाचा मोठा वीर्यवान् पुत्र झाला. याचा पुढे मोठा बलाढ्य कृत नांवाचा पुत्र झाला. हा कृत कौशल देशांतील इक्ष्वाकु कुलोत्पन्न राजा जो महात्मा हिरण्यनाभ त्याचा शिष्य होता. याने सामवेदाची संहिता चोवीस निरनिराळ्या रीतींनीं गाण्याची पद्धत काढिली, व यामुळे याच्या पद्धतीप्रमाणें जे साम पढणारे आहेत त्यांना कार्त्य ( कृताचे अनुयायी ) असे म्हणतात, व त्या सामांना प्राच्यसाम असे म्हणतात. या कृताला पुरुकुलांतील मोठा पराक्रमी असा वर सांगितलेला उग्रायुध हा झाला. याच्या पराक्रमाने पृथ्वी राजाचा आज्ञा जो पांचालाधिपति राजा नीप हा गतप्राण झाला. या उग्रायुधाला क्षेम्य नांवाचा मोठा लौकिकवान् पुत्र झाला. क्षेम्याला पुढे सुवीर, सुवीराला पुढे नृपंजय व नृपंजयाला बहुरथ. हे सर्व राजे पुरुकुलोत्पन्न होत. असो; हा उग्रायुध जेव्हां अति माजला, तेव्हां त्याला वाईट वाईट बुद्धि सुचूं लागली; त्यानें आपलें सैन्य वाढवून नीप-कुलाचा व इतर अनेक राजांचा धुव्वा उडविला; इतकेंच करून न थांबतां आमचे बाबा वारल्यावर त्यानें मस्तीत येऊन मला एक फारच वाईट गोष्ट ऐकविली; तो वृत्तांत असा: मी बाबा मेल्यावर एक दिवस माझे सोबत्यांना भोंवतालीं घेऊन सहज

धरणीवर निजलों असतां एकाएकीं या उग्रा-  
युधाचा दूत आंत येऊन त्यानें आपल्या  
धन्याचा निरोप मला कळविला; तो हाः—“हे  
भीष्मा, तुझा बाप मेला आहे, तुझी आई जी  
गंधकाली (सत्यवती) हिचा रूपाविषयीं मोठा  
लौकिक आहे. स्त्रियांमध्ये ती केवळ रत्नच आहे.  
तेव्हां अशीला आपली भार्या करावी अशी अस्मा-  
दिकांची तबियत लागली आहे. तरी, हे कुरु-  
श्रेष्ठा, तुमच्या आईला या कामासाठीं मजकडे  
पाठवून द्यावी. असें सांगण्याचा माझा हक्क  
काय म्हणशील तर आजकाल या धरणी-  
तलावर जीं जीं रत्नें म्हणून आहेत त्यांचा  
वाटेकरी मीच आहे; करितां हें स्त्रीरत्नही  
मलाच योग्य आहे. इतकी माझी मागणी तूं  
मान्य केलीस म्हणजे तुला कांहीं कमी नाही.  
तूं ढेंकर देशील इतकी पुष्कळ दौलत व वाटेक  
तितकें विस्तीर्ण राज्य हीं मी तुला खुषीनें  
देईन, ही खात्री ठेव. मला आजकाल दुर्घट  
असें कांहींच नाही. माझ्या हातीं जें हें  
प्रज्वलित चक्र आहे हें इतकें अजिंक्य आहे  
कीं, रणांगणीं तें दृष्टीस पडतांच शत्रू सैरावैरा  
पळूं लागतात, ही गोष्ट तूं ध्यानांत घे; आणि  
तुझे राष्ट्र, तुझे प्राण व तुझे कुल हीं सुरक्षित  
राहावीं अशी जर तुझी इच्छा असेल तर  
मुकाट्यानें माझ्या आज्ञेत तूं वाग; असें न  
करशील तर तुला शांति मिळून कशी ती  
मिळूं देणार नाही.”

हे धर्मा, मी भूमीवर दर्भासनावर लकटलों  
असतां त्या उग्रायुधानें आपल्या त्या दूताला  
मध्ये करून अग्नीच्या ज्वालेप्रमाणें तत्रि असे हे  
शब्द माझ्या कानीं पाडिले. हे धर्मनिष्ठा,  
त्या वेळीं मीं त्या नीचाचा अभिप्राय काय तो  
ध्यानीं आणून युद्धार्थ सज्ज होण्याविषयीं  
माझ्या सर्व सेनाधीशांना आज्ञा केली. मला  
इतक्या चिडीला येण्याला असें कारण झालें

कीं, माझ्या मातेचा पुत्र जो विचित्रवीर्य तो  
अद्यापि केवळ लहान असून सर्वथा माझ्या  
आश्रयावर अवलंबून होता. त्याकडे पाहून  
मला त्या हलकटाचा ( उग्रायुधाचा ) इतका  
संताप आला कीं, युद्ध करून त्याचीं हाडें  
मोडावीं, यापलीकडे मला दुसरी कोणतीही  
गोष्ट सुचेना. परंतु, त्या वेळीं माझे भोंवतीं  
सल्लामसलतींत कुशल असे माझे सचिव बसले  
होते, तसेच साक्षात् वेदस्वरूप असे माझे  
ऋत्विज बसले होते, व माझे खरें हित कशांत  
आहे तें जाणणारे माझे जिव्हाळ्याचे स्नेही  
बसले होते. त्या सर्वांनीं मला युद्धापासून  
निवृत्त होण्याविषयींचा आग्रह केला. ते सर्वच  
शास्त्रज्ञ असून माझ्या प्रेमांतले असल्यानें मला  
त्यांचें ऐकावें लागलें. शिवाय त्यांनीं आपल्या  
म्हणण्याला सयुक्तिक कारणें काय तींही मला  
ऐकविलीं. माझे मंत्री म्हणाले, हा पापी उग्रा-  
युध सैन्य घेऊन ठेपला, ही गोष्ट खरी; आपण  
अजून वडिलांचे सुतकांतच आहां, मोकळे झालां  
नाहीं. शिवाय घे म्हणल्या युद्धाला उठणें  
ही राजकारणी पुरुषांच्या दृष्टीनें कांहीं अवल-  
प्रत मसलत नव्हे. साम, दान, भेद, इत्यादि  
युद्धेतर सौम्य उपाय आहेत ते आम्ही प्रथम  
चालवून पाहातो. तोंपर्यंत आपणही सुतक  
फिटून शुद्ध व्हाल. मग देवतांना वंदन करून,  
स्वस्तिवाचन करून, ब्राह्मणांकडून अग्नींत होम  
देऊन, ब्राह्मणांची पूजा करून व त्यांची  
आज्ञा संपादून आपण विजयार्थ बाहेर पडावें.  
कारण, जोंपर्यंत कोणाही राजाला अशौच  
आहे तोंपर्यंत त्यानें रणांत शिरूं नये किंवा  
अस्त्रप्रयोगही करूं नये, अशी वृद्धांची आज्ञा  
आहे. आमच्या मते आपण प्रथम सामानें किंवा

१ भीष्म हे सत्यवतीचे सापत्न पुत्र व विचित्रवीर्य  
व चित्रांगद हे तिचे शतनूच्या घरांत आल्यावर  
सख्खे पुत्र.

दानानेच त्याला गप्प कराल. तितकेंच न साधलें तर भेदानें, आणि हे सारेच उपाय हुकले तर पराक्रम करून मारणें हेंही आपणाला कठीण नाही. इंद्रानें शंभराला ज्याप्रमाणें तेव्हांच चिरडून टाकलें त्याप्रमाणें आपणही यास केव्हांच चिरडाल. त्याची कथा काय !

भीष्म म्हणाले:—हे राजा युधिष्ठिरा, असें आहे कीं, आणीबाणीचे प्रसंगीं विशेष जाणत्या लोकांचा व त्यांतूनही वयोवृद्धांचा उपदेश ऐकावा. तेव्हां हें तत्त्व ध्यानांत आणून मी माझ्या मंत्र्यांचे सांगीप्रमाणें युद्धाचा विचार तूर्त सोडून दिला. माझे मंत्री राजकार्य-कुशलच होते. त्यांनीं तत्काल उत्तम उत्तम उपाय चालू केले. प्रथम शहाण्या शहाण्यांच्या विचारास आलें त्या त्या रीतींनीं साम, दाम, इत्यादिकांचीं बोलणीं लावून त्या उग्रायुधाला वाटेवर आणण्याचा उपाय केला. परंतु, खराखुराच नीचबुद्धि तो ! तो असल्या उपायांनीं कशाचा वळणावर येणार ? त्यानें कांहीं न ऐकतां घमैंडीतच आपल्या हातांत असलेलें सुदर्शनासारखें तें जाज्वल्य चक्र आम्हांवर फेकलें. परंतु, चमत्कार काय सांगावा कीं, तें तत्काल परत फिरलें. कारण, त्या पातक्यानें दुसऱ्याची स्त्री हरण करण्यासारख्या नीच हेतूनें तें सोडलें असतां, तें चालवें कसें ? बाकी त्याचें तें चक्र त्यानें गुरूनें सांगितलेली मर्यादा सोडून जेव्हां भलत्याच कामीं सोडलें तेव्हांच तें फुकट गेलें, असें मी समजून चुकलों होतो. तसेंच भल्या-भल्यांनीं त्या दुष्टाची त्याच्या या कृतीबद्दल निंदा केली असल्यामुळें तो आपले कर्मानेच मेला आहे, हेंही मी समजून होतो. तथापि, लोकाचाराप्रमाणें माझे सुतक फिटल्यावर मी विप्रांकडून आशीर्वाद संपादून धनुष्यबाण घेऊन रथांत बसून शहराबाहेर पडून शत्रूंशीं भिडलों. नंतर हातझोबीला घेऊन एखाद्या

बेहोष झालेल्या माणसाप्रमाणें शत्रूचा व माझा सतत तीन दिवस अंगबल व अस्त्रबल यांचा झगडा सुरू राहिला. तो इतका भयंकर कीं, त्याला एक देवासुरांचेच युद्धाची उपमा योग्य. अखेरीस मी माझ्या अस्त्रतेजानें अगदीं भाजून काढिला, तेव्हां, हे धर्मा, तो इतका शूर खरा, तथापि, प्राण सोडून माझ्या समोरच तेथल्या-तेथेंच रणांगणांत पडला. इतक्या अवकाशांत म्हणजे नीप राजा व हा उग्रायुध हे नाहीसे होत आहेत तो पृथत राजा हा कांपिल्य नगरीला येऊन पोचला; व त्यानें आपलें वडिला-जित जें अहिछत्र नगरीचें आसपासचें राज्य तें सर्व काबीज केलें. हा पृथत म्हणजे द्रुपदाचा बाप. हा तेव्हां माझ्या तंत्रानें वागत असे. याचें हें राज्य पुढें अर्थातच द्रुपदाकडे आलें. परंतु, कांहीं कालानें अर्जुनानें बाहुबलानें द्रुपदाला रणांत जिंकून कांपिल्य नगरी-सकट तो सर्व अहिछत्र प्रांत द्रोणाला अर्पण केला. विजयी द्रोणांनीं शिष्याच्या त्या देणगीचा सादर स्वीकार तर केलाच; पण, त्यांतून कांपिल्यनगरी त्यानें द्रुपदाला परत दिली, ही गोष्ट तुला ठाऊकच आहे. हे धर्मा, याप्रमाणें मी तुला ब्रह्मदत्त, द्रुपद व वीर उग्रायुध यांच्या वंशांची सविस्तर हकीकत सांगितली.

धर्मराजा विचारतो, 'हे गांगेया; तुम्ही पूजनीया म्हणून जी पक्षिणी सांगितली ती बहुत दिवस ब्रह्मदत्ताच्या घरांत राहात असून असल्या थोर राजाच्या ज्येष्ठ पुत्राचे डोळे फोडून त्याला आंधळें करणें असलें वाईट काम तिनें कशासाठीं केलें ? तसेंच पांखराचा तो एवढा स्नेह राजाशीं कसा पडावा, हेंही मला एक गूढच आहे. तेव्हां या कामीं सर्वकची हकीकत सांगून आपण माझा संशय दूर करा.

भीष्म म्हणतात:—ठीक आहे. यासंबंधांत ब्रह्मदत्ताचे घरीं कोणकोणत्या गोष्टी कसकशा

घडल्या, तें सर्व मी तुला सांगतों तें ऐक. हे राजा, ब्रह्मदत्ताच्या घरांत एक चिमणी बहुत दिवस घरें करून होती. ही चिमणी मोठी देखणी होती; हिचे पंख शुभ्र असून हिचें डोकें लाल होतें व पाठ आणि पोट यांचा रंग कबरा होता. हिची आणि ब्रह्मदत्ताची फारच गट्टी जमली. ती इतकी की, ती त्याची एकजातीची प्रियसखीच म्हणावी. राजवाड्यासारख्या उत्तम स्थळीं तिनें घरें केलें होतें. तेथून ती रोज दिवसास बाहेर जाऊन समुद्रतीर, डबकीं, सरोवरे, नद्या, पर्वत, लताकुंज, बनें, बागा, कल्हारपुष्पांच्या सुवासानें भरून गेलेले, प्रसन्न दिसणारे, कमोद, कमळें इत्यादिकांचे पराग उडून ज्यांचे आसपासची हवा सुगंधमय झाली आहे, व जेथें कारंडव पक्षी ओरडत आहेत व हंस आणि पाणबदके यांचे शब्द चालू आहेत अशा तलावांचे कांठीं चरून फिरून रात्र पडण्याचे वेळेस कांपिल्य नगरींत जात्या ब्रह्मदत्त राजाच्या राजमंदिरास परत येई. आल्यावर रात्री मग स्वस्थपणीं आपण दिवसास फिरावयास गेलेल्या नानास्थलीं ज्या ज्या आश्चर्यकारक वस्तु पाहिल्या असतील किंवा गोष्टी अवलोकनांत आल्या असतील त्यांसंबंधीं ही चिमणूबाई राजाशीं चटामटा गोष्टी करीत बसे. असा क्रम चालला असतां त्या ब्रह्मदत्त राजाला, हे राजव्याघ्रा, एक पुत्र झाला. याचें नांव सर्वसेन असें ठेविलें होतें. याच सुमारास त्या पूजनीयेनेंही एक अंडें घातलें व तत्पूर्वीं तिनें आपल्या कोठ्यांत एक घालून ठेविलें होतें, तें या वेळीं फुटलें. फुटतांच त्यांतून एक मांसाचा लोळा बाहेर आला. या लोळ्याला हात, पाय व चोंच इतके अवयव आले होते. चोंचीचा वर्ण पिंगट होता. अजून

डोळे नव्हते ( उघडले नव्हते ), मग पुढें कांहीं दिवसांनीं त्याला डोळे आले व नंतर थोड्या थोड्या पांखरड्या फुटूं लागल्या. राजपुत्रही दिवसेंदिवस वाढूं लागला. चिमणीही आपलें पिलूं व राजाचा पुत्र यांवर सारखीच प्रीति करूं लागली. रोज संध्याकाळीं चरून परत येतांना ती आपला पुत्र व राजपुत्र ह्यांसाठीं म्हणून दोन अमृततुल्य मधुर फळें चोंचींत धरून घेऊन येत असे. तीं फळें खाऊन दोघेही छोकरे खूष होऊन जात. त्या पोराना तीं फळें खाण्याची चटकच लागून गेली. चिमणी बाहेर उडून गेली म्हणजे राजपुत्राची जी दाई असे ती त्या चिमणीच्या पिलाला बाहेर घेऊन राजपुत्राला त्याशीं खेळवीत असे. एक दिवस दाईच्या नजरेआड राजपुत्रानें खेळ खेळतां तें चिमणीचें पिलूं मानेला बळकट आंवाळून धरिलें. राजपुत्राची चिकाटी मोठी बळकट, कांहीं केल्या सुटेना. मोठ्या मुष्किलीनें त्याची ती मूठ उकलावी लागली. बाकी उकलून कांहीं फळ झालें नाहीं. चिमणीच्या पोरानें अगोदरच प्राण सोडले होते, मग तें आ वांसून व गतप्राण होऊन पडलेलें चिमणीचें पोर पाहून राजाला फार दुःख झालें. विशेषतः आपल्या मुलाचे हातून असली गोष्ट झाली, हें ध्यानांत येऊन त्यानें ढळढळ अश्रु ढाळिले; व जिच्या उपेक्षेमुळें राजपुत्राचे हातून असलें कृत्य झालें त्या दाईची त्यानें यथास्थितच खरड काढिली. तथापि झाली गोष्ट ती झालीच. राजा त्या दिवशीं सायंकाळपर्यंत त्या पोराबद्दल विलाप करीतच राहिला. इतक्यांत ती विचारी चिमणी रानभर फिरून नित्याप्रमाणें दोन फळें घेऊन ब्रह्मदत्ताचे घरीं आली. घरीं येऊन पाहोते तों आपला पोटचा गोळा पंचमहाभूतांनीं सोडल्यामुळें (मेल्यामुळें) मोठ्या शोचनीय स्थितींत पडला आहे. त्याला

पाहातांच प्रथम तिला मूर्छा आली. नंतर कांहीं वेळानें शुद्धीवर आल्यावर बापडी अतीच विलाप करूं लागली. ती म्हणाली, ‘ बाळ, कायरे हें ! मी आज बाहेरून आलें व तुला साद घातली तथापि तूं आपल्या गोड व अस्फुट वाणीनें लाडके लाडके चिव चिव शब्द करीत करीत मजभोंवतीं रांगत रांगत कसारें येत नाहीस ? रोजचा पाठ म्हटला म्हणजे मी घरीं येतें आहे तों तुला भूक लागली असल्यामुळें तूं आपलें तें पिवळें पिवळें चंचुपुट आंतील लाल टाळें दृष्टीस पडे इतकें ताणून भक्ष्यग्रहणार्थ मजपाशीं यावयाचा, परंतु, आज इतका वेळ जाऊनही कसा येईनास ? मी रोज बाहेरून आलें म्हणजे तूं चिवचिव करीत मजकडे आलास म्हणजे तुला पंखांखालीं घेऊन मी प्रेमभरानें ओरडत असें, पण आज मुळीं तुझें तें गोड चिवचिवणेंच ऐकूं येत नाहीं, हें काय ? बाळरे, आज मी रानांतून परत निघालें तेव्हां मला आशा वाटत होती कीं, मी येतें तों आपले पंख हालवीत आपलें तोंड उघडून “आई मला तहान लागली पाणी दे” म्हणून तूं मजपुढें येशील; परंतु, ती माझी आशा सर्वथा विफल झाली. कारण, तूं मुळींच रस्ता धरिलास ! आतां काय करूं ? ’

याप्रमाणें बहुत प्रकारें विलाप करून ती राजाला म्हणाली, ‘ हे राजा, तूं यथाशास्त्र अभिषेक करून गादीवर आलेला राजा आहेस, कोणीतरी नव्हस. अर्थात् तुला आपल्या सनातन धर्माची चांगलीच माहिती असली पाहिजे, असें असून आपल्या दाईच्या हातीं माझ्या पोराचा घात करविलास हें काय ? तुझ्या पोरच्यानें माझें लेकरूं मान मुरगळून मारिलें. ही गोष्ट हे क्षत्रियाधमा, तुझ्या घरांत संभवली कशी, हें मला नीट सांग. तूं एवढा मोठा शहाणा म्हणवितोस तर “ शरण आलेला,

भुकेलेला, शत्रूंनीं वेढलेला व बहुत दिवस आपल्या घरीं राहिलेला अशांचें रक्षणच केलें पाहिजे; जे न करितील ते निःसंशय कुंभिपाक नरकाला जातील. ” अशा अर्थाची जी अंगिरसाची श्रुति आहे ती तुझ्या कानीं नाहीं काय ? अरे, असल्यांची उपेक्षा करणारे अधमाचे हातून देवांनीं हविर्भाग कसा घ्यावा, किंवा पितरांनीं स्वधाकार तरी कसा घ्यावा ? ” हे राजा, याप्रमाणें राजाशीं बोलून ती चिमणी अतिशोकानें केवळ अविचारी बनली; व त्या तडाक्यांत तिनें त्या अल्पवयी राजकुमाराचे डोळे आपल्या पायाच्या नख्यांनीं ओरबाडिले. पुढें ते डोळे फुटले. याप्रमाणें राजपुत्राला आंधळा करून ही चिमणी आकाशांत उडून जाऊं लागली. इतक्यांत राजानें आपल्या पुत्राची झालेली स्थिति पाहून तिला म्हटलें कीं, हे कल्याणि, माझ्या पुत्राचे तूं डोळे फोडलेस, फार चांगलें केलेंस, आतां भिऊं नको. आतां तर तुझें दुःख दूर झालेंना ? मग आतां कां येथून जातेस ? जाऊं नको. तुझें मन शांत झालें; तर आतां परत फीर. आपली मैत्री पूर्वीं होती तशीच चालूं दे, तिचा नाश होऊं देऊं नको; पूर्वीं जशी होतीस तशीच सुखानें माझे घरांत रहा. चल परत फीर, आणि चैनीत अस. माझ्या पोराला तूं क्लेश दिलेस म्हणून माझा कांहीं तुझ्यावर राग नाही. तूं माझी मैत्रीण आहेस. देव तुझें कल्याण करो. तूं माझ्या पोराचे डोळे फोडलेस खरे, पण त्यांत जें ओघाला आलें तेंच तूं केलेंस; त्यांत तुझ्याकडे काय दोष ?

पूजनीया म्हणाली:—हे राजसिंहा, तूं जरी किती शांतीच्या गोष्टी सांगितल्यास तरी आपलेवरून जग ओळखावें, अशी म्हण आहे त्याप्रमाणें मला नुकताच पुत्रशोकाचा अनुभव आला आहे, त्यावरून तुझ्या प्रिय पुत्राच्या



स्थितीबद्दल तुला किती दुःख होत असेल, याची कल्पना मला तू न सांगतांही पुरापर आहे. या-करितां तुझ्या पुत्राचे डोळे फोडण्यासारखें दुष्कृत्य करून पुन्हा मी तुझ्याच घरांत दृष्टीसमोर राहावें, ही गोष्ट मला संमत नाही, शिवाय मी जें म्हणतें या म्हणण्याला शुक्राचार्यांच्या नीतींतील वचनांचा आधार आहे. तीं वचनें मी म्हणून दाखवितें तीं ऐक. तीं अशीं:—

१ कुमित्र, कुदेश, कुराजा, कुमैत्री, कु-पुत्र व कुमार्या यांस दुरूनच टाळावीं. कारण, कुमित्राचे ठिकाणीं खरा स्नेह होत नाही; कुमार्यांचे ठिकाणीं सुखभोग होत नाही; कु-पुत्राचे हातून पिंड मिळत नाही; कुराजाच्या अमलांत सत्याला थारा नाहीसा होतो. जेथें खोट्या माणसाशीं स्नेह आहे तेथें स्वऱ्या विश्वासाला आधार नसतो; कुदेशांत उप-जीविकेची मारामार पडते; राजा दुष्ट असला म्हणजे प्रजेच्या जीवाला सदा धाकधूक असते; व पोटाचा पोर वाईट निघाला म्हणजे आई-बापांना सर्व बाजूंनीच सुखाचा अभाव होतो.

२ जो नीच मनुष्य आपल्यावर अपकार करणाऱ्याही मनुष्यावर एखाद्या अनाथ दुबळ्याप्रमाणें भार टाकतो, त्याचा लौकरच नाश होतो.

३ ज्याचा आपल्या ठिकाणीं विश्वास नाही त्यावर मुळींच विश्वास ठेवू नये; व ज्याचा विश्वास आहे अशावर तरी फाजील विश्वास टाकू नये. कारण, प्रसंगवशात् विश्वासू माणसालाच दगा करण्याची बुद्धि झाली तर तो आपणास मुळापाळांसकट उखडून काढील.

४ जो मूर्ख मनुष्य राजाचे सेवक किंवा ज्याचे बीजाविषयीं घोंटाळा आहे, असल्या

जातीवर विश्वास ठेवून वागतो त्याचा जीव धोक्यांत आहे, असें समजावें.

५ मी राजाचे मर्जीतला आहे, मला कसलें भय आहे, असें कोणीही मानू नये. कारण राजेसाहेबांची मर्जी खप्पा होऊन मनुष्य मुंगळ्यासारखा केव्हां चिरडला जाईल याचा कांहीं विश्वास नसतो.

६ शहाण्या मनुष्याची गोष्ट अशी आहे कीं, ज्याप्रमाणें एखादी कोमल अल्पवल्ली एखाद्या महावृक्षाच्या कवेत राहूनच त्याला पाडिते, त्याप्रमाणें तो वरून नरमपणा दाखवून व अंग चोरून वागूनच शत्रूला पालथा पाडितो.

७ ज्याप्रमाणें मुंग्यांचें वारूळ प्रथम झाडा-चे बुडांत उत्पन्न होतें, तेव्हां तें मऊ, ओलें व अल्प असतें, परंतु पुढें त्या वृक्षाचीं मुळें खाऊन टाकितें; त्याप्रमाणें लबाड शत्रु प्रथम बाह्यांगीं, मोठा दुर्बळ, मृदु व आर्द्र (स्नेहल) असा दिसून हळूहळू आपल्या पोटांत शिरतो आणि अखेरीस आपला घात करितो. हे राजा, राजकीय विषयांत भले भले दगलबाजी करितात. यांचें प्रसिद्ध उदाहरण म्हणजे इंद्राचें. यानें मुनींच्या समक्ष, मी तुझा नाश करित नाही, असा नमूचीला विश्वास देऊन अखेर पाण्याच्या फेंसाखालीं आपलें वज्र दडवून त्याला नुसतें फेंसानें ठार केलें. सारांश, वैरी म्हटला म्हणजे तो, मनुष्य निद्रिस्त आहे हें पाहात नाही. तो निशंत आहे किंवा गैरसावध आहे, हें पाहात नाही; आणि वाटेला त्या उपायांनीं—विषप्रयोगानें म्हणा, आग घालून म्हणा, किंवा साधल्यास शस्त्रानें किंवा ठकबाजीनें—त्याचा घात करितो, व त्याची मुळी शिल्लक राहिल्यास अंकुरित होऊन पुन्हा आपणास त्रास देईल, यास्तव त्याचा उच्छेद करितो, कांहींही शिल्लक उरू देत

१ ओळखीचा चोर जिवानिशीं मारो किंवा जिवंत सोडीना, ही म्हण याच अर्थाची आहे.

नाहीं. कारण, शत्रुशेष, ऋणशेष व अग्नि-  
शेष ही पुनरपि वाढतात. यास्तव शहाण्याने  
तीं शिळक ठेवू नयेत, हा दाखला त्यांचे  
ध्यानांत असतो. लबाड शत्रु आपले बरोबर  
हंसतो, अघळपघळ बोलतो, एका बैठकीवर  
बसतो व एका ताटांत जेवतो देखील. पण  
हैं सर्व करितांना त्याची पापबुद्धि कायम  
असते. एकदां शत्रुत्व उत्पन्न झालें म्हणजे  
मग तो शत्रु आपला शरीरसंबंधी असला  
तरीही त्यावर विसंबू नये. कारण, इंद्रानें  
लढाईत प्रत्यक्ष आपला सासरा म्हणजे  
बायकोचा बाप जो पुलोमा त्याला ठार केलें.

८ मनांत वैरभाव ठेवून जो मनुष्य वरवर  
गोड बोलतो त्याच्याजवळ जाणें म्हणजे हरि-  
णानें फांसेपारध्याजवळ जाण्यापैकींच आहे.  
ज्याच्या मनांत आपल्याविषयी काळें आलें  
असल्या बलाढ्य शत्रूच्या आश्रयाला कधीही  
राहूं नये. कारण, नदीचा वेगवान् ओघ कांठाच्या  
वृक्षाला ज्याप्रमाणें खणून काढितो त्याप्रमाणें  
तो आपला नाश करितो. शत्रूपासून जरी  
आपण उदयास आलों असलों तरी त्यावर  
भरंवसा ठेवू नये. कारण, ज्याप्रमाणें एखादा  
किडा पंख फुटल्याच्या आनंदानें वर उडी  
मारावयास जातो, परंतु इतक्यांत पक्ष्यांची नजर  
त्याजवर जाऊन ते त्याला ठार मारतात, त्या-  
प्रमाणें अवस्था होते.

याप्रमाणें शुक्राचार्यांनी आपल्या नीतींत  
ही जीं अनेक बोध-वाक्यें लिहिली आहेत, तीं,  
हे भूपाळा, ज्या मुज्ञ पुरुषाला आपण सुरक्षित  
नांदावें अशी इच्छा असेल त्यानें मनांत धरावी.  
मी तर तुझ्या साक्षात् पुत्राचे डोळे फोडण्या-  
सारखें अतिदारुण पाप केलें आहे, तेव्हां  
आतां तुझ्यावर विश्वास ठेवून तूं म्हणतोस तसें  
तुझ्या घरांत स्वस्थ राहाणें माझ्या हातून

होणार नाहीं. ” असें म्हणून ती चिमणी आका-  
शांत उडून गेली.

भीष्म म्हणतात:—हे युधिष्ठिरा, राजा ब्रह्म-  
दत्त व पूजनिया चिमणी यांचा घडलेला वृत्तांत  
मीं तुला सांगितला. आतां तुला श्राद्धाची  
माहिती पाहिजे आहे तर तिजसाठीं पूर्वीं सन-  
त्कुमारांनीं मार्कंडेयाचे प्रश्नावरून त्याला एक  
जुनाट इतिहास सांगितला होता, तो मी तुला  
सांगितों. आपले हातून पुण्य घडावें व आपणांस  
श्राद्धाचें फल मिळावें, अशा उद्देशानें वागणारे  
योगनिष्ठ ब्रह्मचारी जे गालव, कंडरीक व ब्रह्म-  
दत्त, या तिघांचे सातवे जन्मांत हा इतिहास  
घडलेला आहे.

## अध्याय एकविंशत्वा.

### श्राद्धमाहात्म्य.

मार्कंडेय म्हणतात:—हे भीष्मा, श्राद्धाचें  
माहात्म्य तुला किती म्हणून सांगूं? अरे, इह-  
लोकीं विद्या, धन, कुल, सत्पुत्र, पशु, आदि-  
करून जीं सुखस्थितीचीं साधने आहेत तीं तर  
श्राद्ध केल्यानें प्राप्त होतातच. पण, त्याहूनही  
अधिक श्रेष्ठ जो मोक्ष किंवा ब्रह्मेक्य तेंही या  
श्राद्धविधीनें प्राप्त होतें. असें या श्राद्धाचें अनु-  
त्तम फल आहे व तें ब्रह्मदत्ताला सात जन्मांत  
मिळत गेलें. त्या योगानेंच त्याची बुद्धि दुर्मा-  
र्गापासून हळूहळू आपोआप परावृत्त होऊन  
सन्मार्गाकडे लागली व इतरांचीही लागते.  
याकरितां मी तुला श्राद्धाचा विधिसर्व सांगितों.  
हे निष्पापा, पूर्वकालीं कांहीं ब्राह्मणांनीं इतर  
धर्मविधींना धाव्यावर बसवून गोहत्यादिकरून  
केवळ श्राद्ध मात्र केलें होतें, पण तेवढ्यानेंच  
त्यांना अत्युत्तम फळ प्राप्त झालें. तें कसें, तें सर्व  
तुला सांगितों ऐक.

मागे भगवान् सनत्कुमार मला दिव्य दृष्टि देऊन अंतर्धान पावले, हे मी सांगितलेंच आहे. ते गेल्यावर या दृष्टीच्या बलाने मी सनत्कुमारांनीं पूर्वी निर्दिष्ट केलेले सात ब्राह्मण कुरुक्षेत्रांत धर्मश्रद्धेने पितृश्राद्ध करित आहेत, असें प्रत्यक्ष पाहिलें. या सातांचीं नांवें:—वाग्दुष्ट, क्रोधन, हिंस्र, पिशुन, कवि, खसृम व पितृवर्ति, अशीं होती; व या नामानुरूपच त्यांची कृति होती. हे सर्व कौशिक विश्वामित्राचे पुत्र होते, व गार्ग्यमुनीचे शिष्य होते. त्यांचा पिता विश्वामित्र त्यांना शाप देऊन वेगळा सरला, तेव्हां ते सातही बंधु गार्ग्याच्या घरीं जाऊन शिष्यवृत्ति पतकरून ब्रह्मचर्यव्रतानें राहिले. तेथें असतां त्यांच्या गुरूची न्यायानें संपादिलेली अशी एक सुंदर दुभती एकरंगी गाय होती; तिला गुरूच्या आज्ञेवरून एक दिवस ते वनांत घेऊन चालले होते. या गाईचें वांसरूंही तिचेसारखेंच एकवर्णीं होतें. या धेनुवत्संना घेऊन जात असतां वाटेत त्यांना अतिशय भूक लागली व पोरवय आणि अज्ञान यामुळे या गाईवरच आपली भूक भागवावी, अशी दुष्टबुद्धि त्यांचे मनांत उपजली. त्यावेळीं कवी<sup>१</sup> व खसृम या दोघांनीं ‘असें करूं नका’ म्हणून आपल्या बंधूंशीं याचना केली. परंतु, ते निवृत्त होतना. त्यावेळीं त्यांतील पितृवर्ति<sup>२</sup> म्हणून जो भाऊ होता तो नित्य श्राद्ध करणारा होता. तो धर्माचे ठिकाणीं स्थिरबुद्धि असल्यानें रागानें आपल्या बंधूस म्हणाला, ‘बाबांनो, या सुंदर गाईला अवश्य मारावयाचीच असें ठरत असेल तर त्यांत माझी एक गोष्ट तरी लक्षपूर्वक ऐका. ती ही कीं, गाय मारणेंच तर ती पितृश्राद्धार्थ म्हणून मारावी. असें केलें असतां या गाईचाही धर्मकार्यांत विनियोग होऊन

तिला सद्गति मिळेल व आपणही पित्रार्चन केल्यानें अधर्म केल्यासारखें होणार नाही.’

ही त्याची मसलत सर्वांना पटली. मग त्यांनीं गाईचें प्रोक्षण (वध) करून व ती पितरांना अर्पण करून मग तिजवर यथास्थित ताव मारिला. नंतर, तळिराम गार करून गुरुगृहीं परतले व तिचें तें वांसरूं पुढें करून गुरूला म्हणाले, “गाय वाघानें खाल्ली; वांसरूं तेवढें राहिलें आहे, हें संभाळा.” गुरु बिचारानिष्कपट होता. त्याला ती गोष्ट खरी वाटली व त्यानें ‘बरें आहे,’ म्हणून तो वत्स आपले ताव्यांत घेतला.

याप्रमाणें त्या सर्व ब्राह्मणांनीं आपल्या गुरूला खोटीच गोष्ट सांगून ठकविलें. पुढें ते सर्वहीजण आयुष्य संपतांच मेले. मेल्यानंतर पुढील जन्मीं ते सातहीजण पूर्वजन्मींच्या क्रूरकर्मांमुळे हिंस्र, आपल्या गुरूशीं नीचपणा केल्यामुळे उग्र व हिंसादिकर्मांत आनंद मानणारे असे होऊन पारध्याचे पोटीं जन्मास आले. ते मोठे बळकट व दिलदार होते. पूर्वजन्मीं त्यांनीं पितरांचें धर्मबुद्धीनें अर्चन केलें व गोवधही पितरांचेच उद्देशानें केला होता. यामुळे त्यांस चालू जन्मांत पूर्वजन्मींची स्मृति राहिली होती. यामुळे ते जरी दशार्ण देशांत या जन्मीं व्याधासारख्या क्रूर कुळांत उत्पन्न झाले होते तरी ते मोठे धर्मनिपुण असून निर्लोभ व सत्यप्रिय होते. ज्या कुळांत आले तेथील कर्म<sup>३</sup> ते करीत खरें, पण तें केवळ प्राणरक्षणापुरतेंच तेवढें केलें म्हणजे बाकीचा काल ते आत्मानुसंधानांत घालवीत असत. या जन्मीं त्यांचीं नांवें पुढीलप्रमाणें होती. तीं:—निर्वैर, निर्वृत्ति, शांत, निर्मन्यु, कृति, वैधस व मातृवर्ती. त्यांचीं कर्मे या संज्ञानुरूपच होती, एकंदरीत ते व्याध होऊन परमधार्मिक होते.

१ म्हणजे परलोकाची भीति मानणारा. २ म्हणजे स्वर्गेंला करणारा. ३ म्हणजे पितृच्छि.

१ सहज कर्म कौतये सदोषमपिन त्यजेत् ।

(अ. १८, श्लो. ४८.)

जातीचें हिंसाकर्म ते करीत खरें, पण बाकीचा वेळ आपल्या वृद्ध मातापितरांचे पूजनांत व संतोषांत घालवीत. पुढें त्यांचीं मातापितरें यथाकाल मरण पावली, त्या वेळीं त्यांनीं आपल्या हातांतलीं शिकारीचीं धनुष्यें टाकून देऊन वनांतच देहत्याग केला.

पुढील जन्मीं ते रम्य कालंजर पर्वतावर मृगयोनींत उत्पन्न झाले. मृगयोनींत उत्पन्न होण्याचें कारण ते व्याधयोनींत असतांना श्रापदांच्या अंतःकरणांत भय उत्पन्न करणारें कर्म करीत असल्यानें जेथें चित्तांत सदा धसधस राहिल असला हळू वृत्तीचा जन्म त्यांस प्राप्त झाला. परंतु, त्यांनीं पितृपूजनादि शुभकर्म केलीं असल्यामुळे याही जन्मीं त्यांना पूर्वजन्माचें स्मरण होतें. या जन्मीं त्या मृगांचीं नांवें उन्मुख, नित्यवित्रस्त, स्तब्धकर्ण, विलोचन, पण्डित, घस्मर व नादी, अशीं होती. ते जरी पशूच्या जन्मास आले होते, तथापि आपण पूर्वीं कोण होतो व या नीच योनीला कां आलों, ही गोष्ट सतत त्यांच्या डोळ्यांसमोर असल्यानें ते या जन्मांत क्षमाशील, निर्वैर व निस्त्रीक होते. त्या सर्वांची राहाणी एक तऱ्हेचीच होती. ते कधीं गैरकर्म करीत नसत व केवळ योग्यांप्रमाणें अंतर्निष्ठ राहून वनांत विहार करीत. ते फक्त पोटाला अल्पसें भक्ष्य देत व पाणी मुळींच पीत नसत. या प्रकारची त्यांनीं कडक तपश्चर्या चालविली. या स्थितींत असतांना त्यांचीं जीं पावलें भुईवर उमटलीं, तीं, हे राजा, कालंजर गिरीवर अद्यापि तशींच्या तशींच दृष्टीस पडतात.

याप्रमाणें शुभ कर्म करीत असल्यामुळे व अशुभ कर्माचा सर्वथा त्याग केल्यानें त्यांना अधिक शुभ योनीची योग्यता प्राप्त झाली व पुढील जन्मीं ते शरद्वीप नामक शुभ देशांत सातहीजण जलांत राहाणारे चक्रवाक पक्षी

झाले. चक्रवाक पक्षाची कामित्वाविषयी मोठी ख्याति आहे. तो आपल्या मादीला सोडून क्षणभरही राहाण्याची वेळ आल्यास व्याकूळ होतो. पण हे बंधु अशा योनींत येऊनही त्यांनीं मैथुनाचा मार्ग मुळींच न पतकारितां केवळ ब्रह्मचर्यच पतकरलें. ते एखाद्या ऋषीप्रमाणें आपला वेळ मननांत घालवीत. या पक्षियोनींत त्यांचीं नांवें:-निस्पृह, निर्मम, क्षांत, निद्वंद्व, निष्परिग्रह, निर्वृत्ति व निभृत, अशीं होती. ते सर्वही पक्षी मोठे शुभलक्षणी व धर्मानें चालणारे होते. शेवटीं त्यांनीं आहार वर्ज करून तपाचरणानें नदीकांठीं प्राण सोडले.

पुढील योनींत ते सातहीजण मानससरोवरांत फिरणारे असे हंस झाले. ते सर्वही एकाच जोडप्यापासून झाले. त्या सर्वांनाही पूर्वस्मरण होतेंच. येथेही ते मोठे धर्मनिष्ठ व ब्रह्मचारीच होते. पूर्वीं ब्राह्मणजन्मांत आपल्या प्रत्यक्ष गुरूला त्यांनीं ठकविलें असल्यामुळे त्या दोषानें ते अनेक जन्मांच्या गिकांत सांपडून नीच योनींत उत्पन्न झाले. तसेंच त्यांनीं आपल्या पोटासाठीं तर खरीच, तथापि, पितृश्राद्धाचें नांव करून हिंसा केली होती, एवढ्यानें त्यांना पूर्वजन्मीचें ज्ञान राहिलें व जन्मही तिर्थग्योनींतच पण एकाहून एक अधिक उंची अशा योनींत आले. या हंसयोनींत त्यांचीं नांवें-सुमना, शुचिवाक्, शुद्ध, पंचम, छिद्रदर्शन, सुनेत्र व स्वतंत्र.

यांपैकी पांचवा म्हणजे प्रथम जन्मीं जो कवि नामक होता, तो सातव्या जन्मांत पांचिक ही संज्ञा पावला; सहावा जो खसृम

१ पश्चादि योनींत पूर्वजन्माची पुष्कळांना स्मृति असते. याची उदाहरणें अजून दृष्टीस पडतात. पुष्कळदां सर्प हे अंगांत संचारून मी ब्राह्मण होतो, मी शूद्र होतो, असे स्पष्ट बोलतात. कित्येक जुने शनवार व एकादशीचे उपास करतांना ग्राह्यांत आहेत.

तो कण्डरीक नांवांनै प्रासिद्ध झाला; व सातवा ब्रह्मदत्त या नांवांनै. त्यांनीं साती जन्मांत जें तपाचरण केलें, जो योगाभ्यास केला, त्यांना कल्याणकारक अशी जी पूर्वजन्मींची स्मृति होती व अगदीं पहिल्या जन्मीं गुरुगृहीं त्यांनीं जें वेदाध्ययन केलें होतें त्याचा संस्कार, या सर्व संस्कारांच्या प्रभावानें ते जरी संसारांत पडले होते तरी ते सर्वही पक्षी अंतरीं ब्रह्मवेत्ते असून ब्रह्मचर्यानेच राहात व योगस्थ वृत्तीने वनांत विहार करीत. एकदां ते सर्वही हंस जुटीनें एकत्र फिरत असतां पुरुकुलोत्पन्न नीपांचा राजा बिभ्राज हा तेथें आला. हा शरीरानें मोठा शोभायमान, पराक्रमी व श्रीमंत होता. तो आपल्या स्त्रियांस बरोबर घेऊन त्या वनांत शिरला. तो राजा असल्या थाटानें व वैभवांनै आलेला पाहून त्या सातांपैकीं स्वतंत्र नांवाचा जो हंस होता, त्याला आपण या राजासारखें व्हावें, अशी इच्छा उत्पन्न झाली. तो म्हणाला, 'मी आजपर्यंत उपास कर करून अगदीं थकलों व इतकी तपश्चर्या केली, पण कांहीं फळ मिळालें नाहीं. तर माझ्या पदरीं तपाच्या किंवा नियमांच्या योगानें सांचलेलें जर कांहीं पुण्य असेल तर त्याच्या बळानें मला या राजासारखी सुखास्थिति प्राप्त व्हावी, असें मी इच्छितों.'

## अध्याय बाविसावा.

—:—

### चक्रवाकवर्णन.

मार्कंडेय सांगतात:—भीष्मा, एकानें आपली राजा होण्याची इच्छा प्रदर्शित करितांच त्याच्या जोडीनें फिरणारांपैकीं दुसरे दोन म्हणाले कीं, फार ठीक आहे. तूं राजा होशील तर आम्ही तुझे हितचिंतक सचिव होऊं. त्यानें “बहुत बरें” असें म्हणून आपली वृत्ति योगपर केली, व तिघांनींही पुढील संकेता-

विषयीं परस्पर ठराव केले. तें पाहून शुचिवाक् नांवाचा त्यांचा बंधु स्वतंत्राला म्हणाला, ‘तूं ज्याअर्थी योगाभ्यास सोडून विशेषतः कामवासनेनें प्रेरित होऊन राजा होण्याची इच्छा करितोस, त्या अर्थी मी काय बोलतो तें ऐकून घे. तुझ्या इच्छेप्रमाणें तूं कांपिल्य नगरीचा खुशाल राजा हो आणि होशीलही, यांत संशय नाहीं. आणि हे दोघे तुझे बंधु तुझे सचिव होतीलच. पण ज्या अर्थी तुम्ही राज्यलोभानें योगाचरणांत व्यभिचार केलात त्या अर्थी तुम्हां तिघांना आमचा शाप आहे व तुमच्याशीं आम्ही भाषण करणें सोडून दिलें आहे.’

भावांनीं याप्रमाणें शाप देतांच ते तिघेही तत्काल योगभ्रष्ट होऊन गडबडून गेले; व पुन्हा आपल्या भावांची विनवणी करून त्यांनीं त्यांचा प्रसाद संपादन केला. तेव्हां त्या चौघांचेही संमतीनें सुमना नांवाचा बंधु त्यांना प्रसादयुक्त वचन बोलला कीं, आमचा शाप निरवधि नाहीं, तो लवकरच संपेल, हा विश्वास ठेवा. या जन्मांतून दूर झालां म्हणजे तुम्हांला पुन्हा मनुष्यजन्म प्राप्त होऊन योगाभ्यासाकडे तुमचें लक्ष लागेल. पैकीं या स्वतंत्राला प्राणिमात्राच्या भाषेचें ज्ञान होईल. आपण सर्वजण त्याचे फार आभारी आहों. कारण, याच्या कृतीमुळेच आपण पितरांच्या उद्देशानें प्रथम गाईचा वध करून मग तिचा स्वीकार केला. या कृतीनें आपले पितर तृप्त होऊन त्यांच्या प्रसादानें आपणाला योगाच्या साधनानें प्राप्त होणारें ज्ञान मिळालें. यासाठीं तुम्हां सर्वांचा शाप कांहीं काळानें पुरा होईल; व “सप्तव्याधा इत्यादि” जन्मांतरचे वृत्तांताचा ज्यांत

१ कौशिक पुलांच्या या चक्रवाकादि जन्मांची कथा ज्यांत संगृहित केली आहे असे श्लोक श्राद्धसमयीं म्हटले जातात, ते हे:—

( पुढें चालू. )

उल्लेख आहे असलीं वाक्यें तुमच्या कानीं पडून तुम्हांस पूर्ववत् योगासिद्धि प्राप्त होईल.

## अध्याय तेविसावा.

—:—

### हंसवर्णन.

मार्कंडेय सांगतात:—ते मानससरोवराचे तीरीं विहार करणारे पद्मगर्भ, अरविंदाक्ष, क्षीरगर्भ, सुलोचन, उरुबिंदु, सुबिंदु व हेमगर्भ, अशीं नांवें असलेले सातही हंस, जल आणि वायु भक्षण करून योगाभ्यासानें आपलें शरीर शुष्क करीत होते. राजा विभ्राज याची स्थिति थेट उलट होती. तो शरीरानें गलेलट्ट असून कामुक होता, व आपल्या स्त्रिया व भोगांगना बरोबर घेऊन इंद्र जसा नंदनवनांत शिरतो, त्याप्रमाणें मानससरोवरावरील वनांत शिरला, व तेथें हे पक्षी योगाभ्यास करण्यांत गुंतले आहेत असें त्यानें पाहिलें. हे पक्षी होऊन जर योगाभ्यास करितात, तर मी मनुष्य होऊन विषयासक्त राहाणें हें मोठेंच लज्जाकर आहे, असें वाटून हीच गोष्ट मनांत घोळीत घोळीत तो आपल्या नगरास परत फिरला. त्याला अणुह नांवाचा एक धार्मिक पुत्र होता. याला अणुह नांव पडण्याचें कारण अणु म्हणजे अत्यंत सूक्ष्म असेही धर्माचार साधण्याविषयी तो परम तत्पर असे, हें होय. याला जी स्त्री मिळाली होती तीही मोठी योगनिष्ठ, सद्गुणी, सत्यशील व सर्वथा पूज्यलक्षणांनीं युक्त अशी होती. ही स्त्री म्हणजे शुकाचार्याची कन्या जी कृत्वी ती. हे भीष्मा, ही कृत्वी म्हणजे बर्हिषद

( मागील पानावरून पुढें चालू. )

सप्तव्याधा दशारण्ये मृगाः कालजरे गिरौ ॥ चक्र-  
वाकाः सरोद्रोपे हंसाः सरसिमानसे ॥ तेपिजाताः कुरुक्षेत्रे  
ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥ प्रस्थिता दीर्घमध्वानं यूर्यकिमवरीदथा ॥  
अमूर्तानां च मूर्तानां पितृणाम् सीसतेजसा ॥ नमस्त्यामि  
सदा तेषाम् ध्यायिनाम् योगचक्षुषाम् ॥ ३ ॥

पितरांची कन्या जी पीवरी म्हणून पूर्वीं सन-  
त्कुमारांनीं मला सांगितली होती तीच; व त्या  
वेळींही ही मोठी सत्यपरायण, अजितेंद्रियांना  
अगम्य व स्वतः योगनिष्ठ असून योगनिष्ठा-  
चीच माता व योगनिष्ठाचीच पत्नी होईल  
म्हणून मी सनत्कुमारांच्या तोंडची पितृक-  
ल्पाची हकीकत सांगत असतां बोललोंच आहे;  
व त्याप्रमाणेंच ती झाली. असो; विभ्राज राजा  
घरीं येतांच त्यानें आपले प्रजाजन व ब्राह्मण  
यांस बोलावून स्वस्तिवाचन वगैरे करवून मोठ्या  
आनंदानें आपला पुत्र अणुह यास राज्यावर  
बसविलें; व स्वतः ते सहचारी हंसपक्षी मानस-  
सरोवराचे कांठीं जेथें आढळले होते तेथेंच  
तपश्चर्येसाठीं गमन केलें. तेथें गेल्यावर त्या  
सरोवराचे शेजारीच मोठी तीव्र तपश्चर्या आरं-  
भिली. त्यानें सर्व विषयवासना सोडून दिल्या,  
व अन्नपाणीही सोडून केवळ वायुभक्षण चालू  
ठेविलें. ही तीव्र तपश्चर्या करण्यांत त्याचा  
गूढ हेतु असा होता कीं, आपण या जन्मीं  
दृढ संकल्प करून त्याचे बळावर पुढील जन्मीं  
हे जे योगनिष्णात हंसबंधु आहेत यांपैकीं  
एकाच्या उदरीं येऊं. म्हणजे आपणांस अना-  
यासेंच योगप्राप्ति होईल. ही गोष्ट मनांत  
घेऊन त्यानें मोठ्या नेटानें तपश्चर्या आरंभिली,  
व आपलें तपस्तेज इतकें वाढविलें कीं, पाहा-  
णाराला तो सूर्यासारखा देदीप्यमान दिसूं  
लागला; व त्यानें प्रकाशित केल्यामुळें त्या  
वनाला व त्या सरोवरालाही तेव्हांपासून वैभ्राज  
असेंच नांव पडलें. इकडे त्या सात पक्ष्यां-  
पैकीं जे अखंड योगनिष्ठ होते, ते चार व जे  
पूर्वीं सांगितल्याप्रमाणें योगभ्रष्ट होते ते तीन

१ अथवा योगिनामेव कुले भवति श्रीमताम् । भ. गी.  
योग्यान्वा पुत्र योगी न्वावा हें असंभाव्य नव्हे;  
गवयाचें पोर रडलें तरी सुरावर रडतें, या लौकिक  
म्हणीत हेंच तत्त्व संगृहित आहे.

हे सर्वही तपानें निष्पाप होऊन कांपिल्यनगरींत जन्मास आले. यांपैकी ब्रह्मदत्त हा धुरीण होता. यांपैकी जे चौघे पूर्वजन्मीं अखंड योगनिष्ठ होते ते या जन्मीं ज्ञान, ध्यान, तप, पूजा, वेद, वेदांग, यांत निष्णात असून पूर्वजन्मींचें त्यांना स्मरण होतेंच; आणि बाकीचे जे तीन त्यांना मात्र भूल पडली. यांपैकी पूर्वीचा जो स्वतंत्र तो ब्रह्मदत्त नांवानें अणुहाचे पोटी उत्पन्न झाला. कारण, पूर्वी पक्षियोनीत असतां असाच जन्म आपणास व्हावा असा त्याचा संकल्पच होता. हा ब्रह्मदत्तही या जन्मीं ज्ञान, ध्यान, तप, इत्यादिकांनीं पवित्र असून मोठा यशस्वी व वेदवेदांगनिपुण होता. छिद्रदर्शी व सुनेत्र हे जे उरलेले दोघे बंधु ते या जन्मीं वत्स व बाभ्रव्य वंशांत उत्पन्न झाले. हेही मोठे कर्मनिष्ठ व वेदवेदांगप्रवीण होते; व पूर्वजन्मापासून एकत्र राहिले असल्यामुळें या जन्मीं ब्रह्मदत्ताचे सोबती झाले. या जन्मीं त्यांना पांचाल व कण्डरीक अशीं नांवें होतीं. पैकीं पांचाल हा ऋग्वेदामध्ये प्रवीण होता, व यामुळें त्यानें आचार्यत्व स्वीकारिलें. कण्डरीक हा सामवेद व यजुर्वेद यांत निष्णात असल्यानें त्यानें छंदोगत्व व अध्वर्युत्व पतकरिलें. राजा ब्रह्मदत्त हा सर्व प्राण्यांचे शब्द समजण्यांत निपुण होता. त्याची ह्या पांचालकण्डरीकांशीं मोठी गट्टी जमली. हे तिघेही पूर्वजन्मींच्या वासनेप्रमाणें कामलोलुप होऊन मैथुनादि कर्मांत जरी आसक्त होते तरी पूर्वसंस्कारांमुळें त्यांना धर्म, अर्थ, काम या तिन्ही शाखांची माहिती पुरांपूर होती. असो; निर्मळ ब्रह्मदत्ताला राज्यावर बसवून अणुह जो तपश्चर्येला गेला तो पूर्ण योगनिष्ठ होऊन परमगतीला पोचला. ब्रह्मदत्ताला जी बायको मिळाली ती असितकुलोत्पन्न जो देवलऋषि त्याची मुलगी होती. हिचें नांव

सन्नति असें होतें. हिच्या नांवाप्रमाणेंच ही सन्नतिमान् म्हणजे सज्जनांशीं नम्रपणें वागणारी किंवा सत् म्हणजे जें ब्रह्म त्याचे ठिकाणीं जिची मति लीन आहे अशी होती. सौंदर्यानेंही फार उत्तमच होती. हिचें तेज मोठें उग्र असे व हिला योगाचा नाद असल्यामुळें ब्रह्मदत्ताच्या व हिच्या समजुतीचा एकमेळ होता; व हें पाहूनच ब्रह्मदत्तानें तिला देवलापासून भार्यात्वासाठीं मागून घेतली.

हे राजा, पूर्वजन्मींचा जो पांचिक तो या सातव्या जन्मींही पांचवाच होता. सहावा जो खसृम तो कण्डरीक झाला, व सातवा तो ब्रह्मदत्त झाला, हें मागें सांगितलेंच आहे. उरले जे चार पक्षी तेही कांपिल्य नगरींतच एका वेदवेत्त्या दरिद्री ब्राह्मणाचे पोटी येऊन सरस्वे भाऊ झाले. त्यांचीं नांवें:—धृतिमान्, सुमना, विद्वान् व सत्यदर्शी अशीं होतीं. हे चौघेही वेदाध्ययनांत मोठे निपुण असून त्यांचें मुक्तिमार्गाकडे सदैव लक्ष असे. कारण, पूर्वसंस्कारांमुळें त्यांचे ठिकाणीं तसलेंच ज्ञान उत्पन्न झालें होतें; यामुळें ते याही जन्मीं सदैव योगनिरत राहून आपण आतां सिद्ध झालों असें त्यांना वाटतांच ते हा लोक सोडून जाण्याच्या खटपटीस लागले. जातांना आम्ही येतो म्हणून त्यांनीं आपल्या बापाचा निरोप विचारिला. तेव्हां तो म्हणाला कीं, बाबांनो, तुम्हीं पुत्रांनीं अशा स्थितींत मला सोडून जाणें हा निव्वळ अधर्म आहे. कारण, माझ्या पोटीं जन्मून माझें दरिद्र तुम्हीं विच्छिन्न केलें नाहीं, किंवा संतति करून वंशवृद्धि केली नाहीं. माझे पश्चात् राहून माझें गयावर्जनादि करणें हें तर लांबच राहिलें, पण, माझी या वृद्ध वयांत सेवाचाकरीही केली नाहीं असें असून मला तुम्हीं सोडून चाललां, हें तुम्हांला शोभत नाहीं.

हैं बापाचें भाषण श्रवण करून ते सर्व ब्राह्मण बापाला म्हणाले कीं, तुम्हाला आत्मोद्धारार्थ संततीची गरज नाही. आम्ही ब्रह्मवेत्ते असल्यामुळे तुमचा उद्धार झालेलाच आहे; आतां प्रश्न उरला उपजीविकेचा. त्याची तोड तुम्हाला सांगितों. आपला ब्रह्मदत्त राजा हा मोठा पुण्यवान् आहे, तो आपल्या मंत्र्यांसह बसला असेल अशी वेळ साधून त्याकडे जा आणि “सप्तव्याधा” हे श्लोक त्याचे पुढें म्हणा. या श्लोकांत फार गूढार्थ आहे, तो जाणून ब्रह्मदत्त तुम्हावर प्रसन्न होईल व तुम्हाला गांवशीव इनाम देईल, वाटतील तसले भोग्यपदार्थ देईल, फार काय तुमची जी इच्छा असेल ती तृप्त करील. करितां तुम्हीं निश्चित असा.

याप्रमाणें पित्याला सांगून व त्याची पूजा करून ते पुन्हा योगधारणा धरून परम शांतीला पोचले.

## अध्याय चोविसावा.

—०:—

### ब्रह्मदत्ताचा वृत्तांत.

मार्कंडेय सांगतात:—मागें वैभ्राज राजा त्या सात हंसांपैकीं एकाचे उदरीं यावें म्हणजे आपणास अनायासे योगसिद्धि होईल, अशा संकल्पानें तप करून देह ठेविता झाला म्हणून सांगितलें; त्या संकल्पानुरूप तो तपस्वी व योगनिष्ठ वैभ्राज विष्वक्सेन या नांवानें जन्मास आला. पुढें एके दिवशीं ब्रह्मदत्त हा आपली भार्या सन्नति हिला बरोबर घेऊन मोठ्या आनंदानें इंद्राणीसहित रमणाऱ्या इंद्राप्रमाणें वनांत विहार करीत होता, आणि विहार करीत असतां एक मुंगळा कामवश होऊन

आपल्या प्रियेची कामदानाविषयीं काकुळती येऊन याचना करीत होता, तें त्यानें ऐकिलें, व तो मुंगळा प्रार्थना करीत असतां ती इवलिली मुंगी त्याच्या चारगटपणानें त्याचेवर संतापली आहे, असें त्यानें पाहिलें. त्याला त्यांची भाषा समजत होतीच; त्यामुळे तो प्रकार घ्यानीं येतांच ब्रह्मदत्त एकाएकीं खदखदां हंसला. जवळ त्याची स्त्री सन्नति होती, तिला पति कां हंसला, याचें कारण बरोबर न कळल्यामुळे हा आपणासच हंसला असा संशय येऊन ती लाजल्यासारखी झाली व तिचा नूर अगदीं उतरून गेला. त्या सुंदरीच्या हृदयाला ती गोष्ट इतकी लागली कीं, तिनें बहुत दिवस अन्नपाणी सोडलें. नवरा जेव्हां तिची विनवणी करून, “प्रसन्न हो, रुसलीस कां?” म्हणून म्हणूं लागला, तेव्हां ती मनोहर हास्य करून म्हणाली, “तुम्हीच माझा उपहास करून मला कारण विचारितां? मला मुळींच आतां अशा जगण्याचा कंटाळा आला आहे.” तें ऐकून त्यानें हंसण्याचें खरें कारण काय होतें तें तिला सांगितलें, पण तिचा विश्वास बसेना. ती घुश्शांतच त्याला म्हणाली कीं, तुम्ही म्हणतां पण ही गोष्ट माणसांचे अंगीं वसत नाही. हे राजा, एक तर देवाची कृपा किंवा पूर्वजन्मीचें तपोबल, किंवा योगबल यांच्या साहाय्याशिवाय मुंग्यांची भाषा समजेल असा कोण मनुष्य आहे बरें? तें कशाला, आपणच सर्व प्राण्यांची भाषा जाणतां ना? तर जेणेंकरून ही गोष्ट माझे समजुतींत येईल त्या प्रकारें माझी समजूत करा, नाही तर मी प्राणत्याग करीन. हें माझे बोलणें थट्टेचें नव्हे; खरेंखुरें आहे.

राणीचें हें कठोर भाषण ऐकून राजा मोठ्या विचारांत पडला, व संकटनिवारणार्थ आहार वर्ज करून सर्व भूतपति व शरणा-



गतांचा पालक जो परमात्मा नारायण त्याला अनन्यभावानें व एकाग्रचित्तानें शरण गेला. त्यावेळीं सहाव्या रात्रीं भूतमात्राविषयीं दयार्द्र असणारा भगवान् नारायण प्रभु त्याला प्रत्यक्ष दर्शन देऊन म्हणाला, 'उदईक तूं सुखी होशील' असें म्हणून देव तेथेंच दिसेनासा झाला.

इकडे मागें त्या चार ब्राह्मणांचा जो दरिद्री पिता सांगितला तो आपल्या मुलांपासून ते श्लोक शिकून घेऊन आपण कृतकृत्य झालो असें मानूं लागला. तथापि, त्याला ते श्लोक मंत्र्यांसह राजाला गांठून त्याचे कानीं घालण्याला अवसर सांपडेना, म्हणून तो विवंचनेत होता. इतक्यांत राजा ब्रह्मदत्त नारायणाचा वर प्राप्त झाल्यामुळें हर्षित होऊन सरोवरांत स्नान करून मोठ्या आनंदानें आपल्या कांचनमय रथांत बसून नगराकडे चालला. त्या वेळीं त्याचा स्नेही द्विजश्रेष्ठ कण्डरीक यानें रथाच्या पागा धरिल्या होत्या; व दुसरा स्नेही पांचाल हा चवरी व व्यजन ढाळीत होता. आपले श्लोक कानीं घालण्याला हीच संधी योग्य आहे असें मनांत आणून त्या ब्राह्मणानें तो राजा व त्याचे ते दोघे सचिव यांचे कानीं ते दोन्ही श्लोक घातले. ते श्लोक असेः—

सप्तव्याधादशार्णेषु

मृगाः कालिंजरे गिरौ ॥

चक्रवाका शरद्वीपे

हंसाः सरसि मानसे ॥ १ ॥

तेभिजाता कुरुक्षेत्रे

ब्राह्मणाः वेदपारगाः ॥

प्रस्थिता दीर्घमध्वानं

यूयं किमवसीदथ ॥ २ ॥

यांचा अर्थः— दशार्ण देशांत सातजण व्याध होते. पुढें कालिंजर गिरीवर ते मृग झाले. नंतर शरद्वीपांत चक्रवाक झाले व मानस-सरोवरांत हंस झाले. अखेरीस त्यांपैकीं आम्ही

चौघे कुरुक्षेत्रांत वेदपारग असे ब्राह्मण होऊन मोक्षमार्गाला गेलों आणि मग तुम्हींच तेवढे कां फसून पडलां ?

याप्रमाणें हे श्लोक कानीं पडतांच राजा ब्रह्मदत्त मूर्च्छा येऊन पडला; व त्याचे सचिव पांचाल व चाबूक आणि चामर-व्यजन हीं गळून पडलीं. हा प्रकार पाहून राजाचे मित्र व नागरीक गडबडून गेले. राजा आपले सचिवांसह तसा रथांतच मूर्च्छित पडला होता. नंतर शुद्धीवर येऊन ते सर्व नगरास परत आले.

परत आल्यापासून त्यांचे डोळ्यांपुढें तें सरोवर सारखें दिसूं लागलें व त्यांनीं पूर्वजन्मीं जो योगाभ्यास अर्धवट सोडला होता त्याची त्यांना उपास्थिति झाली. नंतर राजानें ब्राह्मणांना विपुल द्रव्य व भोग्य वस्तु देऊन आपल्या राज्यावर आपल्या पराक्रमी पुत्रास-विश्वक्सेनास बसविलें व आपण स्वस्त्रीसह वनाची वाट धरिली. त्या वेळीं त्याची स्त्री म्हणजे देवलाची शहाणी क्रिया सन्नति ही आपला नवरा योगाभ्यासार्थ वनांत चालला हें पाहून बहुत खूष होऊन त्याला म्हणाली कीं, महाराज, आपणास मुंग्यांची भाषा कळते हें मला माहीत नव्हतें असें नाही; परंतु, आपण योगाभ्यास सोडून कामासक्त झालां हें पाहून तुम्हांस पुन्हा योगाकडे प्रवृत्त करावें व तुमचें मन विषयांतून उडवावें म्हणूनच मीं मुद्दाम तुमच्यावर कोप केला. आतां तुम्ही शुद्धीवर आलां, आतां जिच्याहून दुसरी वरिष्ठ गति नाही व जी प्राणिमात्राचें अंतिम इष्ट आहे, त्या गतीला आपण जाऊं. तुम्ही पूर्वीचेच योगाभ्यासी आहांत, पण, योगायोगानें तो क्रम मध्यें बंद पडला होता म्हणून मीं तुम्हाला या युक्तीनें जागें केलें. पत्नीचें तें बोलणें ऐकून राजाला आपल्या स्त्रीविषयीं फारच प्रेमा

उत्पन्न झाला; व मग तीं दोघें वनांत जाऊन त्यानें मोठ्या नेटानें योगाभ्यास आरंभिला व अत्यंत दुर्लभ अशा गतीला तो गेला. कण्ठरीकही योगाभ्यासाला लागला, व त्यानें सांख्य-योगसाधन करून व त्या बलानें पापरहित होऊन सिद्धस्थिति कमविली. पांचाल्यानें तर दोघांहूनही अधिक मोठी कर्तबगारी केली. त्यानें तीव्र तपश्चर्या तर केलीच, पण त्या-शिवाय वेदाचा क्रम लावून देऊन शिक्षा नामक ग्रंथ निर्माण करून योगाचार्य ही पदवी मिळविली. हे गंगापुत्रा, या सर्व गोष्टी पूर्वीं माझ्या डोळ्यांदेखत झाल्या. यावरून श्राद्ध करण्याचें माहात्म्य केवढें आहे, हें तुझ्या लक्षांत आलेंच असेल. तर आतां हें नीट मनांत वागीव, व त्याप्रमाणें चाल म्हणजे तुझेंही कल्याण होईल. तुजशिवाय इतरही जे कोणी या सप्त बंधूंचें उत्तम चरित्र ध्यानांत वागवतील त्यांनाही पश्चादि नीच योनी कधीं प्राप्त होणार नाहीत. हे भारता, ह्या उपाख्यानांत फार खोल अर्थ भरला आहे, यासाठीं हें ज्याच्या मनांत घोळत राहील त्याचे ठिकाणीं आपोआपच योगप्रवृत्ति होऊन तो थोरांच्या मार्गाला लागेल. याच आख्यानाच्या नादांत जो राहील त्याला त्या नादानादानें शांति प्राप्त होऊन अखेर भूलोकांत दुर्लभ अशी शुद्ध योगगति प्राप्त होईल.

वैशंपायन सांगतात:—हे जनमेजया, बुद्धिवान् मार्कंडेय ऋषि यांनीं श्राद्धाचे फला-संबंधानें पूर्वीं हा असा इतिहास सांगितला. हा सांगण्यांत त्यांचा उद्देश सोमाचें आप्यायन व्हावें, असा होता. सोमाचें आप्यायन इच्छिण्याचें कारण, सोमाच्या योगानें पितरांची व लोकांची तृप्ति होते. कारण, भगवान् सोम हा दिव्य औषधिद्वारा भूमिस्थानचें संतर्पण करितो व सोमापासूनच पितरांचीही तृप्ति होते, इतकें सोमाचें माहात्म्य आहे. याजसाठीं ह्या वृष्णि-

वंशकथनाचे ओघांतच मी तुला सोमाचे वंशा-चेंही वर्णन सांगतों, तें ऐक.

## अध्याय पंचविसावा.

—०:—

### सोमोत्पत्तिवर्णन.

वैशंपायन सांगतात:—पूर्वकालीं ब्रह्मदेवानें प्रजा निर्माण करण्याचा जेव्हां संकल्प केला, त्या वेळीं त्याच्या मानसापासून भगवान् अत्रि ऋषि हे उत्पन्न झाले. हेच सोमाचे जनक. त्या काळीं अत्रिऋषींनींही प्रजावृद्धि करावयाची, असा ब्रह्मदेवाप्रमाणेंच दृढ निश्चय केल्यामुळें आपल्या पुत्रांसह कर्म, मन आणि वाणी यांहीं जगत्कल्याणाचेंच आचरण चालविलें. धर्मनिष्ठा, तीव्र नियम, भूतमात्राविषयीं अहिंसा, काष्ठ, भिति किंवा शिला यांप्रमाणें निश्चल स्थिति व ऊर्ध्वबाहुत्व यांचा अंगीकार करून त्या महातेजस्वी अत्रिऋषींनीं तीन सहस्र दिव्यवर्षपर्यंत “ अनुत्तर ” नामाचें अत्यंत तीव्र असें तप केलें, असें आमचे ऐकिवांत आहे. त्या तपकालांत अत्रिऋषि अनिमेष व ऊर्ध्वरेत अशा स्थितींत सदैव राहिल्यानें त्यांच्या हृदयांत शुद्धसत्त्वगुणाची अत्यंत वृद्धि होऊन त्यांचें सर्व शरीरच अंतर्बाह्यशांत व शुद्ध सत्त्वमय बनलें असल्यामुळें तें सात्विक तेज अखेरीस त्यांच्या उभय नेत्रांच्या वाटे जलाचे रूपानें बाहेर पडलें. त्यांचें तेज इतकें अलौकिक होतें कीं, त्याचे योगानें दाही दिशा चमकूं लागल्या व दशादिशांच्या ज्या अभि-

१ या तपांत सर्वेन्द्रियांचेंच मौन म्हणजे निग्रह असतो; केवळ वाणीचाच निग्रह नव्हे.

२ योगाभ्यासांत बाहेरील कोणत्याही पदार्थावर चित्ताची धारणा स्थिर करून बसतांना पापण्या हालविणें बंद पडतें, तिला अनिमेष स्थिति असें म्हणतात.

३ पुरुष बद्धवीर्य असला म्हणजे त्याचे ठिकाणीं सहजच तेजोवृद्धि होते.

मानिनी देवता त्यांना त्या तेजाविषयी लोभ उत्पन्न होऊन सर्वजणींनी मिळून आपल्या गर्भाचे ठिकाणी तें तेज मोठ्या आनंदानें धारण केलें. परंतु, तें त्यांना सहन होईना; व शेवटीं त्या दिशांच्या उदरांतून एकाएकी मोठा देदीप्यमान गर्भाचा गोळा पटकन् खाली पडला. पडतां पडतां त्यानें सर्व लोक प्रकाशानें भरून टाकिले. हा जो पडलेला गर्भ तोच शीत किरणांचा सोम किंवा चंद्र होय. हा सोम औषधिद्वारा जीवमात्मांना पुष्टि देणारा आहे. ज्या वेळीं त्या दिशांना तो अति तेजस्वी गर्भ सहन होईना त्या वेळीं तो त्यांसकटच धरणीवर पडला. त्या वेळीं लोकांचा पितामह जो ब्रह्मदेव यानें सोम हा धरणीवर पडला असें पाहून लोकांचे हितासाठीं त्याला उचलून पटकन् रथावर बसविलें. हा रथ धर्मस्वरूप असून चार वेद हे त्या रथाची पिंजरी होती. सत्यरूप त्याच्या दोऱ्या (पागा) होत्या, व एकजात शुभ्र असे मंत्रात्मक सहस्र अश्व त्याला जोडले होते. हा अत्रिपुत्र परमात्मस्वरूपी सोम धरणीतलावर आलासें पाहून ब्रह्मदेवाचे जे सात मानसपुत्र त्यांना अतिशय आनंद झाला, व अंगिरसकुलोत्पन्न भृगुऋषि यांनीं आपल्या पुतांसह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद व आंगिरस, इत्यादि मंत्रांनीं स्तुति केली; त्या वेळीं त्या तेजस्वी सोमाचें तेज तिन्ही लोकांना पुष्टि देऊन शिवाय सर्वत्र फांकून राहिलें. मग ब्रह्मदेवानें त्या सोमाला तसल्या वेदरूप श्रेष्ठ रथावर बसविल्यावर समुद्रवल्यांकित पृथ्वीच्या एकवीस प्रदक्षिणा केल्या. त्या वेळीं रथाच्या वेगानें धके

बसून त्या सोमापैकीं जें तेज उसळून इकडे तिकडे धरणीवर पडलें त्यापासून औषधी वनस्पति उत्पन्न झाल्या व त्या अद्यापिही तेजानें चमकत असतात. हे राजा, या दिव्यौषधींची कामगिरी देव, भूत व पितर हे तीन लोक व मनुष्य, पशु, पक्षी व सर्पादि ही चतुर्विध प्राणि-सृष्टि, यांचें पोषण करणें ही आहे, आणि या औषधींना भगवान् सोम यानें पुष्टि द्यावी अशी योजना आहे. ऋषींनीं केलेल्या त्या मंत्ररूप स्तवांनीं व संस्कारांनीं अधिकच तेजास चढून सोमानें दहा शेंकडे म्हणजे सहस्र वर्षेपर्यंत तप केलें; व या तपाचे योगानें त्याची कीर्ति झाली. तेव्हां हिरण्यवर्ण ज्या जलरूपि देवता त्यांचा तो निधि बनला, व ब्रह्मवेत्त्यांत वरिष्ठ जो पितामह ब्रह्मदेव त्यानें, हे जनमेजया, त्या सोमाला बीजें, औषधी, ब्राह्मण व जल यांचें प्रभुत्व दिलें.

हे राजा, ब्रह्मदेवानें साम्राज्यविधीनें सोमाला राज्यावर बसविल्यापासून तो आधींच अत्यंत तेजस्वी असल्यानें तत्काल तिन्ही लोकांना आपल्या तेजानें प्रकाशमान् करूं लागला. प्रचेतस प्रजापतीचा पुत्र जो दक्षप्रजापति याला मोठ्या व्रतशील अशा सत्तावीस मुली होत्या. त्या त्यानें या सोमाला दिल्या. या सत्तावीस कन्या म्हणजे अश्विनीभरणी-प्रभृति जीं सत्तावीस नक्षत्रें तींच होत. या-प्रमाणें राज्य मिळालें, सुंदर स्त्रिया मिळाल्या, तेव्हां, पितरांचा पालक जो सोमराजा त्यानें

१ कवितिलक कालिदास यानें औषधी तेजानें रात्री चमकतात, ही कल्पना आपल्या कुमारसंभव काव्यांत घेतली आहे.

२ पुष्पाभिचोषधीः सर्वाः सोमोभूत्वारसात्मकः ।  
(गीता, अ० १५.)

३ हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाः यासुजातः कश्यपः ।  
इत्यादि मंत्रांत जलाचें हिरण्यवर्णत्व वाणिज्ये आहे.

१ सोमयागांत जी सोम नामक वल्ली असते ती रथांत घालून वेदमंत्रांनीं आणावयाची असते, त्या प्रकारास अनुलक्षून हें रूपक आहे. ही सोमवल्ली हें धरणीवर पडलेल्या सोमाचें रूप मानिलें आहे.

राजसूय यज्ञ आरंभिला. त्या यज्ञांत त्यानें सहस्र शेंकडे गाई दक्षिणार्थ दिल्या. त्या यज्ञांत भगवान् अत्रिऋषि यांनीं त्याचें होतृत्व पतकरिलें होतें. भगवान् भृगु हे अध्वर्यु झाले; भगवान् अंगिरा यांनीं उद्गातृत्व स्वीकारिलें; स्वतः ब्रह्मदेव हे ब्रह्मा झाले; आणि भगवान् नारायण हरि हे सदस्य झाले. याशिवाय सनत्कुमार प्रभृति जे आद्य ब्रह्मर्षि हेही त्याचे भोंवतीं जमलेच होते. अशा थाटांत यज्ञ चालला असतां आम्ही असें ऐकितों कीं, त्या सोमराजानें तिन्ही लोकांत जे जे निवडक ब्राह्मण होते त्यांना त्यांना, ब्रह्मर्षींना व सद्-स्यांनाही यथेच्छ दक्षिणा दिली. त्या समर्थीं सिनि, कुहू, द्युति, पुष्टि, प्रभा, वसु, कीर्ति, धृति व लक्ष्मी, या नऊ देवी त्याच्या सेवेत तत्पर होत्या. सर्व यज्ञ निर्विघ्न पार पडून सोमानें शैवटीं स्वस्थ चित्तानें अवभृथ म्हणजे यज्ञांतींचें स्नानही उरकिलें. या त्याच्या मह-त्कृत्याबद्दल सर्व देव व ऋषि यांनींही त्याचा फार गौरव केला. मग तो राजाधिराज होऊन दाही दिशा प्रकाशवूं लागला. ( पण, हे राजा, ऐश्वर्य ही वस्तु मोठी मादक आहे.) कोणा-लाही न मिळणारें असें असामान्य ऐश्वर्य व ऋषिजनांसारख्यांकडून सत्कार, हीं जेव्हां त्या सोमाला प्राप्त झालीं, तेव्हां त्याचे मतीला भ्रम पडला. पहिलें तें त्याचें मर्यादशील व नम्रवर्तन भुटलें, व त्याच्या मनाला अन्यायाचे चाळे सुचूं लागले. त्यानें देवगुरु जो बृहस्पति त्याची यशस्विनी भार्या जी तारा तिला बृह-स्पतीला न जुमानितां बलात्कारानें हिरावून आणिली. या कामीं देव व मोठमोठे देवर्षि यांनीं पुष्कळ रदबदली केली. परंतु, तो ज्याचें नांव तें ऐकेना व बृहस्पतीला तारा परत देईना. हें पाहून देवाचार्य बृहस्पति सोमावर फार खवळला व रथांत बसून त्याजबरोबर युद्ध

करण्यास निघाला. त्या वेळीं त्या युद्धांत दैत्य-गुरु शुक्राचार्य हे चंद्राच्या बाजूला झाले, व बृहस्पतीचा पिता जो अंगिरस ऋषि त्याचा महातेजस्वी शिष्य जो भगवान् रुद्र तो गुरु-पुत्राच्या स्नेहास्तव आपलें आजगवें नांवाचें धनुष्य घेऊन बृहस्पतीच्या बाजूला झाला, व त्यानें दैत्यांवर रोंख धरून ब्रह्माशिर नांवाचें परमास्त्र सोडिलें. त्या योगेंकरून दैत्यांची अब्रू खलस झाली.

असो; तारेच्या निमित्तानें जें हें देव व असुर यांचें युद्ध झालें तें फारच तुंबळ झालें. त्यामध्ये लोकांचा फारच फत्ता उडाला. हा अनर्थ टळावा म्हणून बृहस्पतीच्या बाजूला असणारे सर्वही सात्त्विक देवगण, तसेच गुरुस्त्री हरण करणाऱ्या पापी सोमाची साथ करणारे तुषितसंज्ञक देवगणही सनातन आदिदेव जो ब्रह्मा त्याकडे आश्रयार्थ गेले. त्या वेळीं ब्रह्म-देवानें एकादश रुद्रांतील ज्येष्ठ जो शंकर त्याला व शुक्राचार्यालाही युद्धापासून विनिवृत्त करून आपल्या हातीं देवी तारा बृहस्पतीच्या स्वाधीन केली. परंतु, बृहस्पति पाहातो तों तारेला सोमापासून गर्भ राहिला असून ती प्रसूतीच्या रंगांत आली होती. तें पाहून बृहस्पति म्हणाला कीं, वास्तविक पाहातां ही तुझी योनि माझे मालकीची असून तूं हिचे ठिकाणीं अन्यापासून गर्भ धारण केलास, यासाठीं तूं माझे घरांत येऊन प्रसूत होऊं नको. तेव्हां ती बिचारी तारा भलत्याच ठिकाणीं प्रसूत झाली. तें ठिकाण म्हणजे कसाड नांवाचें जें उंच गवत असतें त्याचें बेट, त्यांत ती प्रसूत

१ शुक्राचार्य हे दैत्यगुरु असतां चंद्रास साहाय्य कर-ण्याचें कारण यासमर्थीं दुराचारासुद्धें चंद्र हा असुरच समजला जात होता.

२ अज म्हणजे बोकड व गो म्हणजे बैल या दोघांचीं शिमें मिळून तें केलें होतें.

झाली. तिला जो पुत्र झाला तो अग्नीसारखा देदीप्यमान असून चोरट्यांचा केवळ काळ होता. तो उपजतांच इतका तेजस्वी होता कीं, त्यानें आपल्या तेजानें देवसुद्धां झांकून टाकिले. असला हा तेजस्वी पुत्र असावा तरी कोणाच्या पोटाचा? ही शंका येऊन देव तिला पुसूं लागले. ते म्हणाले, 'हे तारे, खरें सांग. हा कोणाच्या पोटाचा? सोमाच्या कीं बृहस्पतीच्या?' याप्रमाणें देवांनीं प्रश्न केला. पण ती लाजेमुळें एक बोलेना नी दोन बोलेना. तेव्हां, तिचा झालेला पुत्र तिला शैप देऊं लागला. परंतु ब्रह्मदेवानें त्याचें निवारण करून स्वतः तारेला प्रश्न केला. ते म्हणाले, 'तारे, तूं लाजूं नको, भिऊं नको (आम्ही जाणत आहों. कसेही असलें तरी तुझा अबलेचा त्यांत कांहीं उपाय नाही); करितां खरें खरें असेल तें स्वच्छ सांग. हा मुलगा कोणाचा?' याप्रमाणें वरदात्या प्रभु ब्रह्मदेवानेंच जेव्हां विचारिलें तेव्हां ती मन्त्रपणें हात जोडून म्हणाली, "महाराज, हा सोमाचा." ते शब्द ऐकून सोमानें त्या पराक्रमी कुमाराला पुढें घेऊन त्याची टाळू हुंगली, व त्याची चलाख बुद्धि पाहून त्याला बुध असें नांव ठेविलें. हा बुध आकाशांत नेहमीं सूर्यसान्निध्यामुळें लुप्तच असतो, कदाचित् व्यक्त दिसलाच तर कांहीं तरी उत्पात वगैरे जनांला प्रतिकूल गोष्टी उत्पन्न करितो. या बुधापासून वैराज मनूची कन्या जी ईला, हिनें ऐल किंवा पुरुरवा हा

पुत्र उत्पन्न करविला. पुढें या पुरुरव्याला उर्वशीचे ठिकाणीं सात पुत्र झाले. इकडे सोमानें दांडगाईनें गुरुखी भ्रष्ट केली होती, या त्याच्या पापाबद्दल त्याला राजयक्ष्मा नांवाचा रोग जडला. त्या रोगापासून सोम क्षीण होऊं लागला. तेव्हां तो आपला पिता अत्रि ऋषि यांसच शरण गेला. त्या वेळीं महातपस्वी अत्रि ऋषींनीं त्याचें तें दुःख दूर केलें. मग सोम हा राजयक्ष्मा व्याधीपासून मुक्त होऊन पूर्ववत् तेजानें तपूं लागला.

हे महाराजा, याप्रमाणें यश वाढविणारें असें हें सोमाचें जन्म मीं तुला सांगितलें. या जन्माच्या श्रवणानें धनधान्य, आरोग्य, आयुष्य, पुण्य, पापमुक्ति व सुविचारपूर्ती हीं प्राप्त होतात. आतां या सोमाच्या पुढील वंशाचें वृत्त तुला सांगतो.

## अध्याय सव्विसावा.

—:—

### एलोत्पत्तिवर्णन.

वैशंपायन सांगतात:—हे जनमेजया, बुधाला जो पुरुरवा म्हणून पुत्र झाला म्हणून सांगितलें, तो मोठा विद्वान्, तेजस्वी, दानशील, याग करून विपुल दक्षिणा देणारा, ब्रह्मवादी, पराक्रमी, युद्धांत शत्रूंना अजिंक्य, अग्निहोत्र ठेवणारा, यज्ञकर्ता, सत्यवादी, पवित्र बुद्धीचा, स्त्रियांना मोह पडेल इतका सुंदर असून एकांतांत पडद्याआडच कामचेष्टा करणारा असा होता. फार काय सांगावें? त्या काळीं तिन्ही लोकांत यशानें त्याची बरोबरी करणारा असा कोणी नव्हता. असा तो ब्रह्मवादी, क्षमाशील, धर्मज्ञ व सत्यनिष्ठ पाहून मोठी नांवाजलेली जी उर्वशी नांवाची अप्सरा, ती आपले दिव्यपणाचा गर्व बाजूला ठेवून त्याला वरती झाली. हे राजा, मग तो पुरुरवा त्या दिव्य सुंदरीसह चैत्ररथ

१ मन जाणें पापा व आई जाणें लेंकाच्या बापा. चतुर्थर म्हणतात, गर्भ कोणी स्थापला ही गोष्ट आई-वांचून ब्रह्मदेवालाही कळत नाही.

२ कारण, त्याला निवाण्या किंवा दुवाण्या म्हणवून घेण्याची वेळ येणार.

३ हा मूळ पुरुष असून, शरवणांत गेल्यानें स्त्री झाला, व त्या कालांत बुधापासून पुरुरवा नांवाचा पुत्र झाला.

नामक रमणीय वनांत दहा वर्षे, मंदा-  
किनीच्या तीरीं पांच वर्षे, अलकानगरींत पांचवर्षे,  
बदरिकारण्यांत सहा वर्षे, नंदन नामक सर्वोत्कृष्ट  
वनांत सात वर्षे, वाटेल त्या वेळीं जेथें वृक्ष  
फल देतात, अशा उत्तर कुरुंत आठ वर्षे,  
गंधमादन पर्वताच्या पायथ्याशीं दहा वर्षे आणि  
उत्तर मेरूच्या पृष्ठभागावर आठ वर्षे, याप्रमाणें  
प्रत्यक्ष देवही जेथें विहारासाठीं येतात असल्या  
या उंची उंची वनांत मोठ्या चैनीत व रास-  
रंगांत राहिला. त्यानें राजा या नात्यानें, मोठ-  
मोठाल्या ऋषींनीं ज्याची प्रशंसा केली आहे,  
अशा प्रयाग प्रांतावर राज्य केलें. उर्वशीपासून  
त्याला सात मुलगे झाले. ते सर्वही स्वर्गांत जन्म  
पावलेल्या देवकुमारांप्रमाणें उदार व सुंदर  
होते. त्यांचीं नांवें: आयु, अमावसु, विश्वायु,  
श्रुतायु, दृढायु, वनायु व शतायु.

जनमेजय विचारतो:—हे वैशंपायना, आपण  
बहुश्रुत आहां तेव्हां मला हें सांगा कीं, उर्वशी  
ही अप्परा म्हणजे स्वर्गांत रहाणारी व गंध-  
र्वादि देवांनीं उपभोग्य असें असतां ती देवांस  
सोडून पुरूरवासारख्या मानवी राजास कशी  
माळली ?

वैशंपायन सांगतात:—तुझ्या शंकेचें समा-  
धान असें आहे कीं, या उर्वशीला ब्रह्मदेवाचा  
शाप झाला होता, त्यामुळें ती मनुष्याचे हातीं  
लागली; व तो शाप नियमित कालपर्यंतचा  
असल्यानें तिनें त्या शापांतून मुक्त होण्या-  
साठीं पुरूरवाला अंगीकारिताना त्याच्या जवळ  
कांहीं करार केले; व मग ती त्याच्या स्वाधीन  
झाली. ते करार असे. ती सुंदरी म्हणाली, ‘ हे

राजा, मी तुला वश होतें; परंतु तूं केव्हांही  
माझ्या दृष्टीस नग्न पडतां कामा नये. शिवाय  
तुझी लहर लागेल तेव्हां मीं तुला भोग देणार  
नाहीं, तर जेव्हां मला कामचेतना होईल तेव्हांच  
तूं मैथुन करावें. शिवाय दिवसभर तूं थोडेंसें  
तूप खाऊनच रहावें, दुसरे कांहीं खाऊं नये; व  
आपल्या निजावयाचे विघ्नान्याजवळ दोन मस्त  
मेंढे सदासर्वदा बांधून ठेविलेले पाहिजेत. हे  
राजा, हा करार जर तुला कबूल असेल तर  
मी तुझी होतें. ती तरी तूं जोंपर्यंत हा करार  
अक्षरशः पाळशील तोंपर्यंतच मी राहीन.  
त्यांत काडीमात्र दिलीई झाली कीं, मी चालती  
होईन. तेव्हां काय तें बोल. माझ्या सर्व शर्तीं  
तुला पटल्या ?’

राजा म्हणाला:—“ पटल्या, पटल्या. मी  
त्या सर्व नीट पाळीन; ” हे जनमेजया, पुरू-  
रवाला त्या तबियतखोर उर्वशीनें इतकें जख-  
डून घेतलें तेव्हां कुठें ती त्याच्याजवळ राहिली.  
ती तरी शापप्रभावामुळें थोडीशी मूढबुद्धि  
बनली होती म्हणून टिकली. तिनें त्या राजा-  
जवळ एकंदर एकूण साठ वर्षे काढिलीं.

इकडे उर्वशी ही स्वर्गांतली वस्तु होऊन  
मनुष्याच्या हातीं लागली, ही गोष्ट गंधर्वाना  
चैन पडूं देईना. ते परस्परांत खलबतें करूं  
लागले. ते म्हणाले कीं, उर्वशीसारखी निव-  
डक स्त्री जी केवळ स्वर्गालाही भूषण आहे ती  
माणसाच्या हातीं रहावी हें कांहीं ठीक नव्हे.  
तर गडेहो, जिकडून ती पुनरपि देवांच्या  
हातीं येईल असली कोणी तरी शक्य योजना.  
त्या वेळीं त्या बैठकींत विश्वावसु नांवाचा एक  
मोठा बोलका गंधर्व होता. तो पुढें होऊन  
म्हणाला, ‘ उर्वशी व पुरूरवा यांचे ज्या वेळीं  
पूर्वीं करारमदार ठरले त्यावेळीं मीं ते ऐकले  
आहेत. त्यांचा सारांश असा आहे कीं, तिनें  
दिलेल्या शर्तीं पाळण्यांत काडीमात्रही चूक

१ या मुलांची संख्या व यांचीं नांवें यांचा मेळ नाहीं.  
भारत शांतिपर्वीत ही संख्या सहा असून त्यांत आयु व  
श्रुतायु हीं दोनच नांवें मिळतीं आहेत. मत्स्यपुराणांत  
ही संख्या आठ असून आयु, दृढायु व शतायु हीं  
तीनच नांवें मिळतीं आहेत, बाकी भिन्न आहेत.

राजांनं केली कीं तिनें त्याला रामराम ठोक-  
लाच. अशी हडसून खडसून बोली झालेली  
आहे; आणि राजाच्या हातून करार कसा  
मोडला जाईल त्याची हिकमत मला पुरी  
माहीत आहे. याकरितां हे गंधर्वहो, तुमच्या  
कार्यसिद्धीसाठीं मीच जातो, मात्र माझे मद-  
तीला कांहीं मंडळी पाहिजेत; असें म्हणून तो  
यशस्वी विश्वावसु प्रयाग नगरीला गेला. तेथें  
त्यानें राजाच्या शय्यागारांत शिरून त्या दोन  
मैदयांपैकीं एक मैदा चोरून नेला. गंधर्वयेऊन  
गेला व आपला शाप संपण्याचीही वेळ भरली,  
हें मनांत आणून ती चारुहासिनी ( गोडगोड  
हंसणारी ) राजाला म्हणाली कीं, माझ्या  
मुलांपैकीं एक आज येथें दिसत नाही. तो  
कोणी नेला, याचा शोध करा. ( मला चैन  
पडत नाही. ) कारण, या मैदयांवर मी आई-  
प्रमाणें जीवप्राण करते हें तुम्हीं नित्य पाहातांच.  
उर्वशीनें याप्रमाणें राजाला ज्या वेळीं हटकलें  
त्या वेळीं तो नग्न स्थितींत असल्यानें तो उत्तर  
द्यायला पुढें होईना. कारण, त्याच्या पोटांत  
उभें राहिलें कीं, आपण उर्वशीच्या दृष्टीस  
नागवे पडलों कीं, करार मोडला असें होईल.  
या कारणास्तव तो जागच्याजागींच पडून  
राहिला. इतक्यांत गंधर्व मंडळींनीं दुसराही मैदा  
लांबविला. त्या वेळीं देवी उर्वशी राजाला  
म्हणाली कीं, 'अहो, हें काय, हें काय; तुम्हीं  
प्रभु म्हणवीत असतां माझा दुसराही पोरगा  
हालोहाल कोणीं येथून उठविला ? आणि मी  
बापडी अनाथासारखी बसलें आहे. याची कांहीं  
तरी शंका बाळगा.' इतकें जेव्हां खोंचून उर्वशी  
बोलली, तेव्हां त्या झटक्यांत आपण नग्न  
आहोंत ही शंका मनांत न ठेवितां राजा त्या  
एडक्यांचा माग काढीत धांवूं लागला. गंधर्व  
वाटच पहात होते. त्यांनीं तत्काळ अशी कांहीं  
विद्युल्लता तेथें उत्पन्न केली कीं, तिच्या तेजानें

त्या सर्व अंतःपुरांत लखलखाटच होऊन राहिला.  
राजेसाहेब दिगंबरच होते, ते उर्वशीच्या तसेच  
नजरेस पडले. तिला तेंच हवें होतें. मूळची  
अप्सरा ती ! वाटेल तसलें रूप घेण्याची विद्या  
तिला अवगतच होती, तेव्हां ती तेथल्या  
तेथेंच दिसेनाशी झाली.

इतक्यांत राजा उधळलेले मैदे गांठून घेऊन  
परत घरांत आला, आणि पहातो तो उर्वशी  
नाहीं. तेव्हां हंबरडा फोडून रडूं लागला;  
नंतर वेडा होऊन तिला धुंडाळण्यांत इकडे  
तिकडे भटकून त्यानें सर्व पृथ्वी पालथी  
घातली. शेवटीं कुरुक्षेत्रांत प्लक्षतीर्थावर सुवर्ण-  
कमलांनीं युक्त अशी एक पुष्करणी होती, तींत ती  
सुंदरी, दुसऱ्या पांच अप्सरांसह क्रीडत बसलेली  
त्याच्या दृष्टीस पडली. एवढा बलाढ्य राजा,  
पण उर्वशीला पाहातांच त्यानें मोठाच गळा  
काढिला. उर्वशीनेंही राजा जवळ येऊन ठेपला  
असें पाहून आपल्या संवगडीनींना म्हटलें कीं,  
मी ज्याजवळ राहिलें होतें तोच हा राजा, असें  
म्हणून तिनें राजाकडे बोट दाखविलें. तेव्हां  
ही आतां पुन्हा या राजाबरोबर निघून जाते  
किंवा काय अशी शंका येऊन तिच्या सख्या  
गोंधळून गेल्या. इतक्यांत राजा उर्वशीला  
मिनतवारीनें म्हणूं लागला, 'हे सुंदरी, तुला  
वाटेल तर मन मानेल तसें मला तडातड  
टाकून बोल, कठोरपणानें वागव; परंतु, आतां-  
पर्यंत तूं माझी जाया ( जिचे ठिकाणीं पुत्ररूपानें  
पति जन्म घेतो अशी स्त्री ) या नात्यानें  
मजपाशीं वागत होतीस, तेंच नातें कायम  
मनांत वागवून मजपाशीं राहा, दुसरें माझे  
कांहीं म्हणणें नाही.' याप्रमाणें तिच्याशीं  
गुळचट गोष्टी करीत राजा बसला. उर्वशीनेंही  
त्याला त्या वेळीं गोडसेंच उत्तर दिलें. ती  
म्हणाली, ' हे प्रभो, माझ्या जायात्वाप्रमाणें  
तुजपासूनच माझे ठिकाणीं गर्भ राहिला आहे.

याकरितां तूर्त मी तुजकडे येत नाही. आज-पासून एक संवत्सरानें मी प्रसूत होईन, आणि तुला पुत्रच होतील. ही गोष्ट झाल्यावर एकदां एक रात्र तुला मजबरोबर राहावयास मिळेल, जास्ती कांहीं नाही.' उर्वशीचे हे शब्द ऐकून तेवढ्यानेच राजाला किती तरी आनंद झाला; आणि त्या आनंदांतच तो आपल्या नगरीला परत गेला. मग एक संवत्सर भरतांच उर्वशी संकेताप्रमाणें त्याकडे आली. राजानेंही तिजबरोबर ठरल्याप्रमाणें एक रात्र घालविली. नंतर उर्वशी पुरुरव्याला म्हणाली, 'हे राजा, हे माझे गंधर्वगण तुला वर देण्याला तयार आहेत. याकरितां तूच होऊन त्यांजपासून वाटेल तो वर मागून घे. मुख्यतः आपण गंधर्व-तुल्यच व्हावें हें तूं माग.' राजा म्हणाला, 'फार बरें.' व त्यानें त्याप्रमाणें गंधर्वांपाशीं वर मागितला व त्यांनीं तुझ्या इच्छेप्रमाणें होईल म्हणून वर दिला, व अग्नीनें भरलेली एक स्थाली त्याच्या स्वाधीन करून गंधर्व त्याला म्हणाले कीं, हे राजा, हा अग्नि घेऊन तूं यज्ञ कर म्हणजे आमच्या लोकाला येतील. मग तो अग्नि व उर्वशीनें दिलेले आपले पुत्र बरोबर घेऊन राजा नगराकडे जावयास निघाला. जातांना त्यानें तो अग्नि वाटेंत अरण्यांतच टाकिला, व केवळ पुत्रांसह नगर-प्रवेश केला. नगरांत शिरतांना त्यानें पूर्वी प्रवासाचे वेळीं वेशीबाहेर स्थापित केलेला अग्नि त्याला आढळला नाही. परंतु, त्या अग्नीच्या ऐवजीं शमीच्या झाडांत उत्पन्न झालेला अश्वत्थ दृष्टीस पडला. त्या वेळीं त्यानें अग्नि नाहीसा झाला, ही गोष्ट गंधर्वांना सांगितली. गंधर्वांनीं त्याची ती तक्रार ऐकून त्याला सांगितलें कीं, या अश्वत्थ वृक्षाचीं दोन काष्ठें घेऊन त्यांपासून मंथा व अरणी करून मंथून अग्नि निर्माण करावा. मग राजानें त्याप्रमाणें

अश्वत्थकाष्ठाचा अरणि करून यथाविधि मंथन करून अग्नि काढिला; व त्याच अग्नीचे दक्षिण, आहवनीय व गार्हपत्य असे तीन विभाग करून अनेक यज्ञ केले. त्यापूर्वीं एकच अग्नि होता. पण पुरुरव्यानें हे तीन वर्ग केले. असला तो समर्थ राजा होता. यज्ञाच्या पुण्यानें त्याला गंधर्वांचें सालोक्यही मिळालें.

हे राजा, याप्रमाणें गंगा नदीच्या उत्तर-तीरावर असणाऱ्या अत्यंत पवित्र व महर्षींनीं प्रशंसा केलेल्या प्रयाग नामक प्रांतांत असला हा महायशस्वी राजा राज्य करून गेला.

## अध्याय सत्ताविसावा.

—:—

### अमावसुवंशवर्णन.

वैशंपायन सांगतातः—उर्वशीपासून ऐल म्हणजे पुरुरवा याला जे पुत्र झाले ते सर्वच स्वर्गलोकांत जन्मांत येणाऱ्या देवपुत्रांप्रमाणें मोठे उदार व दिव्यस्वरूप होते. त्यांचीं नांवें: आयु, बुद्धिमान् अमावसु, धर्मात्मा विश्वायु, श्रुतायु, तसाच आणखी दृढायु, वनायु व शतायु. अमावसूला भीम आणि राजा नग्नजित् असे दोन मुलगे होते. पैकीं राजा भीम याला कांचनप्रभ नांवाचा मोठा देखणा मुलगा होता. कांचनाला मोठा विद्वान् व बलिष्ठ असा सुहोत्र नांवाचा पुत्र होता. या सुहोत्रानें केशिनीच्या पोटीं जन्हु नामक पुत्र उत्पन्न केला. या जन्हुनें सर्वमेध नांवाचा फार मोठा यज्ञ केला. या समयीं याला गंगा मोहित होऊन माझा पति हो म्हणून प्रार्थना करित आपण होऊन त्याजकडे आली. परंतु तो तिच्या इच्छेला अनुसरेना. तेव्हां त्या गंगेनें त्याचा तो सर्व यज्ञमंडप जळांत बुडवून टाकिला. सर्व यज्ञ-भूमी गंगेनें याप्रमाणें बुडवून टाकलेली पाहातांच जन्हु संतापून गंगेला म्हणाला कीं, हे गंगे,



तू हे व्यर्थ श्रम कशाला करितेस ? तू आपल्या-  
कडून एवढा जरी जलप्रलय केला आहेस तरी  
मला त्याचें कांहीं नाहीं. मी हें सर्व पाणी  
पिऊन टाकून तुझा यत्न फुकट घालवीन. मात्र  
तू जी ही दांडगाई केलीस तिचें प्रायश्चित्त  
तुला या हातींच देतो बघ. असें म्हणून जन्हूनें  
तत्काळ सर्वगंगा पिऊन टाकिली. पुढें महर्षींनीं  
गंगेची अशी स्थिति झालेली पाहून जन्हूची  
प्रार्थना केली. तेव्हां त्यानें तिला सोडून दिली.  
परंतु, ती जन्हूच्या पोटांतून आली ही कल्पना  
घेऊन ऋषिगण त्या दिवसापासून तिला  
जान्हवी म्हणजे जन्हूची कन्या असें म्हणूं  
लागले. गंगेला जन्हूची कन्या ठरविल्यावर  
त्याला पति करण्याचा तिचा संकल्प सहजच  
फिका पडला. तथापि, अंतर्गामीं तिची ती  
वासना नष्ट झाली नव्हती; व तिनें ती वासना  
अन्य रूपानें पूर्ण करून घेतली. तो प्रकार असा.

युवनाश्वानें पूर्वी कांहीं कारणानें गंगेला तू  
मनुष्ययोनी पावशील म्हणून शाप दिला होता.  
त्या शापबलानें गंगा ही आपल्या अर्धभागानें  
युवनाश्वचेच पोटीं येऊन तेथें सरिच्छेष्ट कावेरी  
असें नांव पावली; व ही युवनाश्वकन्या कावेरी  
हिशीं जन्हूनें लग्न लाविलें. ( अर्थात् जन्हूला  
पति करण्याचा गंगेचा हेतु कावेरी रूपानें  
सिद्ध झाला. ) कावेरीरूपानें जन्हूच्या घरांत  
आल्यावर तिचें ( गंगेचें ) वर्तन अनिंदित होतें.  
असो; कावेरीचे ठिकाणीं जन्हूनें सुनह नामक  
पुत्र उत्पन्न केला. हा बापाचा फार लाडका  
असून फार धार्मिक होता. या सुनहाला पुढें  
अजक हा मुलगा झाला. अजकाचे पोटीं राजा  
बलाकश्व हा आला. या राजाला शिकारीचा  
फार नाद असे. याला कुश नांवाचा पुत्र झाला.  
कुशाला पुढें देवांसारखे तेजस्वी असे चार पुत्र  
झाले. त्यांचीं नांवें—कुशिक, कुशनाभ,  
कुशांब आणि मूर्तिमान्. हा कुशिक राजा

पलहव नांवाचे जे रानटी लोक आहेत त्यांच्या  
सोबतीनें असे. एकदां या कुशिकाचे मनांत  
असें आलें कीं, आपणास इंद्राच्या तोडीचा  
तेजस्वी असा पुत्र व्हावा. ही गोष्ट मनांत  
आल्यावर त्यानें तिच्या सिध्यर्थ अत्युग्र तप  
आरंभिलें, व तें तप त्यानें सतत एक सहस्र  
वर्षपर्यंत चालविलें. सहस्र वर्षे पूर्ण झालीं,  
तेव्हां सहस्राक्ष जो पुरंदर इंद्र त्याचे लक्षांत  
असें आलें कीं, हा कुशिक आपल्या तोडीचा  
पुत्र निर्माण करण्यास खचितच समर्थ आहे.  
पण यानें असला पुत्र निर्माण केल्यास आपलें  
महत्त्व कमी पडेल, याकारितां आपणच याच्या  
पोटीं जावें; असा संकल्प करून देवश्रेष्ठ इंद्र  
यानें आपल्या तेजाचा अंश कुशिकाच्या  
वीर्यांत मिसळून दिला; व त्या वीर्यापासून  
कुशिकाला पुढें गाधी नांवाचा पुत्र झाला. हा  
कुशिकपुत्र म्हणजे प्रत्यक्ष इंद्रच, हें निराळें  
सांगवयास नको. हा गाधी कुशिकाच्या ज्या  
स्त्रीचे पोटीं जन्मला, ती पुरुकुत्स नांवाच्या  
राजाची कन्या होती व तिला पौरुकुत्सी असें  
म्हणत. या गाधीला सत्यवती नांवाची मोठी  
थोर व शुभलक्षणी कन्या झाली. ही कन्या  
गाधी राजानें भृगुपुत्र जो ऋचीक त्यास दिली.  
ऋचीकाचें हिच्यावर फारच प्रेम बसलें. तेव्हां  
हिला पुत्र द्यावा व हिच्या बापालाही द्यावा  
म्हणून ऋचीकानें तिजकडून तिजकरितां एक  
व तिचे आईकरितां एक चरू तयार करविला,  
व तिला म्हणाला कीं, हे प्रिये, हा चरू तू  
खा; आणि हा जो दुसरा आहे तो तुझ्या  
आईनें खावा. हा खाल्ल्यानें तुझ्या आईला,  
बड्या बड्या क्षत्रियांना चीत करणारा, क्षत्रिय-  
मंडळांत केवळ अजिंक्य असा एक मोठा  
दीप्तिमान् अस्सल क्षत्रियपुत्र होईल; व तुलाही,  
हे कल्याणि, मोठा शहाणा, शमशील व

तपोनिष्ठ असा अस्सल ब्राह्मणपुत्र या चरूच्या प्रभावानें होईल.

याप्रमाणें स्वखीला चरूंची व्यवस्था सांगून भृगुपुत्र ऋचीक याचा सदैव तपाकडे ओढा असल्यामुळें स्वखीला घेऊन तपश्चर्येसाठीं अरण्यांतच गेला. इकडे त्याचा सासरा गाधिराजा हा सहकुटुंब तीर्थयात्रेला निघाला होता. तो आपल्या मुलीला भेटावें म्हणून ऋचीक जेथें वनांत होता तेथें आला. तेव्हां आईला पाहून सत्यवतीला चरूची आठवण झाली. तिनें ते दोन्ही चरू ऋचीकापासून मागून घेऊन आपल्या आईपुढें ठेविले, व या चरूचें सामर्थ्य असें असें आहे म्हणून तिनें आपल्या आईला भरवून सांगितलें. पुढें आईनें दुर्दैवबळानें मूल पडून अशी चूक केली कीं, आपला चरू मुलीला दिला व तिचा होता तो आपण खाल्ला. या चुकीचा परिणाम असा झाला कीं, सत्यवतीचे ठिकाणीं दिसण्यांत मोठा उग्र, कांतीनें जाज्वल्य व क्षत्रियांचा केवळ काळ असा गर्भ राहिला, व ऋचीक ऋषि ध्यानस्थ असतां ही गोष्ट त्यांच्या ध्यानांत आली; आणि ते स्वखीला म्हणाले, 'हे कल्याणि, हे सुंदरि, तुझ्या आईनें चरूची उलट पालट करून मोठी फसगत केली ! कारण, तुझ्या पोटी ( शांत असा ब्राह्मण न येतां ) अति दारुण व क्रूरकर्मी असा क्षत्रिय निपजेल, व जो भाऊ होईल तो मोठा तपोधन व प्रत्यक्ष वेदमूर्तीच होईल. कारण, तुला काय सांगूं ? माझे तपोबल खर्चून अखिल वेद त्या चरूचे ठिकाणीं ओतला होता. 'तें ऐकून सत्यवती आपल्या पतीची मनधरणी करून म्हणाली, 'असला क्रूर ब्राह्मणाधम पुत्र मला न व्हावा.' तेव्हां ऋचीक म्हणाला, 'हे कल्याणि, असला क्रूर पुत्र व्हावा म्हणून माझाही कोठें संकल्प होता; ( मी जर ब्राह्मण आहे तर क्रूरकर्मी पुत्राची इच्छा कां करूं ? ) पोटीं उग्र

पुत्र होणें हें आईबापांच्या वृत्तीचें फळ असतें. यावर सत्यवती पुन्हा म्हणाली, 'हें उत्तर कोणाला सांगवें ? आपण मनांत आणाल तर नवी सृष्टि निर्माण कराल; मग माझ्या मनाजोगा पुत्र घाल यांत संशय काय ? तर मला सरळ बुद्धीचा व शमशील असा पुत्र आपण दिलाच पाहिजे. तथापि, हे द्विजश्रेष्ठा, जर झाली गोष्ट अन्यथा करतां येतच नाहीं असें असेल तर मी ज्या लक्षणांचा पुत्र मागतें आहे त्या लक्षणांचा मला व आपणाला निदान पुत्र म्हणजे नातु तरी व्हावा.' हे सत्यवतीचे शब्द ऐकून ऋचीक प्रसन्न होऊन म्हणाला, 'हे सुंदरि, हे कल्याणि, देणेंच झालें तर मला पौत्र देणें आणि पुत्र देणें यांत कांहीं अंतर नाहीं. मी माझ्या तपोबलानें कोणताही देऊं शकेन. आणि तुला जर असल्या पुत्राचीच हौस आहे तर तुझ्या मनाप्रमाणेंच होईल जा.'

ह्या आशीर्वादानंतर अल्पकालानेंच सत्यवतीला जमदग्नि नांवाचा मोठा शांत, दांत व तपोनिरत असा पुत्र झाला. ऋचीकानें चरू-संबंधें केलेल्या मूळच्या योजनेंत विपर्यास झाल्यामुळें त्या चरूचे ठिकाणीं स्थापलेल्या रुद्र व विष्णु यांच्या अंशांची अदलाबदल झाली होती. तथापि, ऋचीकानें देवताराधन केल्यामुळें जमदग्नि हा विष्णूच्या शांत अंशानेंच जन्मास आला. असो; ती सत्यधर्मपरायण व पुण्यशील अशी ऋचीकपत्नि जी सत्यवती तीच पुढें हल्लीं कौशिका या नांवानें लोकांत प्रसिद्ध असलेली महानदी झाली.

इक्ष्वाकु वंशांत रेणु नांवाचा कोणी राजा होता. याला कामली नांवाची एक कन्या होती. हिला कामली रेणुका असेंही म्हणत. या

१ या ग्रंथांत, या मुलीचें 'कामली' हें मुख्य नाम किंवा विशेषनाम व रेणुका हें एक प्रकारचें पैतृकनाम असें धरिलें आहे. तथापि, जगांत तिची प्रसिद्धी रेणुका याच नामानें आहे.

रेणुकेचे ठिकाणीं ऋचीकपुत्र जमदग्नि यानें सर्व विद्यांत निपुण, धनुर्वेदांत पारंगत, क्षत्रियांचा काळ व तेजानें केवळ चेतलेला अग्नि अशा प्रकारचा अत्यंत दारुण पुत्र उत्पन्न केला. याला जामदग्न्यराम असें म्हणतात. याप्रमाणें और्व ऋषीचा पुत्र ऋचीक याच्या तपोवीर्यानें ब्रह्मवेत्त्यांत वरिष्ठ व मोठा यशस्वी, असा जमदग्नि हा पुत्र सत्यवतीच्या पोटीं आला. त्याचा मधला भाऊ शुनःशेफ हा झाला, व शुनःपुच्छ हा कनिष्ठ; असे हे तिघे भाऊ. इकडे कुशिकपुत्र गाधि यानें तप, विद्या व शम यांनीं युक्त असा विश्वामित्र हा पुत्र उत्पन्न केला. हा मोठाच पराक्रमी झाला. यानें ( क्षत्रिय असून ) ब्रह्मर्षीचें साम्य संपादून सप्तर्षींच्या मालिकेंत जागा पटकाविली. या धर्मनिष्ठ विश्वामित्राला कोणी विश्वरथही म्हणत. हा कौशिकाचें वंशवर्धन करणारा पुत्र कौशिकाला भृगूच्याच ( ऋचीकाच्या ) प्रसादानें झाला. या विश्वामित्राला तिन्ही लोकांत विख्यात असे देवरात-प्रभृति बरेच पुत्र झाले. हे राजा, मी त्यांचीं नांवें सांगतों तीं ऐक. शालावतीनामक स्त्रीचे ठिकाणीं त्यानें हिरण्याक्ष, देवश्रवा व ज्याचे संततीला पुढें कात्यायन असें नांव पडलें तो कति, असे हे तीन पुत्र उत्पन्न केले. रेणु-संज्ञक स्त्रीचे ठिकाणीं रेणुमान्, सांक्रुति, गालव, मुद्रल, मधुच्छंद, जय व देवल; व अष्टक, कच्छप आणि हारित असे तिघे दृषद्वतीचे ठिकाणीं. हे सारेही विश्वामित्राचे पुत्र. हे सर्वच कुशिककुलांत मोठे विख्यात पुरुष जन्मले. यांची पुढील संततिही मोठी इतिहासप्रसिद्धच आहे. पाणीन, बभ्रुव, करजप्य, देवरात, शालंकायन बाष्कल, लोहित, यामदूत, कारीषव, सौश्रुत, कौशिक, तसेच आणखी सैधवायन—अशीं हीं बारा कुळें देवराताच्या वंशांत उदयास आलीं. देवल व रेणव हीं रेणूच्या वंशांत; याज्ञवल्क्य, अघ-

मर्षण, औदुंबर, अभिष्णात, तारकायन व चुंचुल, हे सहा शालावतीचे पौत्र व हिरण्याक्षाचे पुत्र. सांक्रुत्य, गालव, बादरायणी हेही यां-शिवाय विश्वामित्राचीच संतति होत. शिवाय प्रवरभेदानें ज्यांचा इतरांशीं विवाह होऊं शकतो असे या कौशिक कुलांत किति तरी पुरुष उत्पन्न झाले. हे इतके प्रतिष्ठित होते कीं, यांचा एकीकडे पौरवकुलाशीं व एकीकडे वसिष्ठ ब्रह्मर्षींच्या कुलाशीं—याप्रमाणें ब्राह्मण व क्षत्रियांचा मिसळीचा संबंध झाला, ही गोष्ट सर्वश्रुतच आहे. विश्वामित्राच्या सर्व मुलांत शुनःशेफ हाच वडील समजला जातो. हा वास्तविक पाहातां जमदग्नीचा कनिष्ठ भ्राता, या नात्यानें भृगुकुलांत असतां पुढें तो कौशिक कुलांत आला. हा शुनःशेफ हरिदश्वाच्या यज्ञांत पशूच्या ऐवजीं योजिला जाणार होता. परंतु देवांनीं त्याला उचलून विश्वामित्राच्या हवालीं केला. तेव्हां देवांनीं दिला, अशा समजुतीनें त्याला इतउत्तर देवरात असें म्हणूं लागले. असो; हे देवरातप्रभृति सात बंधु विश्वामित्राचे पुत्र असून त्यांशिवाय विश्वामित्राला दृषद्वतीपासून अष्टक नांवाचा एक आठवाही पुत्र होता. या अष्टकाला लौहि नांवाचा पुत्र झाला.

याप्रमाणें येथवर मीं तुला जन्हूचा वंश सांगितला. आतां यापुढें आयूचा वंश सांगतों.

## अध्याय अष्टाविसावा.

—:—

### आयुवंशकथन.

वैशंपायन सांगतात:—महात्म्या आयूचे पुत्र पांच होते. हे सर्वही मोठे शूर असून महारथी होते. स्वर्भानु जो राहु त्याची कन्या प्रभा तिजपासून हे झाले. हे राजा, यांपैकीं नहुष प्रथम जन्मला. नंतर वृद्धशर्मा, रंभ, रजि व अनेना. हे सर्वही त्रैलोक्यांत विख्यात

होते. यांपैकी रजीने पांचशें पुत्र उत्पन्न केले. हे सर्वही राजेय या नांवाने विख्यात असून त्यांचे प्रत्यक्ष इंद्रालाही भय पाडणारे असे एक विख्यात क्षत्रियमंडळच बनले. पुढे एकदां देव व दानव यांमध्ये एक भयंकर लढाई उत्पन्न झाली. त्या वेळीं देव व असुर हे दोघेही ब्रह्मदेवाकडे येऊन म्हणाले, 'हे भगवन्, आम्हां दोघापैकीं या युद्धांत विजयी कोण होईल तें ऐकण्याची आमची इच्छा आहे. आपण सर्व देवांत श्रेष्ठ असें समजून आम्ही आपणास प्रश्न करीत आहों, तरी आपला अभिप्राय काय तो सांगावा.'

ब्रह्मदेव म्हणाले:—बाबाहो, खरी गोष्ट अशी आहे की, आयुःपुत्र राजा हा तुम्हां दोघापैकीं ज्यांच्या बाजूने शस्त्र घेऊन युद्धास उभा राहील त्यांची बाजू त्रिभुवनांत विजयी होईल यांत संदेह नाही. तुम्ही हें खास समजा की, जेथें राजा तेथेंच धैर्य, व जेथें धैर्य तेथेंच संपत्ति, व जेथें धैर्य आणि संपत्ति तेथेंच धर्म, आणि धर्म तेथेंच जय हें उघडच आहे.

ब्रह्मदेवांचें हें भाषण ऐकून देव व दानव या दोघांनाही मोठा आनंद झाला, व आपल्या पक्षाचा जय व्हावा, अशी दोघांचीही इच्छा असल्यामुळे दोघेही आपल्या पक्षाचें सेनानायकत्व रजीने पतकरावे म्हणून रजीची प्रार्थना करण्याकरितां त्याकडे आले. दोघांनाही आपला स्याजवर हक्क आहे असें वाटत होते. कारण, हा परम तेजस्वी राजा हा एका बाजूने सोमवंशीय होता, तर मातृपक्षानें तो असुरपक्षीयच होता. कारण, राहूची कन्या जी प्रभा तिचा तो मुलगा, व म्हणून राहूचा नातु; यामुळे देव व दानव हे दोघेही मोठ्या उत्सुकतेने रजीकडे गेले, व दोघेही आपआपल्यापरी 'आमच्या पक्षाचा जय व्हावा म्हणून तूं आपलें श्रेष्ठ धनुष्य घेऊन आमचे बाजूने

उभा रहा,' असें त्याला म्हणूं लागले. रजीने पाहिलें की, हे देव व दैत्य हे दोघेही आपआपल्या मतलबासाठीं भांडत आहेत. तर आपणही कां कमी करा? आपणही या वेळीं युद्ध करणेंच तर लौकिक संपादून शिवाय आपला मतलबही साधून घ्यावा. असें मनांत आणून तो प्रथम इंद्रप्रभृति देवांना म्हणाला, 'हे देवहो, मी तुम्हांस साहाय्य करावें असें असेल तर मी तुमच्या बाजूस उभा राहून युद्धांत सर्व दैत्यगणांस जिंकिलें असतां तुम्हीं मला हक्कानें इंद्राचें पद दिलें पाहिजे. ही गोष्ट कबूल असेल तर मी तुमचा.' देवांच्या हे शब्द प्रथम कानीं पडतांच त्यांना फार आनंद होऊन ते त्या भरांत रजीला म्हणाले, "हे राजा, फार ठीक आहे; तुझ्या मनांत जशी इच्छा असेल तशी ती पुरी होऊं दे. आमची तयारी आहे."

याप्रमाणें देवांचें उत्तर मिळाल्यावर रजीने जो देवांना प्रश्न केला होता, तोच तेथें आलेल्या मुख्य असुरांना केला. परंतु, असुर पडले गर्विष्ठ, त्यांना केवळ स्वार्थापुरते पहाणें. (रजीला इंद्रत्व देणें हें त्यांना कोठून खपणार?) म्हणून ते कुर्च्यातच त्याला म्हणाले, "हें कसे घडावें; आमचा इंद्र प्रज्ञाद हा ठरलेलाच आहे; व त्याला विजय मिळवून देण्यासाठीं तर ही सारी आमची खटपट आहे. तेव्हां तुझे म्हणणें आम्हांला मान्य नाही. तूं आपला खुशाल देवांचा करार पतकरून त्यांनाच साह्य हो. आम्हांला भलत्याच अटीवर तुझी गरज नाही."

रजीने म्हटलें, 'फार बरें.' त्याबरोबर देव पुन्हा पुढें सरून म्हणाले, "हे राजा, तुझ्या इच्छेप्रमाणें आम्ही तुला इंद्र करितों. तूं आतां आमच्या बाजूने उभा रहा." याप्रमाणें दैत्यांनीं नेमणूक करितांच रजीने तडाका लाविला; व वज्रपाणि इंद्रालाही जे

दानव अजिंक्य झाले होते त्या सर्वांचा फडशा पाडला. त्या मोठ्या पाणीदार व जितेंद्रिय अशा समर्थ योद्ध्याने देवांची जी सर्व संपत्ति विनष्ट झाली होती ती दैत्यांना ठार करून सगळींच्या सगळी परत आणिली. याप्रमाणे रजीने अंगीकारिलेली कामगिरी पुरी केलीस पाहून इंद्रासहित देव त्याचा गौरव करण्यासाठी पुढे आले; व इंद्र त्याला म्हणाला, 'हे बाबा रजिराजा, येथे असलेल्या आम्हां सर्व देवांचा तूं इंद्र झालास, ही गोष्ट निर्विवाद आहे. मला तर यांत मोठाच आनंद झाला आहे. कारण मी आजपासून तुला माझा पिता समजून मी आपल्याला तुझा पुत्र म्हणविणार. कारण, असे केल्याने मी जास्तीच अबूला चढेन, असा माझा भरंवसा आहे.' इंद्राचे हे वचन खरे पहातां लबाडीचे होतें, व ते रजीला रुचावयास नको होतें; पण इंद्राने तशीच माया पसरल्यामुळे असल्या वस्ताद राजाला देखील भूल पडली, व इंद्राचे कपट ध्यानीं न येतां तो मोठ्या प्रसन्न मनाने इंद्राला म्हणाला कीं, ठीक आहे. तूं माझे पुत्रत्व कबूल केलेंस यांत सर्व आलें. (आणखी इंद्राची निराळी गादीच मला काय करावयाची आहे?) याप्रमाणे रजीची समजूत पडून जिकडच्या तिकडे झालें.

पुढे कालगतीने तो देवतुल्य रजीराजा इहलोक सोडून स्वर्गी गेला. त्याच्या पश्चात् त्याचे सर्वही पांचशें पुत्र हे इंद्राकडे म्हणजे स्वर्गलोकांत आले, व त्याला म्हणाले कीं, तूं आमच्या बापाचा जर पुत्र म्हणवितोस तर आमचा भाऊ झालास. तेव्हां, तूच एकटा हें स्वर्गाचे राज्य भोगणार कोण? आमचे हिस्से टाक. असे म्हणून त्यांनीं इंद्रावर मोठी गर्दी केली. तेव्हां इंद्राने निरुपायास्तव त्यांना वाटे दिले. याप्रमाणे रजीपुत्रांनीं आपआपले हिस्से बळकावून इंद्र हा राज्याला व यज्ञांतील हवि-

र्भागाला बहुतेक मुकल्यासारखा होऊन बराच वेळ झाल्यावर गुरु बृहस्पतीकडे जाऊन त्याला म्हणाला, 'गुरो, हे ब्रह्मर्षे, हे प्रभो, पहा बरे माझी कोण दशा झाली आहे? या रजीपुत्रांनीं माझे सर्व राज्य घेऊन मला कसे निस्तेज, दुर्बल व मूढ करून सोडलें आहे? मला पुरेसे पोटाला देखील मिळत नाही व त्यामुळे हीं माझीं हाडे निघाली आहेत, हीं आपण पाहात-च आहां. काय सांगूं? मी मनांत अगदीं खिन्न झालों आहे. आतां आपणच कांहीं कृपा कराल तर बरे.'

इंद्राचे हे वचन ऐकून बृहस्पति म्हणाला, 'हे इंद्रा, तूं जर अशी गोष्ट मला पूर्वी कळवितास तर तुझ्या कल्याणासाठीं मला जी एक भलतीच गोष्ट करावी लागली ती करावी लागतीना. तथापि, तूं मजकडे आलाच आहेस त्या अर्थी, हे देवेंद्रा, जेणेकरून तुझे राज्य व हविर्भाग तुला त्वरित परत मिळेल तसला यत्न मी करीन; यांत संशय मानूं नको. हे बेटा, तूं कांहीं खेद करूं नको, आणि कष्टी होऊं नको. मी बोललों आहे असें करीन, जा.'

याप्रमाणे इंद्राला आश्वासन दिल्यावर बृहस्पतींनीं इंद्राचे जेणेकरून तेज वाढेल असेल कांहीं एक कृत्य केलें; व त्याचे उलट त्या रजिपुत्रांच्या बुद्धीला मोह पडेल अशीही एक युक्ति केली. ती युक्ति हीच कीं, धर्माला अत्यंत विरुद्ध, तर्कटांत (तर्कशास्त्रांत) पहिली प्रत, व खोट्या लोकांना अनुकूल, अशा तऱ्हेचे एक नास्तिक शास्त्र (ज्यांत धर्म नाही, ईश्वर नाही, असे प्रतिपादन केलें आहे) बृहस्पतीसारख्या सत्ब्राह्मणाने रचिलें. हें शास्त्र कार्नी पडतांच जे विशेष धार्मिकबुद्धीचे लोक आहेत त्यांच्या कपाळाची शीरच उठते. त्यांना ते ऐकावेसेही वाटत नाही. परंतु, रजीचे ते पांचशें पुत्र बेटे ते अल्पमतीचे होते, त्यांना

हैं बृहस्पतीचें नवीन शास्त्र पटलें. वास्तविक पाहातां त्या शास्त्रांतील सिद्धांत न्यायाला सोडून होते, पण त्यांचा कर्ता बृहस्पति, त्याची बोलण्याची सफाई त्याची त्यालाच. त्यानें ते सिद्धांत असे कांहीं सजवून मांडले होते कीं, त्यांची त्या मूर्खांवर तेव्हांच छाप बसली, व तेच सिद्धांत प्रमाण मानून ते चालत आलेल्या सनातन धर्मशास्त्राचे द्वेष्टे बनले, व त्यामुळें हातून अधर्म घडून ते सर्वही पातकी क्षयाच्या पंथाला लागले. या नव्या मतानें त्यांच्या बुद्धीला पक्कीच भूल पडली. ते ब्राह्मणांचा द्वेष करूं लागले, विषयासक्त होऊन उन्मत्त झाले; व काम आणि क्रोध यांच्या तडाक्यांत सांपडून धर्मभ्रष्ट झाले; अखेर निर्वार्य व पराक्रमहीन झाले. त्यांची अशी दशा झाली, तेव्हां इंद्रानें संधी साधून त्यांना पुद्दिशीं मारून टाकिलें व पुनरपि आपली देवमुख्याची गादी मिळविली. याप्रमाणें एकवार त्याला जें राज्य दुष्प्राप्य वाटत होतें तें पुन्हा प्राप्त होऊन देवेंद्र अति सुखी झाला.

जे कोणी इंद्राचें हें स्वस्थानापासून भ्रंश पावणें व पुन्हा स्थानारूढ होणें श्रवण करतील किंवा मनन करतील, त्यांना कधीही दुष्टांपासून त्रास होणार नाही.

### अध्याय एकुणतिसावा.

—:—

#### काश्यवर्णन.

वैशंपायन सांगतात:—हे राजा, (रजीचा वंश सांगितला, आतां रंभाचा सांगावयाचा परंतु) रंभाला अपत्यच नव्हतें, म्हणून आतां मी अनेनाचा वंश सांगतो. या अनेनाला मोठा विख्यात असा प्रतिक्षत्र हा पुत्र झाला. प्रतिक्षत्राचा पुत्र सृजय नांवानें प्रसिद्ध झाला. सृजयाचा पुढें जय; आणि जयाचा पुढें विजय. विजयाला कृति हा पुत्र झाला; व कृतीला हर्यश्च झाला. या

हर्यश्चाच्या पोटीं प्रतापी राजा सहदेव जन्मला. सहदेवाला पुढें नदीन नांवाचा मोठा धार्मिक पुत्र झाला. या नदीनापासून जयत्सेन व जयत्सेनापासून संकृति. संकृतीला मोठा यशस्वी व धर्मनिष्ठ असा क्षत्रधर्मा हा पुत्र झाला. याप्रमाणें हा अनेनाचा वंश झाला. आतां ज्याला कधीं कधीं वृद्धशर्मा असेंही म्हणत, त्या क्षत्रवृद्धाचा वंश ऐक. या क्षत्रवृद्धाला सुनेत्र नांवाचा मोठा लौकिकवान् पुत्र झाला. सुनेत्राला पुढें मोठे धार्मिक असे तीन पुत्र झाले. काल व शल हे दोघे, आणि तिसरा राजा गृत्समद. गृत्समदाला पुढें शुनक झाला. या शुनकाला ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र या चारी वर्णांची संतति झाली. ती सर्वही शौनक या नांवानेंच मोडत होती. असो; या गृत्समदाचा जो शल नामक बंधु सांगितला त्याचे पोटीं आर्ष्टिषेण हा आला. आर्ष्टिषेणाचा पुत्र काशक. काशकाचा काशय आणि दीर्घतप. पैकीं दीर्घतपाला धन्व नामक पुत्र झाला; व हाच पुढें धन्वंतरी नांवानें विख्यात झाला. याचा इतिहास असा आहे कीं, हा धन्वंतरी प्रथम समुद्रमंथनाचे वेळीं देवयोनींत निर्माण झाला होता; परंतु, पुढें या दीर्घतप राजानें बहुत कालपर्यंत बुद्धिपुरःसर पुत्रप्राप्त्यर्थे जेव्हां मोठेंच तप केलें, तेव्हां तोच धन्वंतरी मनुष्यरूपानें त्या दीर्घतपाचे पोटीं आला.

जनमेजय विचारितो:—धन्वंतरी हा देव असून या मर्त्यलोकीं मनुष्यकोटींत जन्मास कां आला हें ऐकण्याची माझी इच्छा आहे. याकरितां, हे वैशंपायना, मला त्याचें जन्मवृत्त जसेंच्या तसेंच सांगा.

वैशंपायन सांगतात:—हे भरतश्रेष्ठा, ऐक. मी धन्वंतरीची उत्पत्ति तुला सांगतो. पूर्वीं ज्या वेळीं अमृतप्राप्तीसाठीं ( देवासुरांनीं ) समुद्रमंथन केलें त्या वेळीं धन्वंतरी हा समुद्रा-

तून उत्पन्न झाला. तो जों समुद्राबाहेर आला, तोंच श्रीविष्णु त्याचे दृष्टीस पडल्यामुळे कांहीं इष्टकार्य सिद्ध व्हावें, हा हेतु मनांत धरून विष्णूचें ध्यान करीत उभा राहिला. तो जन्मतःच सर्वांगसुंदर असून त्याचे भोंवतीं एक तऱ्हेची शोभा पसरली होती. हा समुद्राच्या जलांतून उत्पन्न झाला, ही गोष्ट ध्यानांत आणून श्री-विष्णूनीं त्याला तूं अब्ज ( अप् म्हणजे पाणी त्यापासून ज म्हणजे जन्मलेला ) आहेस, असें म्हटलें; व तेव्हांपासून त्याचें अब्ज हेंच नांव पडलें. मग तो अब्ज श्रीविष्णूला म्हणाला, ' हे प्रभो, मी आपला पुत्र आहे. याकरितां कृपा करून मला यज्ञांत हविर्भाग व देवमंडळींत बसण्याला जागा, हीं आपण द्यावीं. कारण आपण देवांचे मालकच आहां. ' याप्रमाणें धन्वंतरीनें प्रार्थना करितांच विष्णूनें खरी स्थिति काय होती, ती मनाशीं तपासून पाहून त्याला उत्तर केलें कीं, हे पुत्रा, तूं म्हणतोस खरें, परंतु फार प्राचीन काळींच यज्ञामध्यें भाग घेण्याचा ज्यांचा हक्क पुरत होता, त्या त्या देवांनीं आपले विभाग आपआपसांत ठरवून ही गोष्ट सरवून टाकिली आहे; व त्यांच्या त्या ठरावाप्रमाणेंच मोठमोठाल्या ऋषींनींही आप-आपल्या यज्ञांत देवांना हिस्सेरशीनें भाग दिले आहेत. बाबारे, तूं कालचा पोर. तूं देवांच्या पंक्तीस कसा बसणार ? तेव्हां मुख्य यज्ञीयांत तुझा प्रवेश होणें शक्यच नाही. बरें; बारीक सारीक होमांत तुझा भाग ठरवावा तर तुझ्या थोरवीला रुचणार नाही. याकरितां मी सांगतो तें ऐक. पुढल्या जन्मीं लोकांत तुझी अतिशय कीर्ति होईल; व तूं आईचे गर्भांत आहेस तोंच अणिमादि अष्टसिद्धि तुला माळ घालतील; व मग त्याच शरीरानें तुला देवत्व प्राप्त होऊन ब्राह्मणगण तुझ्या उद्देशानें चरु, मंत्र, व्रत व जाप्यही करतील. तूही लोक-

हितार्थ अष्टांगांनीं युक्त असा आयुर्वेद निर्माण करशील. मी जी गोष्ट तुला सांगतो ती अशी झालीच पाहिजे. कारण, ब्रह्मदेवानें ही योजना पूर्वींच करून ठेविली आहे. या-करितां जेव्हां पुढलें द्वापर युग येईल तेव्हां तूं निखालस मी सांगतो आहे त्याप्रमाणें जन्मास जाशील. याप्रमाणें धन्वंतरीला वर देऊन श्री-विष्णु तेथेंच अंतर्धान पावले.

दुसरे द्वापरयुग जेव्हां आलें त्या वेळीं काशीचा राजा सुनहोत्राचा पुत्र दीर्घतपा हा पुत्रप्राप्तीच्या इच्छेनें तप करूं लागला. त्या तपांत त्यानें असा उद्देश ठेविला कीं, जी देवता आपल्याला पुत्र देईल तिचीच आराधना करावयाची. अशी देवता अब्ज म्हणजे धन्वंतरी आहे, असें त्याला वाटून त्यानें पुत्रप्राप्त्यर्थ त्याचीच आराधना केली. त्यावेळीं तो भगवान् अब्ज संतुष्ट होऊन त्या राजाला म्हणाला, " हे सुव्रता, तुझी इच्छा असेल तर वर माग. तो मी तुला देईन. "

राजा म्हणाला:—'हे भगवन्, आपण खरोखरच मजवर प्रसन्न असाल तर आपणच माझे कीर्तिमान् पुत्र व्हा.' राजाची ती मागणी कबूल करून धन्वंतरी तेथेंच अंतर्धान पावले; व कांहीं काळानें त्या राजाच्या घरांत देव धन्वंतरी पुत्ररूपानें उत्पन्न झाले. या जन्मीं या धन्वंतरीना काशी-राजा ही पदवी होती. कोणताही रोग नाहीसा करण्याचें सामर्थ्य त्याचें अंगीं होतें. कारण, वैद्यांची विद्या म्हणजे आयुर्वेद व वैद्यक्रिया हीं त्यांनीं भरद्वाज मुनीपासून संपादिलीं होती. पुढें त्यांनीं या आयुर्वेदाचे आठ भाग वेगळे करून आपल्या शिष्यांना पदविले. असो; या

१ कायचिकित्सा, २ बालचि०, ३ ग्रहचि०, ४ ऊर्ध्वांग चि०, ५ शल्यतंत्र, ६ विषचि०, ७ रसायन, ८ वाजीकरण. हीं आयुर्वेदाचीं आठ अंगें. वाग्भटाचे ग्रंथास, अष्टांगहृदय म्हणतात.

धन्वंतरीचा पुत्र केतुमान् म्हणून झाला. केतुमानाला पुढें भीमरथ नांवाचा वीर पुत्र झाला. याचा पुत्र राजा दिवोदास. हा मोठा धर्मात्मा असून वाराणशीचा मालक होता. याच्या कारकिर्दींत वाराणशी नगरी ही ओस पडली. पुढें बहुत कालानें क्षेमकनामक राक्षसानें—हा रुद्राचा सेवक होता. ती पुन्हा वसविली. ही ओस पडण्याचें कारण, रुद्रानुचर निकुंभ यानें त्या नगरीला ‘तूं एक सहस्र वर्षेपर्यंत ओस पडशील,’ असा शाप दिला होता—त्याचा हा शाप दिवोदासाचे कानीं येतांच त्यानें आपल्या मूळ प्रांताच्या सीमेला लागूनच गोमती नदीचे तीरी दुसरी नवीन एक टुमदार राजधानी वसविली. नाहीतरी वाराणशी ही मूळची दिवोदासाची नव्हती. ती भद्रश्रेण्यराजाची नगरी होती. पुढें ती भद्रश्रेण्याचे शंभर पुत्रांचे ताब्यांत गेली. ते सर्वही मोठे धनुर्धारी होते. तथापि, त्या सर्वांना मारून त्या बलाढ्य दिवोदासानें भद्रश्रेण्याची ती राजधानी आपण बळकाविली.

जनमेजय विचारितोः—हे वैशंपायना, रुद्रगण निकुंभ हा मोठा धर्मनिष्ठ होता, असें असून त्यानें वाराणशीसारख्या सिद्धक्षेत्राला शाप दिला हें काय ?

वैशंपायन सांगतातः—राजर्षि दिवोदास याचे हातीं ती वाराणशीसारखी समृद्ध नगरी लागल्यावर तो तेथें मोठ्या थाटमाटानें राहूं लागला. इकडे अशी गोष्ट झाली कीं, महेश्वर शंकर यांनीं नुकतेंच लग्न केलें होतें; व आपल्या नव्या लाडक्या बायकोची हौस पुरविण्यासाठीं ते आपल्या सासऱ्याचे जवळ रहात होते. त्या वेळीं खुद्द शंकरांच्या आज्ञेवरून व त्यांच्या पूर्वीच्या उपदेशावरून शंकरांचे तपोनिष्ठ व विशेष सुरूष जे पार्षद नामक गण ते पार्वतीची खुषामत करीत असत. त्या योगानें पार्वतीला मोठी मौज वाटे व आनंदही होई.

परंतु, ( आपल्या तरण्या पोरीच्या भोंवतीं हे टोळभैरव जमून त्यांनीं तिची थडामस्करी करावी ) हा प्रकार तिची आई मेना हिला गोड वाटेना. ती आपल्या पोरीची व तिच्या नवऱ्याचीही वारंवार निर्भर्त्सना करूं लागली. ती म्हणाली, “ इश; कोणगवाई तुझ्या नवऱ्याचें लक्षण हें ! तो व त्याचे पार्षदगण सगळेच मेले भ्रष्टचे. मोठा आपल्याला महेश्वर म्हणवितो; पण पहावें तों सदा अठरा विश्वे दरिद्र खिळलेलें आहे ! आणि शील तें त्याला कसें तें नाहीच. ” याप्रमाणें आईनें केलेली आपल्या नवऱ्याची निंदा ऐकून स्त्रीस्वभावाप्रमाणें तिला सहजच फार राग आला. पण आईपुढें तो हंशावर नेऊन ती तशीच आपल्या नवऱ्याजवळ आली. महादेव पाहातात, तों तिचा नूर अगदीं उतरून गेला आहे, तेव्हां त्यांनीं विचारिलें, ‘ कां ? ’ ती म्हणाली, ‘ गडे, आतां मला येथें राहावयाचें नाही. मला आतां आपल्या सत्तेच्या घरांत घेऊन चला. ’ स्त्रीचें तें वचन ऐकून आतां आवडीजोगी कोणती जागा निवडावी, या विचारांत महेश्वरानें आपल्या मनाशीं सर्व लोक न्याहाळून पाहिले. शेवटीं त्याला, हे कुरुनंदना, या भूतलावरील सिद्धिक्षेत्र जी वाराणशी ती आवडली. परंतु, त्या नगरींत दिवोदासाची वस्ती आहे, हें ध्यानीं येतांच आपल्या पाठीशीं निकुंभ नांवाचा जो गण उभा होता त्याला हांक मारून तो महातेजस्वी शंकर म्हणाला, ‘ हे गणश्रेष्ठा, तूं वाराणशीला जाऊन ती नगरी खालीं कर. मात्र संभाळून आणि गोडीगुलाबीच्या उपायांनीं. कारण, तो दिवोदास राजा, फारच बलाढ्य आहे. ( त्यापुढें दंडेली चालणार नाही. )

शिवाज्ञेप्रमाणें तो निकुंभ वाराणशीपुरीला जाऊन तेथील कंडुक नामक एका नापिकाच्या स्वप्नांत जाऊन त्याला म्हणाला कीं, भल्या



माणसा, मी तुझें कोटकल्याण करीन, पण एक कर; तूं मला येथें जागा दे. म्हणजे हुबेहुब मजसारखा एक माझा पुतळा करून या तुझ्या गांववेशीजवळ बसव." असें सांगून गेल्यावर त्या न्हाव्यानें स्वप्नांत सांगितल्याप्रमाणें त्याची मूर्ति तयार करवून व राजाची आज्ञा मिळवून ती नगरवेशीजवळ स्थापित केली. मग त्यानें गंध, धूप, माल्य, अन्न, पान व बलिप्रदान, वगैरे सर्व प्रकारें त्याची मोठ्या समारंभांनें पूजा चालविली. पुढें त्या शहरांत तो एक चमत्कारच होऊन राहिला. जो तो नागरीक त्याची पूजा करूं लागला, व तो गणेश्वरही ज्याला जो इष्ट वाटेल तो वर देऊं लागला. असे वर त्यानें हजारोंना दिले. कोणाला पुत्र, तर कोणाला हिरण्य, तर कोणाला आयुष्य, याप्रमाणें त्यानें सर्व कांहीं इच्छा पुरविल्या. असें चाललें असतां दिवोदासाची पतिव्रता स्त्री राणी सुयशा ही राजाच्या आज्ञेवरूनच पुत्र मागण्यासाठीं तेथें आली. तिनें गणेश्वराची फारच उंची पूजा केली, आणि पुत्र द्यावा, अशी याचना केली. त्या पुत्रासाठीं पुन्हा पुन्हा कितीतरी वेळां येऊन तिनें पूजा केली. परंतु निकुंभ कांहीं केल्या तिला पुत्र देईना. त्याला असें करण्याचें कारणच होतें. तो म्हणाला, 'राजा मजवर रागावला म्हणजे माझें काम झालें.' दीर्घकाळ लोटूनही जेव्हां निकुंभ राणीला पावेना, तेव्हां राजाला क्रोध येऊन तो म्हणाला, 'हा काय चमत्कार आहे? हा नगरवेशीजवळ बसलेला पिशाच्च माझ्या नगर-जनांना मोठ्या प्रेमानें शेंकडों हजारों वर देत आहे, आणि खुद्द माझ्या नगरींत राहून, रोजच्या रोज माझ्या माणसांकडून पूजा घेऊन शिवाय पुत्रानिमित्त मी व माझ्या देवीनें वारंवार याचना केली असतांही मला पुत्र देत नाही किंवा एकही वर देत नाही, इतका हा

कृतघ्न कशानें झाला? बस. असें आहे तर याची पूजाबीजा कांहीं उपयोगी नाही. निदान मजकडून तरी होणार नाही. मी तर या दुष्टाचें मंदिर मोडून टाकणार.' असा निश्चय करून त्या दुष्ट, पापी, दुर्बुद्धि राजानें त्या गणेश्वराचें मंदिर मोडून टाकिलें. आपलें स्थान मोडलेलें पाहून गणेश्वरानें राजाला शाप दिला कीं, ज्या अर्थी मी तुझा कांहीं अपराध न करितां तूं माझा स्थाननाश केला आहेस, त्या अर्थी तुझी ही नगरी अकस्मात् ओस पडेल, हें समजून ठेव.

या शापावरून ती वाराणशी पुरी ओस पडली. इकडे निकुंभ हा शाप देऊन महा-देवाकडे गेला. त्याचे मागें वाराणशींतील लोक एकाएकीं दाही दिशा पळून गेले. याप्रमाणें जेव्हां ती नगरी खालीं झाली, तेव्हां महादेव शंकर यानें आपली गादी तेथें स्थापिली; व तेथें त्या दिवसापासून देव श्रीशंकर हा गिरि-कन्या दुर्गा हिशीं रममाण होऊन आनंदानें राहूं लागला. परंतु, देवी दुर्गा हिला तेथें वस्ती रुचेना. तेव्हां दुर्गादेवी शंकराला म्हणाली, 'मी नाहीं या वाराणशी नगरींत राहात. तुम्हीं कोठें तरी दुसऱ्या ठिकाणीं एखाद्या घरांत चला.' यावर देवानें उत्तर केलें कीं, मी मुळीं कधींच घरांत (शरीरांत) राहात नाहीं. कारण; अविमुक्त (म्हणजे जें त्रिकालीं-ही सोडलें जात नाहीं, असें जें आत्मस्वरूप तेंच) हेंच माझें घर आहे. म्हणून तूं म्हणतेस

१ नीलकंठांनीं याचा हेतु मोठा गमतीचा दिला आहे. ते म्हणतात, 'शंकर हा आत्मा व गिरिजा ही माया. आत्मा हा नित्यमुक्त असल्यानें त्याला वाराणशी या मुक्तिपुरींत सहजच वास रुचला. परंतु शंकर मुक्तिपुरींत राहिले असतां त्याचे संगतीनें अनेक संसारी जीव मुक्त होऊं लागले. तें पाहून मायेचें पोटां दुखूं लागले. कारण, तिला अशी भीती पडली कीं, या क्रमानें आपला संसार सुर्वीच संपुष्टांत येईल.'

तसल्या घरांत (संसारंत किंवा शरीरांत) मी येत नाही. तुला वाटेल तर तूं जा. या-प्रमाणें त्रिपुराचा अंत करणारा (स्थूल, सूक्ष्म व कारण या तीन शरीरांचा नाश करणारा) भगवान् त्रिनेत्र (श्रवण, मनन व निदिध्यसन हेच तीन नेत्र) हंसत हंसतच म्हणाला. या-प्रमाणें देवानें या वाराणशीरूप मुक्तिसेत्राला अविमुक्त असें स्वतःच नांव दिलें. परंतु, लौकिकदृष्ट्या मुक्तिपुरीला अविमुक्त म्हणणें हा एकपरी तिला शाप देण्यासारखेंच झालें. असो; सर्व देवांनीं नमस्कृत असा जो धर्मात्मा महेश्वर तो देवीसह या पुरींत कृत, त्रेत व द्वापर या तीन युगांत वस्ती करून असतो. परंतु कलियुग चालू झालें म्हणजे तेथून तो गुप्त होतो, व तो गुप्त झाला म्हणजे पुनरपि मनुष्यांची वस्ती तेथें होऊं लागते. याप्रमाणें वाराणशीच्या शापाचा व पुनर्वस्तीचा हा इतिहास झाला.

भद्रश्रेण्याचा पुत्र दुर्दम नांवानें प्रसिद्ध होता. हा बाल असें समजून केवळ दयेस्तव दिवोदासानें (त्याचे बाकीचे नव्याण्णव भाऊ मारिले त्या वेळीं) वगळिला. या दुर्दमानें हैहयाचें पुत्रत्व स्वीकारिलें व शिवाय बहुत दिवस चालत आलेलें वैर मिटवावें, या हेतूनें त्या भद्रश्रेण्यपुत्र क्षत्रियश्रेष्ठ दुर्दमानें त्याच्या बापाचें जें राज्य दिवोदासानें हिसकाविलें होतें तें परत घेतलें. परंतु, दिवोदासाला वृषद्वति या स्त्रीपासून प्रतर्दन नांवाचा एक पुत्र झाला होता. त्यानें तेंच राज्य अल्प वयांतच दुर्दमाचे हातून पुन्हा बळकाविलें. या प्रतर्दनाला वत्स व भार्ग असे दोन पुत्र होते. पैकीं वत्साला पुढें अलर्क हा पुत्र झाला. अलर्काचा पुढें सन्नति. हा अलर्क राजा काशींत राज्य करीत होता, हा ब्राह्मणांचा मोठा सत्कर्ता असून अत्यंत सत्यप्रतिज्ञ होता. या

अलर्क राजऋषीला पुरातन ऋषींनीं श्लोक-रूपानें असा आशिर्वाद दिला कीं, “हा काशी-कुलधुरीण अलर्क राजा रूप व यौवन यांहीं संपन्न राहून सासष्ट हजार वर्षपर्यंत नांदेल.” लोपामुद्रेच्या प्रसादानें याला हें इतकें दीर्घ आयुष्य प्राप्त झालें व त्याचप्रमाणें रूप व यौवन यांसह त्यानें अति विस्तीर्ण राज्याचाही उपभोग घेतला. पूर्वीं सांगितलेल्या गणेश्वर निकुंभानें वाराणशीपुरीला दिलेला शाप संपा-वयाची जेव्हां वेळ आली, त्या वेळीं या अलर्कानें क्षेमक राक्षसाला मारून पुनरपि ही रम्य वाराणशीपुरी वसविली. अलर्कपुत्र जो सन्नति याला सुनीथनामक धार्मिक पुत्र होता. सुनीथाला पुढें महायशस्वी क्षेम्य झाला. क्षेम्याला केतुमान्, केतुमानाला सुकेतु, सुकेतूचा धर्मकेतु, धर्मकेतूचा दाईज महारथी सत्यकेतु. सत्यकेतूचा पुत्र राजा विभु. विभूचा आनर्त्त; आनर्त्ताचा सुकुमार. सुकुमाराचा धृष्टकेतु. हा मोठा धार्मिक होता. धृष्टकेतूचा राजा वेणुहोत्र. वेणुहोत्राचा राजा भर्ग. अलर्कपिता जो वत्स त्याला त्यापासून वत्सभूमी म्हणून एक पुत्र झाला व त्याचा बंधु जो भार्ग त्याला भृगुभूमी झाला.

भृगुवंशांत उत्पन्न झालेले हे गालवांगिर-साचे वंशज सांगितले. यांजपासून पुढें ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य या तिन्ही जातींची हजारों संतति झाली. हे जनमेजया, याप्रमाणें काश-वंशीय राजांची हकीकत झाली. आतां नहु-पाचा वंश ऐकून घे.

१ या शब्दांचा अर्थ मन्मथनाथ दत्तांनीं पुरुषपर न करितां स्थानपर केला आहे, परंतु नीलकंठांनीं “पुलां-तर माहवत्सभूमिरिति” असा शेरा दिला आहे, तोच घरा.

## अध्याय तिसावा.

—:०:—

## ययातिचरित्र.

वैशंपायन सांगतात:—महातेजस्वी नहुष राजा यानें सुस्वधासंज्ञक पितरांच्या विरजा नामक कन्येचे ठिकाणीं इंद्रासारखे तेजस्वी सहा पुत्र उत्पन्न केले. त्यांचीं नांवें:—यति, ययाति, संयाति, आयाति, याति व सहावा सुयाति. यांपैकीं ययाति हा राजा झाला. खरें पाहतां ययाति हा दुसरा, आणि यति हा ज्येष्ठ; परंतु, त्याचा धर्माकडे भर फार असल्यानें तो आत्मचिंतनांतच गढून असे. त्याला गौ नांवाची कुकुत्स्थकन्या स्त्री मिळाली होती. मोक्षाची वाट धरून अखेर तो यति ब्रह्मरूपच झाला. उरले पांच. त्यांपैकीं ययातीनें सर्व पृथ्वी जिंकिली. त्याला शुक्राचार्याची कन्या देवयानी ही भार्या मिळाली. तिज-शिवाय वृषपर्वा नामक असुराची कन्या शर्मिष्ठा हीही याला भार्येचे ठिकाणीच होती. देवयानीनें यदु व तुर्वसु या दोघांस जन्म दिलें. व वृषपर्वाची कन्या जी शर्मिष्ठा हिनें द्रुपु, अनु व पुरु या तिघांस जन्म दिलें. या ययातीला इंद्रानें प्रसन्न होऊन केवळ मनोजवानें धांवणारे असे एकजात शुभ्र स्वर्गीय अश्व ज्याला जोडिले आहेत, असला परम देदीप्यमान व अस्खलितगति कांचन--मय रथ दिला होता. या रथाच्या साह्यानें हा आपली युद्धाची कामगिरी करीत असे. या श्रेष्ठ रथाच्या साह्यानें त्या दुर्धर्ष वीरानें एका सहा रात्रींत

सर्व भूमिजय केला. ययाति हा इंद्रासह सर्व देवांनाही अजिंक्य झाला. हा रथ पुढें बहुत कालपर्यंत पुरुकुलांतील राजांकडे होता. नंतर वसुनामक कौरवांपासून कुरुकुलाकडे गेला. अखेर बुद्धिवान् गार्ग्याच्या शापामुळे पारीक्षित राजाच्या हातून तो रथ नाहीसा झाला. त्याचा इतिहास असा:--

गार्ग्याला एक अल्पवयी पुत्र होता. तो तोंडाचा होता फटकळ. त्याला त्या पारीक्षितानें त्याच्या निष्ठुर भाषणाबद्दल ठार मारिलें. त्यापासून त्याला ब्रह्महत्या लागली. मग त्या पापाच्या योगानें त्याच्या अंगाला अतिशूद्रा-प्रमाणें वसवस वाण येऊं लागली. त्याचे ग्राम व पुरवासी प्रजाजनही त्याची उपेक्षा करूं लागले, त्यामुळे त्याला कोठेंही सुवास पडेना; व तो सैरावैरा इतस्ततः भटकूं लागला. शेवटीं दुःखानें होरपळून जाऊन जेव्हां कोणी-कडूनही त्याला सुटकेचा मार्ग कळेना, तेव्हां तो इंद्रोत नामक शौनक कुलांतील एका ब्राह्मणाला शरण गेला. मग त्या इंद्रोतानें पापशुद्ध्यर्थ त्या जनमेजयाकडून अश्वमेध नांवाचा यज्ञ करविला. त्या यज्ञाच्या प्रभावानें त्या यज्ञांतीचें अवभृथस्नान होतांच त्याच्या आंगचा तो सर्व दुर्गंध नाहीसा झाला. परंतु, तो दिव्य रथ इंद्रानें पारीक्षितापासून काढून चेदिपति जो वसु त्याला दिला. वसूपासून बृहद्रथाला मिळाला. बृहद्रथापासून मग तो क्रमानेंच बृहद्रथाचा पुत्र जो जरासंध त्याकडे आला. पुढें भीमानें ज्या वेळीं जरासंधाला मारिलें, त्या वेळीं त्यानें तो रथ घेऊन मोठ्या प्रेमानें श्रीकृष्णाला नजर केला. असो.

ययाति राजानें ही सप्तद्वीप पृथ्वी समुद्रासह जिकल्यावर तिचे पांच वांटे करून आपल्या पांच पुत्रांना दिले. आग्नेयीचा भाग त्यानें तुर्वसूला दिला. पश्चिमेचा दुह्युला दिला.

१ लक्ष्मीव्यंकटेश लापखान्यांतील प्रतीत या ठिकाणीं “ भार्यामुवाह ” असा विलक्षण पाठ आहे. याचा अर्थ या रथांत बायकोला घालून तो फिरत असे असा होतो. हा पाठ आजकालच्या हवा खावयास जाणारांना बळकटी देणारा आहे; तथापि, तो अप्रासंगिक आहे; म्हणून आम्हां तो सोडून लेखी पोथीतील “ कार्यसमुद्रहत् ” हाच पाठ धरिला आहे.

उत्तरेचा अनूला. सर्वांत ज्येष्ठ जो यदु त्याची योजना ईशान्य दिशेला केली; व पुरूला मध्यप्रांताच्या गादीवर बसविलें. ययातीनें घालून दिलेल्या मर्यादेप्रमाणें त्याचे पांचही पुत्रांचे वंशज ह्या सप्तद्वीप पृथ्वीचें तींतील नगरग्रामांसह आपआपल्या मुलखांनीं यथान्याय पालन करीत आहेत. हे राजा, आतां या पांचजणांची पुढील प्रजा मी तुला पुढें सांगेन. (तूर्त तुला ययातीचीच एक थोडी गोष्ट सांगतो.) ययातीनें राज्याची विभागणी करून आपले धनुर्बाणही आपल्या पराक्रमी पुत्रांच्या स्वाधीन करून आपल्या माथ्यावरील संसाराचा सर्व भार मुलांवर टाकिल्यावर त्याला जरा प्राप्त झाली. त्या अजिंक्य ययाति राजानें हातचें शस्त्र ठेविल्यावर एकवार पृथ्वीकडे अवलोकन केलें. तेव्हां त्याला अतिशय समाधान झालें. याप्रमाणें विभागणी करून राज्याची व्यवस्था लाविल्यावर एक दिवस ययाति राजा आपल्या यदु नामक पुत्राला म्हणाला, 'हे वत्सा, कांहीं तरी युक्तीनें माझी ही जरा घेऊन आपलें तारुण्य मला दे; म्हणजे मी माझी जरा तुझे ठिकाणीं ठेवून व तुझे तारुण्य घेऊन या पृथ्वीत संचार करीन.' यावर यदूनें उत्तर केलें, 'मी एका ब्राह्मणाला तुला इष्ट ती भिक्षा देईन असें मोघम शब्दानें कबूल केलें. परंतु, ती भिक्षा कोणती व काय याचा अजून निर्णय ठरला नाहीं, व जरा प्राप्त झाली असतां पानभोजनाच्या कामीं मोठी खटखट पडते; याकरितां (त्या ब्राह्मणाच्या ऋणांतून मुक्त होईपर्यंत) हे राजा, मला तुमची जरा घेण्याचें धैर्य होत नाहीं. आपणाला मजहूनही आवडते असे दुसरे बहुत पुत्र आहेत. ते आपल्या इच्छेप्रमाणें करितील. याकरितां या कामीं त्यापैकी कोणाची तरी निवड करावी.' असें जेव्हां यदूनें चकचकीत उत्तर

दिलें तेव्हां अतिशय क्रोध येऊन तो वाक्पटु ययाति राजा आपल्या पुत्राची निर्भर्त्सना करीत म्हणाला, 'हे दुष्टबुद्धे, मी तुझा ज्ञानदाता गुरु, माझा अनादर करून तूं कोणाच्या आधारावर उभा राहाणार; आणि बापाचा अवमान करून अतिथीचा सत्कार केल्यास तुला धर्म कसा घडेल?' असें म्हणून त्या रागाच्या झटक्यांतच त्यानें यदूला शाप दिला कीं, 'हे मूढा, तुझी प्रजा राज्यहीन होईल. नंतर त्यानें यदूप्रमाणेंच तुर्वसु, द्रुघु व अनु यांस आज्ञा केली; पण त्यांनींही यदूप्रमाणेंच त्याला मोडून काढिलें. मग त्या अजिंक्य ययातीनें त्या तिघांनाही शाप दिले. कसकसे ते मी तुला आदिपर्व प्रसंगीच सांगितले आहेत. याप्रमाणें पुरूच्या वरचे चारही पुत्रांस शाप दिल्यावर राजा ययाति पुरूला म्हणाला, 'हे पुरू, तुला जर संमत असेल तर माझी ही जरा तुझे ठिकाणीं ठेवून आणि तुझे तारुण्य घेऊन त्या रूपानें ही पृथ्वी फिरावी असा माझा हेतु आहे.' पित्याच्या वचनावरोबर प्रतापी पुरूनें त्याची जरा घेतली, व ययाति पुरूच्या तरण्याबांड रूपानें लोकांत वागूं लागला. कामवासनेची एकदां पक्की तृप्तीच करून टाकावी, अशी मनांत इच्छा धरून तो बलवान् ययाति चैत्ररथ नामक वनांत या जन्मीं गौ या नांवानें प्रसिद्ध असलेली जी पूर्वींची विश्वाची नामक अप्सरा तिच्याशीं रासरंग खेळत राहिला. इतकें करूनही कामभोगाची वासना पुरी होतच नाहीं असें जेव्हां त्यानें पाहिलें तेव्हां तो पुरूकडे परत आला व पुरूनें आपली जरा ययातीपासून मागारी घेतली. हे जनमेजया, ती जरा परत घेतेवेळीं त्या अनुभवी ययातीनें जे कांहीं श्लोक म्हटले त्यांचा मतलब ध्यानांत घे. कारण, तो ध्यानांत घेतल्यानें कूर्म (कासव) ज्याप्रमाणें

आपलीं अंगें सर्व बाजूंनीं आंवरून घेतो, त्या-  
प्रमाणें प्रत्येक मनुष्य आपल्या कामवासना  
आंवरून धरील.

त्या श्लोकांचा मतलब हाः—१ काम्य  
वस्तूच्या उपभोगानें हा काम कधींही शांत  
होत नाहीं, उलट तूप घातल्यानें जसा अग्नि  
अधिकच भडकतो, त्याप्रमाणें भोगानें हा  
अधिकच भडकतो. २ जीवांची भोगतृष्णा  
इतकी अफाट आहे कीं, या पृथ्वींत जेवढे  
म्हणून धान्य, हिरण्य, पशु व स्त्रियादि पदार्थ  
आहेत ते सर्व एकट्याला दिले तरी देखील  
त्याची तृप्ति म्हणून नाहीं. याकरितां  
शहाण्यानें हा प्रकार पाहून निर्मोह होण्यास  
शिकावें. ३ ज्या वेळेस आपल्या ठिकाणीं  
कोणाही प्राण्याला कर्म, मन किंवा वाणि यां-  
पैकीं कशानेंही अपकार करण्याची बुद्धि उरत  
नाहीं तेव्हां ब्रह्मप्राप्ति होते. ४ ज्या वेळीं  
याला (जीवाला) इतर कोणापासूनही भय  
वाटत नाहीं, तसेंच इतर कोणालाही यापासून  
वाटत नाहीं, व जेव्हां हा कशाची इच्छा  
करीत नाहीं किंवा द्वेषही करीत नाहीं, त्या-  
वेळीं हा ब्रह्मरूप होतो. ५ हे लोकहो, कु-  
बुद्धीच्या लोकांना जिचा त्याग करणें अतिशय  
कठीण पडतें व आपण जरठ झालों तरीही  
जिला जरा म्हणून कशी ती येतच नाहीं,  
असली जी ही तृष्णा, हा एक प्राणांतिक रोगच  
आहे; हिला जो फांटा देईल त्यालाच सुख  
होईल. ६ मनुष्य जरठ झाला म्हणजे त्याचे केश  
जीर्ण होतात, व दंत जीर्ण होतात; पण हा  
जरठाहूनही जरठ झाला तरी जीविताशा व  
धनाशा या मात्र कधींही जीर्ण होत नाहींत.  
७ या लोकांत कामसुख म्हणजे सर्व सुखांत  
अति मोठें असें समजतात. परलोकांत स्वर्गा-  
तील सुख हें अति मोठें समजतात. परंतु,  
(मला वाटतें) तृष्णेचा क्षय झाल्यानें होणाऱ्या

सुखाच्या सोळाव्या हिश्यानेंही कामसुखाला  
किंवा दिव्यसुखाला लज्जत नाहीं.

याप्रमाणें लोकांना सांगून तो राजर्षि  
ययाति आपले स्त्रीसह तपोवनांत गेला. तेथें  
त्यानें उंच पर्वताच्या कड्यावर बहुकालपर्यंत  
पुष्कळसें तप केलें. तपाच्या अखेर अखेर  
त्यानें अन्नव्यवहार सोडिला. शेवटीं मरणोत्तर  
स्त्रीसह तो स्वर्गास गेला. हे राजा, या  
ययातीच्या वंशांत पांच मोठे राजर्षि झाले.  
सूर्याचे किरणांनीं जशी ही पृथ्वी व्यापली  
जाते त्याप्रमाणें त्यांचे प्रभावानें ही भरून गेली  
होती. हे राजर्षे जनमेजया, वृष्णिकुलांतील  
धुरीण जो परमात्मा श्रीकृष्ण तो ज्या वंशांत  
आला तो यदूचा राजर्षिमान्य वंश मी आतां  
तुला सांगतों तो ऐक. ययाति राजाचें पुण्य-  
चरित्र श्रवण किंवा पठण करील तो धनवान्,  
प्रजावान्, आयुष्मान् व कीर्तिमान् होईल.

## अध्याय एकतिसावा.

—:०:—

### कुक्षेयुवंशवर्णन.

जनमेजय म्हणतोः—हे ब्रह्मन्, मला  
पुरुवंशाची खरी खरी हकीकत ऐकण्याची  
इच्छा आहे. तसेंच द्रुह्य, अनु, यदु व  
तुर्वसु यांचेही पृथक् पृथक् वंशवर्णन मला  
पाहिजेच आहे. तथापि, पुरुवंशाबद्दलच मीं  
प्रथम इच्छा दर्शविली. याला कारण, त्यांतच  
वृष्णिवंशाचा संबंध येत असून तो माझाही  
वंश आहे. तर या वंशाचें वर्णन सर्वांआधीं  
व सविस्तर मला सांगावें.

वैशंपायन सांगतातः—हे जनमेजया,  
फार चांगली गोष्ट आहे. पुरुवंश हा सर्वो-  
त्तमच आहे, त्याचें पौरुषही अत्युत्कृष्ट आहे;  
व त्यांतच तुझा जन्मही आहे. याकरितां  
तुझ्या इच्छेप्रमाणें सर्वांआधीं व विस्तारानें तो

मी तुला सांगतो. त्याच्यामागून क्रमानें द्रुह्य, अनु, यदु व तुर्वसु यांचेही वंश सांगेन.

हे जनमेजया, पुरूचा पुत्र हा मोठा वीरवान् होता. त्याला पुढें प्राचिन्वान् नामक पुत्र झाला. त्यानें पूर्व दिशा जिंकिली. प्राचिन्वानाला पुढें प्रवीर झाला. प्रवीराला मनस्यू. मनस्यूला अभयद. अभयदाचे पोटीं राजा सुधन्वा हा जन्मला. सुधन्वाला पुढें बहुगव झाला. बहुगवाला शम्याति. शम्यातीला रहस्याति. रहस्यातीला रौद्राश्व. रौद्राश्वाला धृताची नामक रंभेपासून दहा पुत्र झाले. या दहांपैकीं ऋचेयु हा पहिला होता, पुढें कृकण्येयु, कक्षेयु, स्थंडिलेयु, सत्तेयु, दशार्णेयु, जरेयु, स्थलेयु, धनेयु व वनेयु. याचप्रमाणें त्याला दहा मुलीही होत्या. त्यांचीं नांवें:—रुद्रा, शूद्रा, भद्रा, मलदा, मलहा, खलदा, नलदा, सुरसा, गोचपला व खीरत्नकूटा. अत्रिवंशांत जन्मलेला प्रभाकर ऋषि हा या दाही बहिणींचा भर्ता होता. त्यानें पहिली जी रुद्रा, हिचे ठायीं सोम नावांचा यशस्वी पुत्र निर्माण केला. या ऋषीला प्रभाकर नांव पडण्याचें कारण, एकदां राहूच्या आघातानें सूर्य हा आकाशांतून धरणीवर पडून सर्व लोक तमोमय झाला असतां यानें प्रभा पाडली. याशिवाय सूर्य खालीं येत असतां 'स्वस्ति असो, स्वस्ति असो,' असें त्याला उद्देशून या ब्राह्मणानें म्हटल्यामुळें सूर्य पृथ्वीवर न पडतां तसाच आकाशांत थबकून राहिला. या महातपस्वी ऋषीच्या प्रभावानें अत्रिवंशाला अतिशयच महत्व आलें. तें इतकें कीं, जेवढे मिळून गोत्रप्रवर्तक झाले त्यांत अत्रीचाच मान श्रेष्ठ आहे. यज्ञांतही आत्रेय ब्राह्मणाला स्वतंत्र दक्षणा दिली पाहिजे अशी आज्ञा आहे. हा कायदा प्रत्यक्ष देवांनींच घालून दिला

१ अत्रि आणि सर्वांशीं मैत्री.

आहे. असो; अशा त्या प्रख्यात प्रभाकर ऋषीनें, त्याला (रौद्राश्वानें) पुत्रिका विधीनें दिलेल्या ज्या रुद्रादि दहाजणी होत्या त्यांचे ठिकाणीं तपोनिष्ठ असे दहा पुत्र निर्माण केले. हे सर्वही मोठे वेदपारंग ऋषि होऊन गोत्रकर्ते ऋषि झाले. यांना स्वस्त्यात्रेय असें नांव पडलें. मात्र बापाची मालमत्ता कांहींही यांच्या हातीं लागली नाहीं. असो; कक्षेयूला तीन महारथी पुत्र होते. त्यांचीं नांवें:—सभानर, चाक्षुष, परमंथु. या सभानराचा पुत्र कालानल नामक होता. हा मोठा विद्वान् होता. त्या कालानलाला सृंजय नांवाचा एक धर्मज्ञ पुत्र होता. सृंजयाला पुरंजय नांवाचा मोठा वीर पुत्र झाला. या पुरंजयाचे पोटीं राजा जनमेजय हा जन्मला; आणि राजर्षि जनमेजयाचा महाशाल हा पुत्र होता. हा वेदांमध्ये निपुण असून याची सर्व पृथ्वीवर मोठी कीर्ति होती. या महाशालाला महामना नांवाचा मोठा धार्मिक व वीर पुत्र झाला. यानें मोठाच लौकिक कमाविला. देवगण देखील याला मान देत. या महामनानें दोन पुत्र निर्माण केले. पहिला उशीनर, हा मोठा धर्मज्ञ होता; व दुसरा तितिक्षु, हा मोठा बलाढ्य होता. उशीनराला पांच स्त्रिया होत्या. या सर्वही राजर्षींच्या कुळांतल्या होत्या. यांचीं नांवें:—नृगा, कृमी, नवा, दर्वा व पांचवी दृषद्वती. या पांचींच्या ठिकाणीं पांच पुत्र त्या उशीनराला झाले. ते मोठ्या तपश्चर्येनें झाले व उतारवयांत झाले. तथापि, ते कुलभूषण निपजले. नृगेला नृग झाला, कृमीला कृमि झाला, नवेला नव झाला, दर्वेला सुव्रत झाला; व दृषद्वतीला राजा शिबी झाला. शिबीच्या संततीला शिबीच म्हणत. नृगाच्या संततीला योधेय म्हणत. नवाच्या राजधानीला नवराष्ट्र म्हणत; कृमीच्या राजधानीला कृमिलापुरी म्हणत, व सुव्रताच्या राजधानीला अंबष्ठा

असें म्हणत; आतां शिवीचे पुत्र ऐक. हे चार होते. हे मोठे त्रैलोक्यांत प्रख्यात असे वीर होते. यांचीं नांवे:—वृषदर्भ, सुवीर, भद्रक व कैकेय. यांचीं राज्ये मोठीं समृद्ध होती व त्यांना त्यांच्या राजकर्त्यावरून वृषदर्भ, सुवीर, भद्रक व कैकेय अशींच नांवे पडलीं. आतां तितिक्षूची प्रजा ऐक. तितिक्षूला उषद्रथ नांवाचा मुलगा झाला. हा मोठा बलाढ्य असून यानें पूर्व दिशेला आपलें राज्य स्थापिलें. उषद्रथाला पुढें फेन नांवाचा पुत्र झाला. फेनापासून सुतप. सुतपापासून राजा बलि. हा बलिराजा पूर्वजन्मी दानवयोनीत असून फार मोठा योगी होता. तो या जन्मी मनुष्ययोनीत येऊन राजा झाला. याचा भाता सोन्याचा असे. या बलीनें आपला वंश चालविणारे असे पांच पुत्र इहलोकीं निर्माण केले. त्यांत अंग हा प्रथम झाला. पुढें वंग व सुसहे झाले. शेवटीं पुंडू व कलिंग झाले. एवढी प्रजा त्याला क्षत्रिय स्त्रीपासून झाली. याखेरीज ब्राह्मण जातींतही त्याचा वंश चालू झाला. हे जनमेजया, या बलीला ब्रह्मदेवानें प्रसन्न होऊन मोठमोठाले वर दिले होते, ते हे:—“तूं महायोगी होशील. तुला कल्पपर्यंत आयुष्य राहील. युद्धांत तूं अजिंक्य रहाशील. धर्मविचारांत तुझ्या मताला वरिष्ठ मान मिळेल. त्रैलोक्यांत काय काय घडत आहे, तें तुला कळत जाईल. तुझ्या अर्ध्या वचनांत लोक राहातील. शक्तीत तुझी बरोबरी कोणीच करणार नाही. धर्माचीं जीं अंतरंग रहस्ये त्यांचा तुला अपरोक्ष साक्षात्कार राहील. तूं या भूतलावर ब्राह्मण क्षत्रियादि चतुर्वर्णीची आपआपल्या मर्यादेनें स्थापना करशील.” याप्रमाणें ब्रह्मदेवानें दिलेले वर ऐकून बलिराजा परम शांतीला प्राप्त झाला. बलि हा जात्या ऊर्ध्वरेता असल्यानें त्याची जी ही ब्राह्मणक्षत्रियादि संतति सांगितली ती त्याच्या पोटची नसून त्याचें क्षेत्र म्हणजे खी

जी सुदेष्णा तिचे ठायीं महातेजस्वी जो दीर्घतप नामक ऋषि त्याजपासून झालेली होती व म्हणूनच तिला क्षेत्रज्ञ म्हणत. बलीनें वर सांगितलेल्या आपल्या पांचही निष्पाप पुत्रांस राज्याभिषेक करून आपली संसारांतील कर्तव्यगारी संपली, असें समजून योगाचा मार्ग धरिला. तो मूळचाच समर्थ योगी होता. तो सहजच प्राणिमात्राला अजिंक्य झाला; व शेवटीं कृतकृत्य होऊन केवळ आयुष्याची नेमलेली कल्पपर्यंतची मर्यादा संपे तो वाट पाहत राहिला; व ठरल्याप्रमाणें कल्पाचा दीर्घकाल संपतांच देह ठेवून आपल्या पूर्वस्थानाला गेला. असो; बलीचे जे वर पांच पुत्र सांगितले ते राजे झाल्यावर त्यांच्या राज्यांना त्यांच्याच नांवावरून अंगदेश, वंगदेश, सुह्रदेश, पुण्ड्रक व कलिंग अशीं नांवे पडलीं. आतां बलीपुत्र जो अंग त्याची संतति ऐक. अंगाला राजेंद्र दधिवाहन नामक मोठा प्रतापी पुत्र झाला. या दधिवाहनाचा पुत्र दिविरथ नामक झाला. हा पराक्रमानें केवळ इंद्रतुल्य होता. या दिविरथाला पुढें विद्वान् धर्मरथ हा पुत्र झाला. धर्मरथाला पुढें चित्ररथ झाला. या चित्ररथानें विष्णुपद नामक पर्वतावर यज्ञ करून त्या यज्ञांत इंद्राचे बरोबर बसून सोमपान केलें. या चित्ररथाला दशरथ नामक पुत्र झाला. यालाच लोमपाद असें म्हणत असत. याला शांता नामक कन्या होती. ( ही ऋष्यशृंग नामक ऋषीला दिली होती. ) ऋष्यशृंगाच्या प्रसादानें या दशरथाला महायशस्वी चतुरंग नांवाचा पुत्र झाला. या चतुरंगाला पुढें पृथुलाक्ष नामक पुत्र झाला. या पृथुलाक्षाला चंप नामक पुत्र झाला. यानें आपल्या राजधानीस चंपा असें नांव ठेविलें. हिला पूर्वीं मालिनी असें नांव होतें. पूर्णभद्र मुनीच्या प्रसादानें

याला हर्यग नांवाचा पुत्र झाला. या हर्यगाकरितां विभांडकपुत्र जो ऋष्यशृंग ऋषि यानें आपल्या मंत्रसामर्थ्यानें सागरोद्भव जो इंद्राचा ऐरावत नामक हत्ती तो स्वर्गलोकाहून खालीं आणला, व याच वाहनावर हा राजा फिरत असे. या राजाला भद्ररथ नामक पुत्र झाला. भद्ररथाला पुढें बृहत्कर्मा पुत्र झाला. त्या बृहत्कर्माला पुढें बृहद्दर्भ हा झाला. बृहद्दर्भाला बृहन्मन झाला. या बृहन्मनानें पुढें जयद्रथनामक पुत्र निर्माण केला. जयद्रथाला पुढें राजा दृढरथ हा झाला. दृढरथाला पुढें विश्वजित् हा झाला. विश्वजिताचा कर्ण, आणि कर्णाचा विकर्ण. विकर्णाला अंग-वंशाची वृद्धि करणारे असे शंभर पुत्र झाले. मघा जो बृहद्दर्भाचा पुत्र बृहन्मन राजा सांगितला त्याला दोन स्त्रिया होत्या. एकीचें नांव यशोदेवी व दुसरीचें नांव सत्या. या दोघीही सुलक्षणी स्त्रिया चैद्याच्या मुली होत्या. या सवतींपासून या वंशाचे दोन फांटे झाले. यशोदेवीचे पोटीं वर सांगितलेला जयद्रथ आला, व सत्येच्या पोटीं विजय हा आला. हा विजय शांत्यादिक गुणांनीं कोणाही ब्राह्मणापेक्षां व शौर्यादि गुणांनीं कोणाही क्षत्रियापेक्षां श्रेष्ठ होता. या विजयाला धृतिनामक पुत्र झाला. धृतीचा पुढें धृतव्रत. धृतव्रताचा पुत्र महा-यशस्वी सत्यकर्मा. सत्यकर्माला अधिरथनामक सूतपुत्र झाला. या अधिरथ सूतानें कुंतीपुत्र कर्ण याला आपलासैं म्हटलें होतें, व त्यामुळेंच कर्णाला पुढें सूतपुत्र असें म्हणत. याप्रमाणें महाबल कर्णापर्यंत तुला वंशवर्णन सांगितलें. या कर्णाचा पुत्र वृषसेन व वृषसेनाचा पुढें वृष. हे महाराजा, याप्रमाणें मीं तुला अंग-वंशाचे सर्व राजे सांगितले. हे सर्वही मोठे

सत्यनिष्ठ, महारथी, महात्मे व प्रजावान् असे होते. आतां, हे राजा, रौद्राश्वाचा पुत्र जो ऋचेयु त्याचा वंश म्हणजे ज्या वंशांत तूं स्वतः उत्पन्न झालास, तो तुला सांगतों ऐक.

## अध्याय बत्तिसावा.

—:०:—

### पुरुवंशानुकथन.

हे राजा, तुझा पूर्वज ऋचेयु याचा त्या-काळीं पराक्रमानें युद्धांत हात धरणारा कोणीही नसल्यामुळें तो एकच राजा आहे, असें म्हणत. या ऋचेयूला तक्षकाची कन्या ज्वलना ही दिली होती. या ज्वलनेचे ठिकाणीं त्यानें मतिनार नांवाचा पुत्र उत्पन्न केला. या मतिनाराला मोठे धार्मिक असे तीन पुत्र होते. त्यांतील पहिला तंसु, दुसरा प्रतिरथ व तिसरा सुबाहु. यां-शिवाय मांधाता नामक प्रसिद्ध राजर्षीची माता जी गौरी ती याची कन्या होती. हे तिघेही बंधु मोठे वेदवेत्ते, ब्रह्मज्ञ, सत्यवादी, बलाढ्य, अस्त्रनिपुण व युद्धविशारद असे होते. यांपैकीं प्रतिरथाला कण्व नामक पुत्र झाला, हाच पुढें राजा झाला. कण्वाचा पुढें मेधातिथि. या मेधातिथीपासून काण्वायन नांवांनें प्रसिद्ध असणारें द्विजकुल निर्माण झालें. हे राजा जनमेजया, मोठ्या ब्राह्मणांनाही भारी असा कोणी एक राजर्षि होता, त्याची ईलिनी नामक कन्या होती. तिच्याशीं तंसूनें लग्न लाविलें. त्यापासून तंसूला पुढें सुरोध नामक पुत्र झाला. हा सुरोध राजर्षि, मोठा धर्मप्रवर्तक, यशस्वी, ब्रह्मवादी व पराक्रमी होता; व उपदानवी ही त्याची भार्या होती. हिला सुरोधापासून चार पुत्र झाले. त्यांचीं नांवां:—दुष्यंत, सुष्मंत, प्रवीर व अनव.

त्यांपैकीं दुष्यंताला भरत नांवाचा वीर्य-शाली पुत्र झाला; याला अयुत हत्तीचें बळ



असे; व याच्या पराक्रमामुळे त्याला सर्वदमन म्हणत. हा शकुंतलेच्या पोटी आला. हा पुढे मोठा चक्रवर्ती झाला; व हे जनमेजया, तुमच्या कुळाला जे आजकाल भारत हे नांव प्राप्त झाले आहे, ते याचे योगानेच. याला भरत हे नांव पडण्याचे कारण असे आहे की, शकुंतलेने हा तुझा म्हणून पुढे आणून ठेविलेल्या पुत्राचा दुष्यंत जेव्हां स्वीकार करीना तेव्हां आकाशवाणी झाली कीं “बाबारे, पुत्र म्हटला म्हणजे पित्याचा माल. किंवा हुना पिताच तो. माता ही केवळ निमित्त आहे. ती कांहीं कालपर्यंत (गर्भावस्थेत असतांना) पुत्र सांठविण्याची एक चर्ममय पिशवी आहे. यापलीकडे तिचा अधिकार नाही. सारांश, पुत्र हा बापाचा. याकरितां, हे दुष्यंता, (साधवी) शकुंतलेची अशी हेटाळणी करूं नको. तिने आणलेला हा पुत्र तुझा आहे. हा घे आणि याचे भरणपोषण कर. बाबारे, स्ववीर्यापासून उत्पन्न होणारा पुत्र ही एक दुर्मिळ चीज आहे. कारण, असला पुत्र हा आपल्या बापाला यमसदनांतून बाहेर ओढून काढितो (नरकांत पडू देत नाही). हे राजा, शकुंतला बोलली तेच खरे आहे. हा गर्भ तूच तिचे ठिकाणी स्थापिलेला आहेस.” हे जनमेजया, मी तुला पूर्वीं आदिपर्व सांगतांना सांगितलेच आहे कीं, मातृकोपामुळे भरतकुलाचा उच्छेद झाला होता. तेव्हां आंगिरसकुलोत्पन्न बृहस्पतीचा पुत्र जो समर्थ महामुनी भरद्वाज त्याला मरुत नामक यज्ञदेवतांनीं भरतवंशांत पुत्रत्वाने संक्रमित केले. या कामी मरुतांनीं बुद्धिवान् भरद्वाजाला धर्मबुद्धीने भरतकुलांत नेऊन घातले, आणि भरद्वाजानेही मोठे ऋतु करून उलट मरुतांचे

कल्याण केले. ही गोष्ट लोकांच्या तोंडी आहे. मातृशापाने भरतवंशांत पुत्रोत्पत्ति बंद पडली होती; तथापि, भरद्वाज जेव्हां त्या वंशांत आला तेव्हां ती पुन्हा चालू झाली. त्या कुळांत आल्यावर त्याला वितथ नामक पुत्र झाला. नातू दृष्टीस पडला, तेव्हां आपला खंडित वंश आतां सुरू झाला, अशी मनाला खातरी होऊन मग भरत राजा स्वर्गाला गेला. इकडे तपोनिष्ठ भरद्वाजही आपला पुत्र वितथ याला राज्यावर बसवून तपोवनांत गेला. पुढे या वितथाला पांच पुत्र झाले. त्यांचीं नांवेः—सुहोत्र, सुहोता, गय, गर्ग व महात्मा कपिल. सुहोत्राला पुढे दोन मुलगे झाले. एक महासत्ववान् काशिक, व दुसरा, राजा गृत्समति. गृत्समतीला ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य या तिन्ही जातींत संतति झाली. काशिकाला काशेय आणि दीर्घतप हे पुत्र झाले. दीर्घतपाला धन्वंतरी नामक पुत्र झाला. धन्वंतरीचा पुत्र केतुमान्, केतुमानाचा राजा वीर भीमरथ. भीमरथाचा पुत्र राजा दिवोदास. ह्या दिवोदासाने सर्व राक्षसांचा नाश केला, अशी प्रसिद्धी आहे. दिवोदासाचे वेळींच निकुमाने सहस्र वर्षेपर्यंत तू ओस पडशील असा वाराणशीला शाप दिल्याप्रमाणे ती ओस पडली; व पुढे ती क्षेमकाने पूर्ववत् वसविली. वाराणशीला शाप होतांच दिवोदासाने तिच्याच सिंवेवर गोमतीचे कांठी नवी राजधानी वसविली. ही वाराणशी नगरी पूर्वीं यदुवंशांत उत्पन्न झालेली जो तपोनिष्ठ राजा भद्रश्रेण्य त्याची राजधानी होती. पुढे या भद्रश्रेण्याला मोठे शूर शंभर पुत्र झाले. परंतु यांचा निःपात करून राजा दिवोदासाने आपली वसति त्या नगरांत केली. दिवोदासाला राजा प्रतर्दन हा पुत्र झाला. प्रतर्दनाला पुढे दोन पुत्र झाले. पैकीं एकाचे नांव वत्स व दुसऱ्याचे भार्ग.

१ “पुत्राचे भरण करी, प्रेमे तुज लावला, भर, तयांत । म्हणतील आजपासुनि पूरुकुळीं सर्वही ‘भरत’ यांत ॥”  
मोरोपंत, शाकुंतल.

या वत्साला अलर्क हा पुत्र झाला. अलर्काला पुढें सन्नतिमान् हा पुत्र झाला. भद्रश्रेण्याचा पुत्र दुर्दम याला हेहयानें दत्तक घेतलें. हा दुर्दम बाल असें समजून (त्याचे इतर बंधु मारितांना) दिवोदासानें दयेस्तव राखिला होता. परंतु, यानेंच दिवोदासानें बळकाविलेलें आपल्या वडिलांचें राज्य परत हिसकावून घेतलें. मागें जो केतुमान् राजा सांगितला त्याचा पुत्र जो भीमरथ किंवा दिवोदास याला अष्टारथ नांवाचा पुत्र झाला. याला प्रतर्दन असेंही म्हणत. यानें वैराचें बीज नाहीसें व्हावें म्हणून दुर्दमाचे पुत्र बाल आहेत असें पाहून त्यांचा चुराडा केला. काशीचा अधिपति अलर्क राजा हा मोठा ब्रह्मज्ञ व सत्यप्रतिज्ञ होता. लोपामुद्रेच्या कृपेनं हा सदैव तरुण असून याचें रूप कधींच उतरलें नाहीं. त्याचें राज्यही मोठें विशाल होतें. अशा रूपयौवनाच्या भरांत त्यानें तें राज्य साठ हजार सहाशें वर्षपर्यंत भोगलें. इतकें विपुल आयुष्य त्याला प्राप्त होण्याला कारण तरी लोपामुद्रेचाच प्रसाद. इतकें दीर्घकाल राज्य करून अखेर त्यानें क्षेमक नामक राक्षसाचा वध करून वाराणशी नामक जी नगरी ओस पडली होती, ती पुन्हा वसविली. या अलर्काला सुनीथ नांवाचा पुत्र होता. सुनीथाचा क्षेम्य. क्षेम्यापासून केतुमान् झाला; केतुमानापासून वर्षकेतु; वर्षकेतूचा पुढें विभु; विभूचा आनर्त; आनर्ताचा सुकुमार; सुकुमाराचा महारथी सत्यकेतु; सत्यकेतूपासून मोठा धार्मिक व तेजस्वी असा वत्स राजा झाला; वत्साच्या पुत्राला वत्सभूमी म्हणत; व भार्गवाच्या पुत्राला भार्गभूमी असें म्हणत. हे सर्वही भार्गववंशांत उत्पन्न झालेले अंगिरसाचे पुत्र होते. यांत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र या चारही जाती होत्या.

वितथाचा पुत्र जो सुहोत्र त्याचा पुत्र बृहत् हा झाला. बृहताला पुढें अजमीढ, द्विमीढ व पुरुमीढ असे तीन पुत्र झाले. अजमीढाला मोठ्या यशस्विनी अशा तीन स्त्रिया होत्या. रूपलक्षणांनीं या सर्वही फार उंची प्रतीच्या स्त्रिया होत्या. यांचीं नांवें:—नालिनी, केशिनी व धूमिनी. पैकीं केशिनीपासून अजमीढाला प्रतापशाली जन्हु हा पुत्र झाला. यानें सर्व-मेघ नांवाचा बहुत दिवस चालणारा महायज्ञ केला. त्याचे रूपाला मुळून गंगा अति नम्र होऊन एखाद्या अभिसारिकेसारखी त्याकडे आली. परंतु, तो तिचा स्वीकार करीना. तेव्हां तिनें रागावून त्याची ती सर्व यज्ञशाला जळांत बुडवून टाकिली. तें तिचें कृत्य पाहून, हे भरत-श्रेष्ठा, जन्हु गंगेला म्हणाला, 'तू फार माजली आहेस, पण तुझा नखरा मी आतांच उतरतो. तिन्ही लोकांत तुझे आहे नाहीं तें सर्व उदक आतांच पिऊन टाकितों. म्हणजे तुझ्या उर्मटपणाबद्दल तुला चांगलेंच शासन होईल.' असें म्हणून त्या गाजीनें गंगेचें आचमन करून टाकिलें. तें कृत्य पाहून महर्षींना मोठी फिकीर पडली, व त्यांनीं त्याची विनवणी केली, तेव्हां त्यानें ती मोकळी सोडिली. ती जन्हुच्या पोटांतून आली असें पाहून त्यांनीं तिला जान्हवी म्हणजे जन्हुची कन्या अशी संज्ञा दिली. (तिचेकडे कन्यात्व आल्यामुळें तिचें जन्हुविषयीचें विषयप्रेम अर्थातच लटकें पडलें.) मग जन्हुनें युवनाश्व्याची मुलगी कावेरी हिच्याशी लग्न लाविलें. ह्या कावेरीला गंगेचा शाप झाल्यामुळें पुढें तिचें देहार्ध नदीरूप बनलें. जन्हुला पुढें अजक नांवाचा पुत्र झाला. हा बापाचा मोठा लाडका असून मोठा प्रतापी

१ सामुद्रिक शास्त्रकारांनीं स्त्रियांचे रूपलक्षणांवरून चार वर्ग लाविले आहेत. त्यांनील सर्वोत्कृष्ट वर्गाला पद्मिनी असें म्हणतात.

होता. या अजकाला पुढें बलाकाश्च हा पुत्र झाला. याला शिकारीचा फार नाद असे. त्याचा पुत्र कुशिक, हा पल्हव नामक रानटी लोकांनीं सदा वेढलेला असे. पुढें या कुशिकांनं इंद्रा-प्रमाणें पराक्रमी पुत्र व्हावा, म्हणून तीत्र तप आरंभिलें. तेव्हां इंद्राला धास्ती पडून तोच पुत्रत्वानें त्याचे पोटीं आला. हाच तो गाधी नांवाचा राजा झाला. अर्थात् गाधी म्हणजे खुद्द इंद्रच. या गाधीला पुढें विश्वामित्र झाला. याशिवाय विश्वरथ, विश्वकृत व विश्वजित् असे आणखी तीन पुत्र त्याला झाले, व या चौघांही भावांहून धाकटी सत्यवती नांवाची कन्या झाली. ही सत्यवती ऋचीकाची स्त्री झाली, व तिज-पासून ( प्रसिद्ध ) जमदग्नि झाला. विश्वामित्राला त्रैलोक्यांत प्रसिद्ध असे बहुत पुत्र झाले. त्यांचीं नांवें:—देवश्रवा, कति, ( याज-पासूनच कात्यायन हे झाले ). शालावती नामक स्त्रीपासून हिरण्याक्ष झाला. रेणूपासून रेणुमान् झाला. याशिवाय सांकृत्य, गालव व मौद्गल्य असेही पुत्र होते. या सर्व कुशिककुलोत्पन्न पुरुषांचीं गोतें मोठीं प्रख्यात आहेत. पणी, बभ्रु, ध्यानजप्य, देवरात, शालंकायन, सौश्रव, लौहित्य, यामदूत, कारीत, सौश्रुत व तसेच आणखी सैधवायन हे सर्वही कुशिक-कुलाचेच फांटे आहेत. यांतील पुष्कळ प्रवर-भेदानें आपआपसांत विवाह करूं शकतात. हे महाराजा, पुरुकुलोत्पन्न राजे, व कुशिक-कुलोत्पन्न ऋषि, यांचे आपसांत संबंध झाले आहेत. अर्थात् ब्राह्मण व क्षत्रिय यांची मिसळ येथें झाली आहे. विश्वामित्राच्या पुत्रांत शुनः-शेफ हा वडील होता. हा मुनिश्रेष्ठ मूळचा भार्गव असून पुढें कौशिककुलास मिळाला. याशिवाय देवरात वगैरे विश्वामित्राला आणखी पुत्र होते. विश्वामित्राची दृषद्वती नामक जी एक स्त्री होती, तिजपासून झालेल्या पुत्रांचें

नांव अष्टक असें होतें. या अष्टकाला पुढें लौहि हा पुत्र झाला. येथवर जन्हुचा वंश मी सांगितला.

आतां, हे पुरुषश्रेष्ठा, अजमीढाचा वंश सांगतों, ऐक. अजमीढाला नीलिनी नामक स्त्रीपासून सुशांति नामक पुत्र झाला. सुशांतीचा पुरुजाति, पुरुजातीचा बाह्याश्च. बाह्याश्चाला देवतुल्य पांच पुत्र होते. त्यांचीं नांवें:—मुद्गल, संजय, बृहदिषु, पराक्रमी यवीनर व पांचवा कृमिलाश्च. या पांचांचे ताब्यांत पांच देश होते. हे सर्वही देश भरवस्तीचे असून भरभराटीचे होते. असल्या पांच देशांचें संरक्षण करण्यास हे पंच म्हणजे पांचही बंधु अलम् म्हणजे समर्थ होते, म्हणून त्यांना पंचाल असें नांव पडलें होतें आणि यांच्या देशालाही तेंच नांव दिलें होतें. यांपैकीं मुद्गलाचे पोटी मोठा यशस्वी मौद्गल्यनामक पुत्र झाला. हे सर्वही मोठे थोर असून क्षत्रधर्माचा आश्रय करणारे ब्राह्मण होते. कण्व आणि मुद्गलयांनीं अंगिरस पक्षाचा आश्रय केला. या मौद्गलाचा वडील मुलगा मोठा कीर्तिमान् इंद्रसेन नांवाचा होता. त्याला पुढें बन्ध्यश्च हा पुत्र झाला. यानें मेनकेचे ठिकाणीं एक मुलगा व एक मुलगी अशी एक जोडी उत्पन्न केली. मुलाचें नांव दिवोदास, व मुलीचें नांव अहल्या. ही अहल्या शरद्वत गौतमाला दिली होती. हिजपासून ऋषिश्रेष्ठ शतानंद हा झाला. शतानंदपासून मोठा कीर्तिमान् असा सत्यवृति नामक पुत्र झाला. हा धनुर्वेदांत मोठा निपुण होता. हा सत्यवृति तप करीत असतां त्याच्या तपाला विघ्न आणण्यासाठीं जालपदी नांवाची अप्सरा आली. तिला पुढें पाहून हा मोहित झाला, व तिला कवटाळून धरीत असतां ती निसटली. मग तिजमागून तसाच धांवत जात असतां त्याचें रेत शर नामक गवताच्या बेटांत गळलें.

त्या वीर्यापासून तेथेच एक मुलगा व एक मुलगी असें जोडपें उत्पन्न झालें. शंतनु राजा मृगयेला गेला असतां त्यानें तीं अर्भके पाहून कृपेनें त्यांचें ग्रहण करून संगोपन केलें; व याच कारणानें त्या मुलाला कृप, व मुलीला कृपी किंवा गौतमी असें म्हणत. शरद्वत नामक यांच्या पूर्वजांवरून त्यांना कोणी शारद्वत किंवा गौतम असेंही म्हणतात.

आतां दिवोदासाची संतति सांगतो. दिवोदासाला राजा मित्रयु नांवाचा पुत्र होता. त्याच्यापासूनच मैत्रायणी शाखा उत्पन्न झाली, व हिजवरूनच मैत्रेय असें नांव कित्येक कुळांना पडलें. हे सर्व भृगुकुलोत्पन्न पुरुष क्षत्रिय-पक्षाचा आश्रय करून होते. महात्मा सृज-याला पंचजन नामक पुत्र होता. पंचजनाचा पुत्र सोमदत्त राजा. सोमदत्ताचा सहदेव. या यशस्वी सहदेवाचा पुत्र सोमक राजा. हा वंश-क्षय झाला असतां सहदेवाचे पोटी पुन्हा आला. या सोमकाला जंतु नामक पुत्र झाला. त्याला पुढें शंभर पुत्र होते. या सर्वांत कनिष्ठानें नांव पृपत. हाच समर्थ पृषतराजा द्रुपदाचा बाप. द्रुपदाला पुढें धृष्टद्युम्न झाला. धृष्टद्युम्नाला धृष्ट-केतु. येथवर हे अजमीढाचे प्रसिद्ध वंशज सांगितले. यांनाच सोमक असेंही म्हणत. कारण, अजमीढाचा पुत्र सोमक यावरून हें नांव पडलें. ( अजमीढाच्या नीलिनी नामक स्त्रीची संतति वर सांगितली. ) आतां अजमीढाची तिसरी स्त्री जी धूमिनी तिची संतति सांगतो. हे राजा, ही धूमिनी हीच तुझ्या पूर्वजांची माता. ही पुत्रासाठीं ह्यापली असल्यामुळें हिनें स्त्री-जनांला परम दुश्चर असें अयुतवर्षपर्यंत पुत्र-प्राप्त्यर्थ म्हणून तीव्र तप केलें. ती व्रतस्थ राहून यथाविधी अग्नीला होम देत असे; व नंतर पवित्र अन्नाचें मित भोजन करी, व अग्निहोत्रार्थ आणिलेल्या कुशांचेंच आस्तरण

करून त्याजवरच निजे. असें तप केल्यावर अजमीढानें धूमिनीशीं संगम केला. त्या संग-मापासून दिसण्यांत सुंदर पण वर्णानें धुरकट असा ऋक्ष नांवाचा पुत्र झाला. या ऋक्षा-पासून संवर्ण झाला. संवर्णाला पुढें कुरु. हा कुरु म्हणजे प्रयाग सोडून पलीकडे गेलें असतां लागणारें जें प्रसिद्ध कुरुक्षेत्र तें ज्यानें निर्माण केलें तोच. हें क्षेत्र निर्माण करण्याचे कामीं त्या महाभाग कुरूला बहुत वर्षें तप करावें लागलें. तपांतीं इंद्रानें त्याला वर दिला. त्या वरापासून कुरूनें हे पवित्र लोक जेथे वसति करून राहातात, असलें पावन व रमणीय क्षेत्र निर्माण केलें. या कुरूचा पुढील वंश फारच प्रबळ झाला. हे राजा, तुम्ही जे आज कौरव म्हटले जातां ते या पुरुषामुळेंच. या कुरूला चार पुत्र होते. त्यांचीं नांवें—सुधन्वा, सुवनु, महाबाहु परीक्षित व अरिकंपन असा प्रवर. यांपैकी सुधन्वाला सुहोत्र नामक बुद्धिमान पुत्र झाला. ह्या सुहोत्राला धर्मार्थ-वेत्ता असा चावन हा पुत्र झाला. चावनापासून कृतयज्ञ. या धर्मज्ञ कृतयज्ञानें अनेक यज्ञ करून सर्वत्र विख्यात असा इंद्रतुल्य पुत्र निर्माण केला. या पुत्राचें नांव वसु असें होतें. हा वर अंतरिक्षांत संचार करण्याला समर्थ असल्यामुळें याला उपरिचर वसु असें म्हणत. चेदी वंशाच्या संबंधानें याला चैद्य असेंही म्हणत. या उपरिचरापासून गिरिका नामक स्त्रीला सात अपत्ये झालीं. त्यांचीं नांवें:—मगधदेशाचा प्रसिद्ध राजा महारथ किंवा ज्याची बृहद्रथ नांवानें प्रसिद्धी आहे तो. दुसरा प्रत्यग्रह, तिसरा कुश, ज्याला मणिवाहन असेंही म्हणत. यानंतर मारुत, यदु व मत्स्य हीं तीन. हे सहा पुत्र व कालीनामक एक कन्या. यांपैकी पहिला बृहद्रथ याला कुशाग्र नामक पुत्र झाला. कुशाग्राला पुढें वीर्यशाली वृषभ. या वृषभाला पुष्पवान् नांवाचा धार्मिक

पुत्र झाला. पुष्पवानाला पराक्रमी सत्यहित हा पुत्र झाला. सत्यहिताला ऊर्जनांवाचा धर्मात्मा पुत्र झाला. या ऊर्जाला जो बलाढ्य पुत्र झाला, तो दोन शकलांचे रूपानें जन्मास आला. हीं शकलें जरानामक एका राक्षसीनें सांधलीं व यामुलें याला पुढें जरासंध असें नांव पडलें. हा मोठाच पराक्रमी निघाला. यानें सर्व क्षत्रियमंडळ पादाक्रांत केलें. जरासंधाला सहदेव नामक पराक्रमी पुत्र झाला. सहदेवाला पुढें श्रीमंत व यशस्वी असा उदायु पुत्र झाला. उदायूनें पुढें श्रुतधर्मा नांवाचा परम धार्मिक पुत्र निर्माण केला. या श्रुतधर्म्यानेंच मगध देशांत वसति केली. कुरूचा द्वितीय पुत्र जो परीक्षिती त्याला जनमेजय पुत्र झाला. जनमेजयाला तीन पुत्र होते. हे सर्वही मोठे बलाढ्य, पराक्रमी व महारथी होते. यांचीं नांवां:--श्रुतसेन, उग्रसेन व भीमसेन. यांशिवाय मणिमती नामक स्त्रीपासून जनमेजयाला सुरथ व मतिमान् असे दोन पुत्र झाले. पैकीं सुरथाला विदूरथ नामक पराक्रमी पुत्र झाला. ऋक्ष जो प्रसिद्ध महारथी तो या विदूरथाचाच पुत्र. हे जनमेजया, कुरुपितामह जो ऋक्ष नामक तुझा पूर्वज होऊन गेला, त्याचाच नामधारी हा दुसरा ऋक्ष झाला; व हाही तसाच पराक्रमी होता. एकूण तुझ्या कुळांत दोन ऋक्ष, दोन परीक्षिति, तीन भीमसेन व दोन जनमेजय झाले. यांपैकीं दुसऱ्या ऋक्षाला भीमसेन हा पुत्र झाला. भीमसेनाला प्रतीप, व प्रतीपाला शंतनु, देवापि आणि बाल्हिक असे तीन महारथी पुत्र झाले.

हे राजा, तूं ज्या शाखेंत उत्पन्न झाला आहेस, ती ही शंतनूची शाखा. बाल्हिकाचें जें राज्य होतें, तें ज्ञान, विज्ञान, धर्म, बल, काम,

उपायसंग्रह व शरीरभोग, यांत कमी होतें. बाल्हिकाला सोमदत्त नांवाचा यशस्वी पुत्र झाला. सोमदत्ताला भूरि, भूरिश्रवा व शल, असे तीन पुत्र झाले. तिसरा जो देवापि हा केवळ ऋषि असून देवांचा उपाध्याय होता. हा च्यवनाचा मोठा प्रिय असून त्यानें याला आपला पुत्र म्हटलें होतें. कौरवांत धुरंधर शंतनु हा राजा झाला. हे राजा, तूं शंतनूच्याच कुळीं जन्मला आहेस; याकरितां मी शंतनूचा वंश सांगतो. ऐक. समर्थ शंतनूनें गंगेचे ठिकाणीं देवव्रत नामक पुत्र उत्पन्न केला. हा भीष्म नांवानें विख्यात असलेला पांडवांचा जो आजोबा तोच. शंतनूलाच काली अथवा सत्यवति या दुसऱ्या स्त्रीपासून विचित्रवीर्य नामक पुत्र झाला. हा मोठा धार्मिक व निष्पाप असून शंतनूचा मोठा लाडका होता. कृष्णद्वैपायन व्यास यांनीं विचित्रवीर्याच्या क्षेत्रांत म्हणजे स्त्रियांचे ठिकाणीं धृतराष्ट्र, पाण्डु व विदुर, हे निर्माण केले. पुढें धृतराष्ट्रानें गांधारी स्त्रीचे ठायीं शंभर पुत्र निर्माण केले. या शंभरांपैकीं दुर्योधन वडील होता, व तोच सर्वांचा राजा झाला. पांडूला धनंजय अथवा अर्जुन हा झाला. अर्जुनाला अभिमन्यु व अभिमन्यूला परीक्षित म्हणजे हे लोकपाला तुझा पिता. ( अर्थात् पुढें तूं. ) या प्रकारें तूं ज्या पौरव वंशांत निर्माण झालास, त्या वंशाची हकीकत संपली. आतां पुरूचे बंधु तुर्वसु, द्रुह्यु, अनु व यदु, यांचे वंश सांगतो. तुर्वसूचा पुत्र वन्ही होता. वन्हीचा गोभानु, गोभानूचा अजिंक्य पुत्र

१ मूळांत सप्तवाह्य व सप्तवाह्य असे दोन पाठ आहेत. पैकीं बाह्य म्हणजे शून्य असा अर्थ धरून कोणी टीकाकारानें अर्थ केला आहे. बाकी वाह्य हा पाठ धरून “या सात गोष्टींवर चालणारें” म्हणजे सात गोष्टींनीं युक्त असा अर्थ करणें बरें असें आम्हास वाटतें. बंगाली अर्थकारांनीं बाल्हिकाचीं सात राज्यें होतीं असा अर्थ केला आहे.

त्रैभानु; त्याचा पुत्र करंधम; करंधमाचा पुत्र मरुत. हे राजा, मी तुला याशिवाय दुसरा एक मरुत सांगितला आहे, पण तो अविक्षिताचा पुत्र, प्रस्तुतचा मरुत हा अनपत्य होता, म्हणून त्याने विपुल दक्षणा देऊन यज्ञ केले. तेव्हा त्याला संमता नांवाची एक कन्या झाली. ती त्याने यज्ञदक्षणा म्हणून आपला ऋत्विज संवर्त याला दिली; संवर्ताने ती दुष्यंताचा पिता जो सुयोर त्याला दिली; तेथे तिला दुष्यंत हा निर्मल पुत्र झाला, व तो मरुताने (पुत्रिका-पुत्र म्हणून) आपला पुत्र म्हटला व या योगाने तुर्वसूचा वंश पौरवांतच सामील झाला, व असे होईल म्हणून तुर्वसु जेव्हा ययातीची जरा घेण्यास तयार होईना, त्या वेळी ययातीने शाप देऊन सांगितलेच होते, ते खरे झाले. या दुष्यंताला पुढे राजा करुत्थाम हा पुत्र झाला; करुत्थामाला पुढे आक्रीड; आक्रीडाला पुढे चार पुत्र झाले. त्यांची नावे:—पांड्य, केरल, चोल व कोल. यांपैकी पांड्य, चोल आणि केरल हे आपल्याच नावाने प्रसिद्ध असलेल्या समृद्ध राज्यांचे मालक झाले. आतां द्रुह्युची संतति. द्रुह्युला दोन पुत्र. बभ्रु व सेतु. या सेतूचा पुत्र अंगार सेतु. हा मरुतांचा नाईक म्हटला जातो. हा मोठा बलाढ्य होता. याचे व यौवनाश्वाचे चौदा महिनेपर्यंत सारखे युद्ध झाले. अखेर यौवनाश्वाने याचा वध केला; पण तो महामुष्किलीने. या अंगाराचा पुत्र गांधार नामक होता, याच्याच नावाने एका मोठ्या देशाला गांधार असे म्हणतात. या देशचे घोडे फार नामांकित असतात. असो; अनूला धर्म हा पुत्र झाला. धर्माचा वृत झाला. वृतापासून दुदूह झाला. दुदूहाचा मुलगा प्रचेता. प्रचेताचा सुचेता. याप्रमाणे मी अनूचा वंश सांगितला. आतां

अत्यंत तेजस्वी व सर्वांत ज्येष्ठ जो यदु त्याचा वंश मी यथाक्रम सविस्तर सांगतो, तो ऐक.

## अध्याय तेहतिसावा.

—:०:—

यदुवंश व कार्तवीर्यार्जुनोत्पत्ति.

वैशंपायन सांगतात:—या यदूला देव-कुमारांसारखे असे पांच पुत्र झाले. त्यांची नावे:—सहस्रद, पयोद, क्रोष्टा, नील व अंजिक. पैकीं सहस्रदाला परम धार्मिक असे तीन पुत्र झाले. त्यांची नावे:—हैहय, हय व वेणुहय. पैकीं हैहयाला धर्मनेत्र हा पुत्र झाला; त्याला पुढे कार्त झाला; कार्ताला पुढे साहज्य पुत्र झाला. या राजाने साहज्यनी नांवाची नगरी वसविली. या साहज्याचा पुत्र राजा माहिष्मान् याने जी पुरी वसविली तिला माहिष्मती असे म्हणतात. या माहिष्मानाला भद्रश्रेण्य नांवाचा प्रतापी पुत्र झाला, व तो वाराणशीचा राजा होता, हे पूर्वीच सांगितले आहे. या भद्रश्रेण्याला दुर्दम नामक विख्यात पुत्र होता. दुर्दमाला पुढे मोठा वीर्यशाली व बुद्धिवान् कनक हा पुत्र झाला. या कनकाला लोकविख्यात असे चार पुत्र होते. त्यांची नावे:—कृतवीर्य, कृतौजा, कृतवर्मा व कृताग्नि हा चवथा. पैकीं कृतवीर्याला अर्जुन नामक पुत्र झाला; याला सहस्र बाहू होते. त्यांच्या बळावर त्याने एकट्याने सूर्यतुल्य तेजस्वी अशा रथांत बसून सप्तद्वीप पृथ्वी जिंकून तिची मालकी पटकाविली. या अर्जुनाने प्रथम अत्रिपुत्र जे दत्तात्रय त्याचे आराधना-निमित्त अयुत वर्षेपर्यंत परम दुश्चर असे तप केले, तेव्हा दत्तांनी प्रसन्न होऊन अत्यंत तेजस्वी असे चार वर दिले. त्यांपैकी पहिल्या प्रथम आपणास सहस्र बाहू असावेत, हे त्याने मागितले. दुसऱ्या वराने आपण अधर्माकडे वळू लागल्यास सज्जनानीं आपले निवारण

करावें असें मागितलें. तिसऱ्यानें प्रथम उग्र क्षत्रिय तेजानें सर्व पृथ्वी जिंकून मग मी पालक या नात्यानें प्रजेला राजीखुषीत ठेवावें असें मागितलें, व चवथ्यानें, मीं शेंकडों लढाया कराव्या, हजारों योद्धे मारावे व अखेर लढतां लढतांच रणभूमीवर कोणातरी वरिष्ठ योद्ध्याच्या हातून मला मृत्यु यावा, असें मागून घेतलें. हे राजा, याच्या सहस्र बाहूंची गंमत अशी होती कीं, तो लढाईस उभा राहिला, म्हणजे एखाद्या निष्णात योग्याप्रमाणें नुसत्या संकल्पबलानेंच त्याला सहस्र बाहू उत्पन्न होत. यामुळे ही एवढी सप्तद्वीप पृथ्वी, परंतु, तीवरील सर्व नगरें, शहरें समुद्र यांसह ती त्यानें आपल्या उग्र तेजानें तेव्हांच जिंकिली. हे राजा, आम्ही असें ऐकतो कीं, त्यानें सात द्वीपांत मिळून यथाविधि सातशें यज्ञ केले; व या सर्व यज्ञांमध्ये रेलचेल दक्षणा दिली. या सर्व यज्ञांत कांचनाचे यज्ञस्तंभ होते, व यज्ञ-वेदीही कांचनमयच होत्या. तो सोहाळा पाहाण्यासाठीं सर्व देव विमानांत बसून येत. गंधर्व आणि अप्सरा या सदासर्वदा त्या समारंभास शोभा आणीत. फार काय सांगावें, या यज्ञाचा थाट पाहून वरीदास नामक गंधर्वाचा पुत्र अगदीं चकित होऊन गेला. त्यानें व नारदऋषि यांनीं मिळून त्या यज्ञाची प्रशंसा श्लोकांनीं गाईली.

नारद म्हणालाः—कोणीही राजे झाले, तरी त्यांना यज्ञांत, दानांत, तपांत, पराक्रमांत किंवा विद्येंत, या कार्तवीर्यार्जुनाची बरोबरी येणारच नाही. याचें योगबल असें विलक्षण आहे कीं, हा एकाच वेळीं सातही द्वीपांत खड्ग, चर्म व धनुष्य घेऊन रथांत बसून चालला आहे, असें लोकांनीं पाहिलें आहे. शिवाय हा यथान्याय प्रजापालन करीत असतां याच्या प्रभावानें प्रजेला कधीं मूल

पडली नाही, कधीं दुःख झालें नाही किंवा कधीं पैशाची तूट पडली नाही. पंचायशी हजार वर्षपर्यंत हा या पृथ्वीवरील सर्व जातींच्या रत्नांचा मालक असून सम्राट् चक्रवर्ति होता. यज्ञादिकांत यजमानही तोच होता, व पृथ्वीचा पालकही तोच होता. अंगांत योगसामर्थ्य असल्यानें तो आपणच होऊन पर्जन्याच्या रूपानें वृष्टि करी. धनुष्याच्या दोरीच्या छेडण्यानें ज्यांची त्वचा कठीण झाली आहे अशा आपल्या सहस्र बाहूंच्या योगानें तो आकाशांतील शरदंतूतील सहस्रकर सूर्यासारखा शोभत होता. त्यानें कर्कोटकनागाचें पुत्र जे सर्व नाग त्यांस जिंकून त्यांच्या माहिष्मती नामक नगरींत आपली मनुष्यांची वस्ती करविली. त्या कमलनेत्र अर्जुनानें वर्षाकाळीं समुद्रांत क्रीडा करीत असतां आपल्या सहस्र भुजांच्या योगानें समुद्राचा ओष भेदून त्याचे एक हजार निरनिराळे ओष केले. त्याचप्रमाणें तो नर्मदेमध्ये खेळत असतां व अवगाहन करीत असतां नर्मदा नदी एखाद्या भ्यालेल्या मनुष्याप्रमाणें हजारों तरंगांनीं (पक्षीं विचारांनीं) युक्त होत्साती त्याचा सत्कार करण्यासाठीं आपल्या फेनाची (फेसाची) शुभ्र मालिका याच्या कंठांत घालीत असे. तो समुद्रांत उतरून आपल्या हजार बाहूंनीं समुद्र ढवळूं लागला, म्हणजे पाताळांतील मोठमोठाले असुर भयानें निचेष्ट होऊन दडून राहात. ज्याप्रमाणें मंथनकालीं देव व असुर यांनीं मंदर नामक पर्वत हा मंथनदंड कल्पून समुद्रांत घातला असतां क्षीरसमुद्राची दशा झाली, त्याचप्रमाणें हा सहस्रार्जुन आपल्या हजार बाहूंच्या योगानें त्या समुद्राची दशा करून सोडी. ती अशीः—समुद्रांत उठणाऱ्या पर्वतप्राय लाटा तो आपल्या हाताच्या तडाक्यांनीं चुरडून टाकी. तिभिंगलादिक जलचरांची धांवपळ

उडवून देई, व समुद्राच्या फेसाचे पुंजके हवेंत वाऱ्याप्रमाणें फेंकून देई, आणि हजारां हजार भोंवरे उत्पन्न करून त्या समुद्राचा वेग दुःसह करून सोडी. त्या भयप्रद नृपश्रेष्ठ सहस्रबाहूला पाहून मोठमोठाले सर्प हा अमृत निर्माण करण्यासाठीं मंदराचलच समुद्राचें घुसळण करीत आहे कीं काय अशी शंका येऊन एका-एकीं पाण्यांतून चमकून उठत, व त्याजपुढें नम्र होऊन खालीं फणा टेकून निश्चल पडत; आणि सायंकालच्या वेळीं एखाद्या कदलीवनांत वायु उसळला असतां त्या वनाची जशी वाताहत होते, त्याप्रमाणें त्या सर्पांची दशा उडून जाई. लंकेचा राजा रावण याला आपल्या शक्तीबद्दल मोठाच गर्व झाला. हें ऐकून सहस्रार्जुनानें त्याला पांच बाणांनीं जिंकून व मूर्च्छागत करून आपल्या धनुष्याच्या दोऱ्यांनीं आवळून सैन्यासह आपल्या माहिष्मती राजधानींत आणून कैदेत ठेविलें.

आपला पुत्र रावण यास सहस्रार्जुनानें बंदीत टाकिलें ही वार्ता कानीं येतांच पुलस्त्य-मुनींनीं स्वतः सहस्रार्जुनाकडे जाऊन त्याची भेट घेऊन आपल्या पुत्राबद्दल रदबदली केली; तेव्हां त्या अर्जुनानें रावणाला मोकळें सोडून दिलें. तो सहस्रार्जुन ज्या वेळीं आपल्या सहस्रही बाहूंनीं अनेक धनुष्यांच्या दोऱ्या एकाच कार्त्तिकी ओढी, त्या वेळीं त्याचा होणारा टणत्कार प्रलयकाळींच्या मेघांच्या कडकडाटाचाच भास उत्पन्न करी; इतकाही पराक्रमी सहस्रार्जुन होता, पण भृगुकुलोत्पन्न परशुरामानें युद्धांत त्याचें तें सुवर्णालंकारांनीं युक्त असें सहस्र बाहूंचें वन एखाद्या तालवनाप्रमाणें खडाखड खडसून टाकिलें. तेव्हां असल्या परशुरामाचे शौर्याची सहस्रबाहूपेक्षांही धन्य म्हटली पाहिजे.

एकाकालीं अग्नीला भूक लागल्यामुळें आपणास कांहीं पोटास घावें म्हणून त्यानें सह-

स्वार्जुनाजवळ याचना केली. त्या वेळीं त्या वीरानें अग्नीला सातही द्वीपें बक्षीस दिलीं; मग अग्नीनें वखवखून जाऊन त्या अर्जुनाच्या राज्यांतल्या चारी मुलखांतील नगरें, गावें, खेडीं, वगैरे जाळून फस्त केलीं. शिवाय, अर्जुनासारख्याचें पाठबळ असल्यामुळें पर्वत व अरण्येही जाळून टाकिलीं. हा जाळण्याचा तडाका चालला असतां ज्याला आपव असेंही दुसरें नांव असे, असा जो तेजस्वी व प्रख्यात वरुणपुत्र वसिष्ठ महामुनि त्याचा रमणीय आश्रम खालीं पाहून अग्नि व अर्जुन या दोघांनीं भीत भीत संगनमत करून एखाद्या वनाप्रमाणें जाळून टाकिला. तो प्रकार पाहून समर्थ वसिष्ठ मुनीनें क्रोधानें सहस्रार्जुनाला शाप दिला कीं, हे हैहया, ज्या अर्थीं तूं मजसारख्याचें तपोवनही जाळल्यावांचून ठेविलें नाहींस त्या अर्थीं तूं इतकेंही अचाट कर्म केलें आहेस तथापि दुसराच कोणी उठून या तुझ्या सर्व कृतीवर पाणी पाडील. हा दुसरा कोण म्हणशील तर भृगुकुलोत्पन्न जमदग्नीच्या पोटीं आलेला राम नांवाचा एक मोठा दीर्घबाहू, प्रतापी, तपस्वी ब्राह्मण आहे. हा वीर तुला तडाक्यास पालथा घालून तुझे हे हजारही बाहू छाटून तुला यमसदनाची वाट दाखवील.

वैशंपायन सांगतातः—हे शत्रुमर्दना, जो राजा धर्मानें प्रजापालन करीत असतां ज्याच्या पराक्रमाचा इतका दरारा होता कीं, त्याच्या प्रजाजनांपैकींही कोणाच्या सुतळीच्या तोड्याचा कोणी अपहार करूं पावत नव्हता. असल्या वीर्यशाली राजाला वसिष्ठ मुनीच्या शापसामर्थ्यानें भार्गवरामाच्या हातून मृत्यु आला. शिवाय या प्रकारचा मृत्यु यावा असा वर सहस्रार्जुनानें आपण होऊनच दत्ताजवळ मागितलाही होता, तो पुरा झाला. या सहस्रार्जुनाला शंभर पुत्र होते. पैकीं त्याच्या



पश्चात् पांचच शिल्पक राहिले. हे सर्वही अस्त्र-पटु, बलाढ्य, शूर, धर्मात्मे व यशस्वी होते. यांचीं नांवे:—शूरसेन, शूर, धृष्ट, कृष्ण आणि अवंतीचा राजा जयध्वज. हे सर्वही वीर्यशाली असून महारथीही होते. पुढें जयध्वजाला ताल-जंघ नांवाचा एक शक्तिमान् मुलगा झाला. याला पुढें शंभर पुत्र झाले. या सर्वांनाही तालजंघच म्हणत. हे महाराजा, एकंदरीत या हैहयांच्या वंशांत भिन्न शाखा मिळून वीति-होत्र, सुजात, भोज, आवंत्य, तौंडिकेर, तसेंच तालजंघ व भरत इत्यादि अनेक कुलें झालीं; परंतु, त्या कुलांचा विस्तार बाहुल्यभयास्तव सांगत नाही.

असो, याप्रमाणें यदूचा प्रथम पुत्र सहस्रद याच्या वंशाचें वृत्त येथवर सांगितलें. आतां त्याचा दुसरा पुत्र जो पयोद त्याची संतति सांगतो. या पयोदालाच वृष म्हणत. याच्या वंशांतील जे यादव ते सर्वही मोठे पुण्यकर्मी होते. या सर्वांचा मुख्य पुरुष हा वृष. या वृषाला पुढें मधु नामक पुत्र झाला. मधूला शंभर पुत्र झाले. त्यांपैकी वृषण नामक जो पुत्र झाला तो वंश चालविणारा निघाला. या वृषणापासून झालेल्या पुढील संततीला वृष्णि म्हणत; किंवा वृषणाच्या बापाचें नांव मधु असल्यामुळें या सर्वांना माधव असेंही म्हणत. तसेंच याचा यदु हा पूर्वज असल्यानें यादव असेंही म्हणत; याखेरीज शूर, शूरवीर आणि शूरसेन या सर्वांचाही हैहय या नांवांत सामान्यत्वानें अंतर्भाव होतो. या सहस्रार्जुनाच्या देशाला शूरसेनच म्हणत. या कार्त्तवीर्याचें जन्म जो नित्य कीर्तन करील त्याची वे म्हटल्या वस्तु हरवावयाचीच नाही व हरवलीच तर पुन्हा सांपडेल.

१ या कामी लोकांच्या तोंडीं असलेला श्लोक. कार्त्तवीर्यार्जुनो नाम राजा बाहु सहस्रवान् ॥ तस्मिन्मरणमात्रेण । गतं नष्टं च लभ्यते ॥

हरिवंश ८-१४.

हे राजा, याप्रमाणें यदूच्या या पांचही लोकमान्य वीरपुत्रांचे वंश तुला सांगितले. हे पांचही वंश आकाशादि पंचमहाभूतांप्रमाणें सर्व स्थावरजंगम सृष्टीचें धारण (पालन) करणारे आहेत. जो कोणी धर्मार्थवेत्ता राजा या पांचही यदुपुत्रांची उत्पत्ति व संतति यांचें श्रवण करील किंवा चित्ताचे ठायीं धारण करील त्याचीं इंद्रियें त्याच्या ताब्यांत रहातील. शिवाय इहलोकांत अत्यंत आवश्यक पण दुर्लभ अशा ज्या आयुष्य, कीर्ति, पुत्रसंतति, ऐश्वर्य व भूमि या पांचही गोष्टी त्या त्याला प्राप्त होतील.

हे राजेंद्रा, यदूचा वंश पुढें चालविणारा क्रोष्टु नामक जो पुण्यशील, यज्ञकर्ता व उत्तम वीर्यशाली पुत्र झाला, त्याचें वंशवर्णन तूं आतां ऐक. कारण, वृष्णिकुलधुरंधर जो परमात्मा श्रीविष्णु म्हणजे श्रीकृष्ण तो याच वंशांत जन्मला असल्यामुळें याच्या श्रवणानें श्रोता सर्व पापांपासून मुक्त होतो.

## अध्याय चवतिसावा.

—:०:—

### वृष्णिवंशवर्णन.

वैशंपायन सांगतात:—क्रोष्टूला दोन स्त्रिया होत्या. पैकीं पहिलीचें नांव गांधारी व दुसरीचें माद्री. यांतून गांधारीनें अनमित्र नामक महा-बलाढ्य पुत्रास जन्म दिलें. माद्रीनें एक युधा-जित् व दुसरा देवमीढुष अशा दोन पुत्रांस जन्म दिलें; या तिघांपासून वृष्णिकुलाची वृद्धि करणारा असा तिहेरी वंश झाला. माद्रीचा पुत्र जो युधाजित् त्याला वृष्णि व अंधक असे दोन पुत्र झाले; पैकीं वृष्णीला पुढें श्वफल्क व चित्रक हे दोन पुत्र झाले. यांतील श्वफल्क हा मोठा धर्मात्मा होता; तो ज्या ठिकाणीं असेल तेथें कधीही व्याधीचें मय नसे

किंवा अवर्षणही होत नसे. हे भरतश्रेष्ठा, एक वेळीं असें झालें कीं, काशीराजाच्या मुलखांत इंद्रानें वृष्टि केली नाही; त्या वेळीं त्यानें अत्यंत पूज्य अशा या श्वफल्काला नेऊन आपल्या राज्यांत बसविलें. तो येतांच इंद्रानें वृष्टि सुरू केली; मग त्या काशीराजानें (हें त्याचें कृत्य स्मरून) आपली गांदिनी नांवाची कन्या त्या श्वफल्काला भार्यार्थ दिली. या कन्येला गांदिनी हें नांव पडण्याचें कारण असें होतें कीं, ती दिनादिनाचे ठायीं म्हणजे दररोज ब्राह्मणाला गाय दान देत असे. ही पूर्वीं गर्भ-स्थितींत आपल्या आईच्या पोटांत असतांना बहुत वर्षपर्यंत बाहेरच येईना. तें पाहून तिचा पिता म्हणाला, 'बाळे, तूं गर्भांतच थांबून कां राहिली आहेस, बाहेर ये; देव तुझें कल्याण करील.' तें ऐकून कन्येनें गर्भांतूनच उत्तर केलें, 'मी जन्मास आल्यापासून प्रतिदिनीं मजकडून जर तुम्हीं गोदान करवाल तर मी बाहेर येईन.' त्यावर तिच्या पित्यानें "ठीक आहे, करवीन" असें आश्वासन दिलें, तेव्हां ती जन्मास आली. जन्मास आल्यावर पित्यानेंही तिची इच्छा पूर्ण केली. असो; असल्या गांदिनीला श्वफल्कापासून जो पुत्र झाला त्याचें नांव अक्रूर. हा मोठा दानशूर, यज्ञकर्ता, शहाणा, सुशिक्षित, अतिथिप्रिय व ब्राह्मणांस बहुत दक्षणा देणारा असा होता. या अक्रूराशिवाय या जोडप्याला उपासंग, मद्गु, मृदुर, अरिमेजय, अरिक्षिप, उपेक्ष, शत्रुघ्न, अरिमर्दन, धर्मधृक्, यतिधर्मा, गृध्रमोजा, अंधक, आबाहु आणि प्रतिबाहु, नांवांचे पुत्र होते; व अतिशय रूपवती सुंदरी नांवाची एक कन्या होती.

हे कुरूनंदना, या अक्रूराला उग्रसेना नामक सुंदर स्त्रीचे ठिकाणीं देवतुल्य तेजस्वी असे प्रसेन व उपदेव नामक दोन पुत्र झाले. आतां श्वफल्काचा बंधु जो चित्रक त्याची

संतति: पृथु, विपृथु, अश्वग्रीव, अश्वबाहु, सुपार्श्वक, गवेषण, अरिष्टनेमी, अश्व, सुधर्मो, धर्मभृत, सुबाहु व बहुबाहु; हे पुत्र. यांशिवाय दोन कन्याही होत्या; त्यांचीं नांवें:—श्रविष्ठा, व श्रवणा. क्रोष्टूचा तिसरा पुत्र जो देवमीदुष त्यानें आपल्या अश्मकी नामक स्त्रीचे ठायीं शूर नामक पुत्र उत्पन्न केला. या शूरानें आपली पट्टराणी जी भोज्या तिचे ठायीं दहा पुत्र उत्पन्न केले. त्यांचीं नांवें:—या दहांपैकीं महाबाहु जो (कृष्णपिता) वसुदेव तो प्रथम झाला. यालाच आनक आनकदुंदुभि असेंही म्हणत. असें नांव पडण्याचें कारण, असें झालें कीं, याचा जन्म होतांच स्वर्गामध्ये आनक म्हणजे पडघम व दुंदुभि म्हणजे नगारे यांचा अति मोठा ध्वनी माजून राहिला. याशिवाय वसुदेवपिता जो शूर त्याच्या मंदिरावर वसुदेवाच्या जन्मदिवशीं स्वर्गांतून अति मोठी पुष्पवृष्टिही झाली. हा वसुदेव सर्व पुरुषांत श्रेष्ठ होता. याच्या अंगकांतीला तर केवळ चंद्रिकेचीच उपमा; व एकंदर रूपानेही याच्या वेळीं याच्या तोडीचा एकही पुरुष या सगळ्या भूलाकावर नव्हता. या वसुदेवामागून त्याचा बंधु देवभाग हा जन्मला. त्यानंतर पुन्हा देवश्रवा, अनाधृष्टि, कनबक, वत्सावान्, अव-गृजिम, श्याम, शमीक व गंडूष इतके जन्मले. याशिवाय त्या शूर राजाला सुंदरशा पांच कन्या झाल्या. त्यांचीं नांवें:—पृथुकीर्ति, पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतश्रवा व पांचवी राजाधिदेवी. या पांचही जणी वीरांच्या माता झाल्या. हे कुरू-नंदना, यांपैकीं पृथा नामक जी कन्या होती, तिला कुंति किंवा कुंतिभोज नामक जो राजा होता, त्यानें "ही आपली कन्या" असें म्हटल्यावरून, शूर राजानें आपल्या त्या पूज्य व वृद्ध मित्राला ती कन्या दत्तक दिली. त्या

दिवसापासून पृथा ही कुंतिभोज राजाची कन्या होऊन स्वतःच कुंति या नांवानें प्रसिद्ध झाली. या पृथेची बहीण जी श्रुतदेवा तिला अंत्य नामक पुरुषापासून जगृहु नामक पुत्र झाला. तिसरी बहीण जी श्रुतश्रवा तिचे पोटीं चेदिपति जो दमघोष त्याजपासून महाबलाढ्य शिशुपाल हा जन्मास आला. हा शिशुपाल म्हणजे पूर्वी जो हिरण्यकशिपु नामें प्रसिद्ध दैत्यराज होऊन गेला तोच. चवथी बहीण पृथुकीर्ति, तिचे ठिकाणीं वृद्धशर्म्यापासून करुष देशाचा राजा महाबलाढ्य वीर दंतवक्र ( वक्र-दंत ) तो जन्मला. स्वतः पृथा ही कुंति भोजाची कन्या झाल्यावर पांडुराजानें तिजशीं लग्न लाविलें. हिला मोठा धर्मवेत्ता जो राजा युधिष्ठिर, तो यमधर्मापासून झाला; नंतर भीमसेन हा वायुदेवापासून झाला; व धनंजय किंवा अर्जुन जो पराक्रमानें प्रतिहंद्र असून लोकांत मोठा गाजलेला वीर होता; तो इंद्रापासून झाला.

वृष्णीचा कनिष्ठ पुत्र जो अनामित्र त्यापासून शिनि हा जन्मला. शिनीपासून सत्यक. सत्यकाला पुढें युयुधान आणि सात्यकि असे दोन पुत्र झाले. पैकीं युयुधानाला असंग व असंगाला भूमि हा पुत्र झाला. या भूमीपासून युगंधर हा पुत्र झाला, आणि तेथें हा वंश खुंटला. प्रसिद्ध जो भक्त उद्धव तो वसुदेवाचा बंधु जो देवभाग त्याचे पोटीं आला. हा उद्धव सर्वे पंडितांत अतिश्रेष्ठ गणला असून याची देववत् कीर्ति होती. अनाधृष्टि यानें अश्मकी नामक स्त्रीचे ठिकाणीं निवृत्तशत्रु नामक एक यशस्वी पुत्र निर्माण केला. त्याचप्रमाणें देवश्रवा यानें ( स्वस्तीचे ठायीं ) शत्रुघ्न नामक पुत्र

उत्पन्न केला. या देवश्रव्यापासून पुढें एकलव्य हा झाला. हा निषादांनीं वाढविला असल्यामुळें याला नैषादि हेंच नांव वहिवाटीत पडलें. वसुदेवाचा जो वत्सावान् म्हणून भाऊ सांगितला त्याचे पोटीं पुत्रसंतति नसल्यामुळें शूरपुत्र वसुदेव यानें आपला औरस पुत्र, जो मोठा वीर्यशाली असून ज्याला कौशिक असें म्हणत, त्याचें वत्सावताच्या हातावर उदक सोडिलें ( दत्तक दिला ). वसुदेवाचा दुसरा भाऊ जो गंडूष यालाही पुत्रसंतान नव्हतें. त्यामुळें श्रीकृष्णानें आपल्या पुत्रांपैकीं चारुदेष्ण, सुचारु, पंचाल व कृतलक्षण हे चौघे गंडूषाला दिले. यांपैकीं चारुदेष्ण नांवाचा जो पुत्र सांगितला हा रुक्मिणीच्या पुत्रांतील धाकटा. हा मोठा शूर असून याची अशी ख्याति होती कीं, हा बाहेर पडला म्हणजे संग्राम केल्यावांचून परत यावयाचाच नाही; व हा आतां युद्धांत अनेक पुरुष मारून आपणास चारु म्हणजे सुंदर किंवा मिष्ट अशा मांसाची मेजवानी देईल, अशा विश्वासानें काक वगैरे हजारों पक्षी त्याचे मागें धांवत जात. यामुळें त्याला चारुदेष्णा असें नांव पडलें. कनवक नांवाचा जो आणखी एक वसुदेवाचा भाऊ होता, त्याला तंद्रिज आणि तंद्रिपाल असे दोन पुत्र झाले; व अवगंजिमाला वीर व अश्वहनु असे दोन पुत्र झाले. हे दोघेही योद्धे होते. वसुदेवाचा भ्राता जो श्याम त्याचा जो धाकटा भाऊ शमीक त्यालाच श्यामानें आपला पुत्र म्हटलें होतें. ह्या शमीकाला आपण एकच प्रांताचे राजे असणें ही गोष्ट निंद्य वाटल्यामुळें त्यानें सर्व राजे पादाक्रांत करण्याचा राजसूय नामक यज्ञ आरंभिला. या दिग्विजयांत त्यानें अजातशत्रु जो पांडव युधिष्ठिर त्याचें साह्य

१ या ठिकाणीं कुंल असाही पाठ सांपडतो.

२ “ स्त्रीसंग करितांच तुला मृत्यु येईल ” असा पांडूला शाप असल्यामुळें, त्याच्या स्त्रिया कुंति व माद्री यांना मंत्रदेवतांपासून संतति प्राप्त करून घ्यावी लागली.

३ ज्येष्ठ भ्राता हा पितातुल्य आहे हें प्रसिद्धच आहे.

संपादून सर्व शत्रूंचा नाश करून सार्वभौमत्व संपादिलें.

हे राजा, आतां मी वसुदेवाच्या शूर पुत्रांचें वर्णन करितों तें ऐक. याप्रमाणें अत्यंत तेजस्वी व अनेक शाखांनीं युक्त अशा या वृष्णीच्या विस्तीर्ण त्रिविध वंशाचें जो चित्तांत धारण करील, त्याला इहलोकीं अनर्थप्राप्ति होणार नाही.

### अध्याय पसतिसावा.

—:०:—

#### कृष्णवंशवर्णन.

वैशंपायन सांगतात:—रूपानें एकीहून एक अधिक सरस अशा चौदा सुंदरी वसुदेवाच्या पत्न्या होत्या: त्यांचीं नांवें क्रमशः ऐक. पहिली रोहिणी, दुसरी इंद्रिा; ही रोहिणी-पेशांही रूपानें सरस होती. तिसरी वैशाखी, चौथी भद्रा, पांचवी सुनाम्नी. या पांचही पुरुकुलांतील होत्या. सहावी सहदेवा, सातवी शांतिदेवा, आठवी श्रीदेवा, नववी देवरक्षिता, दहावी वृकदेवी, अकरावी उपदेवी व (आपल्या बहिणींत सातवी वसुदेवाच्या स्त्रियांत) बारावी देवकी. या शेवटल्या सातीजणी देवकाच्या कन्या होत्या. यांशिवाय सुतनु व वडवा या दोन परिचारिका, म्हणजे केवळ भोगांगना होत्या. एकूण चौदा. यांपैकीं पुरुकुलोत्पन्न जी रोहिणी ती बाल्हिकाची मुलगी होती. ही वसुदेवाची ज्येष्ठ स्त्री असून मोठी लाडकी होती; हिजपासून त्याला पहिला पुत्र झाला तो राम. त्यापुढें सारण, शठ, दुर्दम, दमन, श्वभ्र, पिंडारक व उशीनर, हे पुत्र व चित्रा नामक एक कन्या. (अशीं नऊ अपत्यें होऊन त्यांतील) चित्रा ही कन्या उपजतांच मेल्या-मुळें तिची वासना राहून ती पुन्हां त्याच आईच्या पोटीं जन्मास येऊन सुभद्रा हें नांव

पावली. एकूण रोहिणीचीं दहा अपत्यें झालीं. देवकी नामक जी वसुदेवाची (बारावी) स्त्री सांगितली तिचे ठिकाणीं महातपस्वी श्रीकृष्ण जन्मला. रोहिणीपुत्र जो राम (बलराम) त्याला रेवती नामक स्त्रीपासून निशठ नांवाचा मोठा लाडका पुत्र झाला. अर्जुनपासून सुभद्रेला अभिमन्यु नांवाचा रथी पुत्र झाला; व काशि-राजकन्येचे ठायीं अक्रूराला सत्यकेतु हा पुत्र झाला.

आतां वसुदेवाच्या सारत बायकांपासून त्याला जे जे शूर पुत्र झाले, त्यांचीं नांवें मजपासून ऐक. त्याच्या शांतिदेवा नामक स्त्रीला भोज आणि विजय असे दोन पुत्र झाले. सुनामा स्त्रीला वृकदेव व गद हे पुत्र झाले. देवरक्षितेला उपासंगवर हा पुत्र झाला. त्रिगर्त राजाची कन्या वृकदेवी तिला अगावह नांवाचा महात्मा पुत्र झाला.

या वृकदेवीचा बाप जो त्रिगर्त राजा त्याचा पुरोहित शैशिरायण गार्ग्य हा पुरुष आहे कीं नपुंसक आहे, ही परीक्षा करण्याकरितां (सर्व यादव मंडळीसमक्ष) यादवांचा पुरोहित जो शाल त्यानें गर्गाचें शिस्न हातांत धरून पाहिलें. परंतु, गार्ग्य हा मोठा दृढव्रती असल्यामुळें त्याचें शिस्न मुळीच उत्थान पावलें नाहीं. अर्थात्, वीर्यस्खलनही झालें नाहीं, त्यावरून हा नपुंसक आहे असें शालानें पिकविलें व सर्व यादवमंडळी खो खो हंसूं लागली (परंतु, या हंशाचा परिणाम गार्ग्यावर फार वेगळा झाला). गार्ग्याची अशी नाहक विटंबना केल्यामुळें त्याला जो संताप

१ त्रिगर्ताधिपति देवक याच्या सहदेवाप्रभृति ज्या सात मुली वसुदेवाला दिल्या होत्या त्या.

२ वरपक्षाकडील (यादव) लोकांनीं वधूपक्षाकडील (त्रिगर्त) मनुष्यांची अवहेलना करण्याचा पाठ पुराण कालापासूनचा दिसतो.

चढला त्या संतापानें त्याचें रक्तही लोखंडासारखें काळें झालें, व मनही पोलादासारखें घट्ट होऊन तो सतत बारा वर्षे तसाच घुश्शांतच राहिला. बारा वर्षांनंतर त्याचा कोप शांत झाला, तेव्हां ( आपलें पौरुष सिद्ध करण्याकरितां ) त्यानें एक गवळ्याची मुलगी जवळ घेऊन तिजशीं मैथुन आरंभिलें. या गोपकन्येला गोपाली असें म्हणत. खरें पाहातां ही गोपस्त्रीचा वेष घेतलेली अप्सरा होती. गाग्यांचें वीर्य असें तसें नव्हतें; तें मोठें तीव्र व अमोघ. यामुळे त्या गोपालीला जो गर्भ राहिला तो राहिलाच. तो कांहीं ढळेना व तिला तर सोसण्यास फार जड जाऊं लागला. आतां या मनुष्यवेष धारण करणाऱ्या स्त्रीचे ठायीं गाग्यानें हा जो गर्भ स्थापन केला, तो शंकराच्या आज्ञेवरून केला होता. हा गर्भ जन्मास येतांच त्या कालीं कोणी एक अपुत्रिक यवन राजा होता त्याच्या अंतःपुरांतील स्त्रियांनीं त्याला वाढविलें. हा वर्णानें भुंग्यासारखा काळा असून यवनमंदिरांत वाढल्यामुळे याला कालयवन असें नांव पडलें. हा कालयवन पुढें फारच बलाढ्य निर्घाला. याला लढाईची मोठी खुमखुम असे. ( व ती पुरी करण्यासाठीं तो नेहमीं योद्ध्यांच्या चौकशींत असे. ) एकदां त्यानें ब्राह्मण मंडळींत योद्ध्यांची चौकशी चालविली असतां ( कळलाव्या ) नारदांनीं त्याला वृष्णि व अंधक या कुलांचीं नांवें

सांगितलीं. ती वार्ता ऐकतांच कालयवन एक अक्षौहिणी सेना घेऊन मथुरेवर आला. नंतर त्यानें ( रीतीप्रमाणें युद्धाचा निरोप घेऊन ) वृष्णि व अंधक यांच्या वसतींत दूत पाठविला. ती युद्धवार्ता ऐकतांच वृष्णि व अंधक यांना त्या कालयवनाचें अतिशय भय पडून त्या समयी त्यांनीं आपल्या पक्षांतील मोठा अक्कलवाला जो श्रीकृष्ण त्याची सल्ला घेतली. तेव्हां त्यानें ( कालयवन हा श्रीशंकराच्या कृपेचें फळ आहे हें ध्यानीं घेऊन ) शंकराचा मान राखण्यासाठीं आपण मथुरानगरी सोडून पळून जावें अशी सल्ला दिली. त्यामुळे सर्वही यादव मथुरा सोडून कुशस्थली उर्फ द्वारका या ठिकाणीं वसती करण्याच्या हेतूनें मथुरेतून एक निश्चय करून पळाले.

या अध्यायांत सांगितलेलें हें कृष्णाचें जन्म जो ज्ञाता मनुष्य पवित्र राहून व इंद्रिय दमन करून अमावास्या व पौर्णिमा इत्यादि पर्वांचे ठिकाणीं कोणाला ऐकवील तो अनृणी व सुखी होईल.

## अध्याय छत्तिसावा.

—:—

### क्रोष्टुवंशवर्णन.

वैशंपायन सांगतात:—क्रोष्टूच्याच वंशाची आणखी एक बाजू तुला सांगतो. या क्रोष्टूलाच वृजिनीवान् नामक एक महायशस्वी पुत्र झाला. या पुत्रालाही पुढें पुत्र झाला, त्याचें नांव स्वाहि. हा स्वाहाकार करणारांत श्रेष्ठ होता. या स्वाहीला रुषद्गु नांवाचा मोठा वक्ता पुत्र झाला. आपल्याला सुतप्राप्ति व्हावी या इच्छेनें या रुषद्गुनें, ज्यांत ब्राह्मणांस विपुल दक्षणा दिली गेली असे अनेक यज्ञ केले. त्या योगानें त्याला चित्ररथ नांवाचा सर्वोत्कृष्ट पुत्र झाला. हा मोठा कर्मठ होता. याला पुढें

१ हाच विषय विष्णुपुराणांत पहातां या अनपत्य यवनानें आपल्या स्वतःचे स्त्रीचे ठिकाणीं गाग्य मुनीकडून हा कालयवन निर्मिला असा उल्लेख आहे. या विसंगतीचें समाधान नीलकंठांनीं “ कल्पभेदानें ” असें केलें आहे.

२ गाग्यांचा वर्ण कोपानें काळा झाला होता, त्याचा हा परिणाम.

३ ज्याचे शरीराचा पूर्वार्ध बैलाचे आकाराचा आहे असल्या प्रकारच्या घोड्यावर बसून तो पुराणांत जात असे.

शशबिंदु नांवाचा मोठा वीर व विपुल दक्षिणा वांटणारा असा उदार पुत्र झाला. याचें आचरण राजकुलांत येऊन जे महात्मे ऋषि-संज्ञा पावले त्यांत अग्रगण्य होतें. या शश-बिंदूला पुढें मोठा लौकिकवान् असा पृथुश्रवा नामक पुत्र झाला. पुराणज्ञ ऋषि याचेंच दुसरें नांव अंतर होतें असेंही म्हणतात. या अंतराला पुढें सुयज्ञ नामक पुत्र झाला. सुयज्ञाला पुढें उषत नामक पुत्र झाला. हा यज्ञरूपी जो स्वधर्म त्यावर प्रेम करणारांत श्रेष्ठ होता. या उषताला शिनेयु नांवाचा शत्रूना पीडा देणारा पुत्र झाला. हे राजा, या शिनेयूला मरुत्त नांवाचा ऋषितुल्य पुत्र झाला. या मरुत्तानें (पुत्र होईना तेव्हां) रागानें, धर्माचें फल मुख्यतः मरणोत्तर मिळावयाचें असतांही त्याच्या अंशतः तरी फलप्राप्तीच्या लोभानें, रगड धर्म केला; त्यामुळें त्याला कंबलबर्हिष नांवाचा पुत्र झाला. या कंबलबर्हिषाला पुत्र व्हावा अशी इच्छा झाली असतां शतप्रसूति नांवाचा पुत्र झाला. याला पुढें रुक्मकवच. या रुक्मकवचानें कवच व धनुष्य धारण करणारे शेंकडों धनुर्धर आपल्या तीव्र बाणांनीं दुद्धांत मारून अलोट संपत्ति मिळविली. या रुक्मकवचापासून परवीरांचें निर्दलन करणारा असा पराजित् नांवाचा पुत्र झाला. या परा-जिताला पांच मोठे पुत्र झाले. त्यांचीं नांवें:— रुक्मेषु, पृथुरुक्म, ज्यामघ, पालित व हरि. यांपैकीं पालित व हरि हे दोघे पुत्र विदेहा-धिपतीच्या साह्यार्थ पराजितानें दिले. बाकीच्या-पैकीं रुक्मेषु हा राजा झाला. दुसरा जो पृथु-रुक्म तो रुक्मेषूच्याच तंत्रानें असे. या दोघां भावांनीं मिळून तिसरा भाऊ जो ज्यामघ त्याला राज्यांतून हाकलून लाविलें. तेव्हां तो

अरण्यांत आश्रम करून तेथें शांत चित्तानें राहिला.

परंतु, तेथें असतां वनवासी ब्राह्मणांनीं बोलून बोलून त्याची राज्यतृष्णा जागृत केली. तेव्हां त्यानें एकट्यानें रथावर ध्वजा चढवून एका दूर देशावर स्वारी करून तो जिंकिला. हा जिंकिलेला देश नर्मदेच्या तीरीं असून त्यामध्ये मृत्तिकावती नामक नगरी होती. ती काबीज केल्यावर त्यानें ऋक्षवान् नामक पर्वत आपल्या सत्तेखालीं आणून तेथें शुक्ति-मती नामक एका नगरींत वसति धरिली. या ज्यामघाला श्येब्या नामक स्त्री भार्या मिळाली होती. ही अत्यंत पतिनिष्ठ असून मोठी शिर-जोर होती; यामुळें हिला जरी पुत्र नव्हता, तरी पुत्रार्थ दुसरी स्त्री करण्याचें धारिष्ट ( तिच्या भयास्तव ) राजाला होईना. अशा स्थितींत तो एका दूर प्रांतीं लढाईवर गेला. त्या लढाईत त्याचे हातीं एक मुलगी लागली, ती घेऊन तो घरीं आला. तिला पाहातांच ही कोण, ही कोण, असें पुसपुसून शैब्येनें त्याचें डोकें उठविलें. तेव्हां ( ही आपल्याला ही स्त्री जिऱूं देणार नाहीं अशी भीति पडून ) राजानें उत्तर केलें, “ ही तुझी सून.” तें ऐकून राणी म्हणाली, “ नवलच. माझी सून म्हणजे कोणाच्या गळ्यांत बांधावयाची ? ” तो प्रश्न ऐकून राजा ज्यामघ म्हणाला, “ कोणाच्या म्हणजे तुला पोर होईल त्याच्या.” ( हा त्यांचा संवाद झाल्यावर असा चमत्कार घडला कीं ) राजानें आणलेल्या त्या उपदानवी नामक कन्येच्या उग्र तपोबलानें ( तिची भावी सासू ) श्येब्या ही म्हातारी झाली होती तरीही तिला तितक्यापुरती ज्वानी येऊन तिला विदर्भ नांवाचा पुत्र झाला. या विदर्भानें पुढें त्याच्या बापानें सून म्हणून

१ हा लेखी पोथीचा पाठ आहे. छापील पाठ ‘ उत्तरम् ’ असा आहे.

१ कांहीं पुराणांत ही कन्या त्यानें स्वयंवरांत मिळ-विली असें लिहिलें आहे.

आगाऊच आणून ठेविलेली जी राजकन्या उप-  
दानवी तिचे ठायीं मोठे विद्वान् व रणशूर  
असे क्रथ व कौशिक या नांवांचे दोन पुत्र  
उत्पन्न केले. त्यांशिवाय लोमपाद नांवाचा एक  
तिसराही पुत्र त्याला झाला. या लोम-  
पादाला बभ्रु नामक पुत्र झाला. या बभ्रूचा पुत्र  
आह्वति नामक झाला. याला मोठा विद्वान् व  
धार्मिक कौशिक नामक पुत्र झाला. या  
कौशिकाला चेदि नामक पुत्र झाला. चैद्य  
नांवांने जे सुप्रसिद्ध राजे झाले, त्यांना चैद्य  
नांव पडण्याला हा चेदीच कारण.

वर जो ज्यामघाचा पुत्र विदर्भ म्हणून  
सांगितला त्याला भीम नामक पुत्र झाला.  
भीमाला पुढें कुंति हा पुत्र झाला. कुंतील  
मोठा प्रतापी व रणशूर असा धृष्ट नांवाचा  
पुत्र झाला. या धृष्टाला पुढें शूर व धार्मिक  
असे तीन पुत्र झाले. त्यांचीं नांवां:—आवंत,  
दशार्ह व बलाढ्य विषहर. या दशार्हाला  
व्योम झाला. व्योमाला जीमूत. जीमूताला  
बृहति. बृहतीला भीमरथ. भीमरथाचा नवरथ.  
नवरथाचा दशरथ. दशरथाचा शकुनि. शकु-  
नीचा करंभ. करंभाचा देवरात. देवराताचा  
देवक्षत्र. देवक्षत्राच्या पोटीं मोठा यशस्वी,  
तेजानें देवपुत्रांसमान, पुढील मधुनामक  
राजांचा मूळ पुरुष, वाणीचा गोड व बापाला  
आनंद देणारा असा मधुनामक पुत्र झाला. या  
मधूला विदर्भकन्येचे ठिकाणीं मरुवसा हा पुत्र  
झाला. या मरुवसानें पुरुद्वान् नांवाचा पुत्र  
उत्पन्न केला. हा मोठा उत्तम होता. या पुरु-  
द्वानानें आपल्या मद्रवती नामक स्त्रीचे ठायीं  
जो पुत्र उत्पन्न केला त्याचेंही नांव मधुच  
होतें. याशिवाय पुरुद्वानाला ऐश्वकाी नांवाची  
दुसरी एक स्त्री होती, तिचे ठायीं सत्त्वान्  
नामक पुत्र झाला. हा सत्त्वान् सर्वगुणी

असून पुढें सात्वत नांवाचे जे राजे झाले त्यांतील  
मुख्य होता.

येथवर सांगितलेली ही ज्यामघ राजाची  
संतति जो कोणी समजून घेईल, त्याला  
अत्यंत कीर्ति मिळून पुत्रप्राप्तिही होईल.

## अध्याय सदतिसावा.

—:—

### बभ्रुवंशवर्णन.

वैशंपायन सांगतात:—सत्वसंपन्न जो  
सत्वत त्यापासून कौशल्येनें ( सत्वताची स्त्री )  
ज्या पुत्रांस जन्म दिला त्यांचीं नांवां:—  
भजी, भजमान्, दिव्यदेवावृध, महाबाहु  
अंधक व यदुकुलानंद वृष्णि. यांपैकी चौघांचा  
वंश विस्तारानें सांगतों तो ऐक. भजमानाला  
बाह्यका व उपबाह्यका या नांवाच्या दोन  
स्त्रिया होत्या. या सृजयाच्या मुली होत्या.  
यांपासून भजमानाला अनेक पुत्र झाले. त्यांतील  
जी पाहिली म्हणजे बाह्यक सृजया तिजपासून  
कृमि, क्रमण, धृष्ट, शूर व पुरंजय, हे झाले;  
व दुसरी जी उपबाह्य सृजया तिजपासून अयु-  
ताजित्, सहस्राजित्, शताजित् व दाशक हे  
झाले. आतां देवावृधाचा वंश:—हा राजा मोठा  
यज्ञकर्ता होता. शिवाय आपणास सर्वगुणोपेत  
पुत्र व्हावा असा दृढ हेतु मनांत धरून यानें  
फारच मोठें तप केलें. त्यानें मनःसंयम करून  
समाधीचा अभ्यास केला. तपश्चर्येच्या कालांत  
तो पर्णाशा नामक नदीचें स्नान, आचमन  
वगैरे करित असे. त्याच्या त्या ( भक्तिपुरः-  
सर ) सततस्पर्शानें ती नदी प्रसन्न होऊन  
त्याचे कल्याणाविषयी उद्युक्त झाली; व राजाचें  
इष्ट कोणत्या रीतीनें सिद्ध करितां येईल याचा  
विचार करित असतां राजाला ज्या प्रकारचा  
पुत्र पाहिजे होता त्या प्रकारचा पुत्र जिचे  
ठायीं उत्पन्न होऊं शकेल अशी एकही स्त्री

तिला आढळेना. त्या वेळीं तिनें निश्चय केला कीं, आतां आपणच स्त्री-रूप घेऊन याची सहचारिणी व्हावें. असा संकल्प होतांच ती अतिशय सुंदर असें रूप धारण करून कुमारी रूपानें जन्मास आली. तिनें देवावृध राजाला वारिलें व त्या राजाचेंही तिजवर मन गेलेंच होतें. लौकरच त्या उदार बुद्धीच्या राजानें तिचे ठिकाणीं तेजस्वी असा गर्भ स्थापिला. दहाव्या महिन्यांत ती सरिच्छेष्टा, बभ्रुनामक सर्वगुणसंपन्न पुत्राला जन्म देती झाली. या वंशाचें वर्णन करणारे कांहीं पुराणज्ञ महात्मे देवावृधाचे पुढीलप्रमाणें गुण वर्णन करितांना आम्हीं ऐकले आहे. ते म्हणत, “ देवावृध हा तर देवांच्या तोडीचाच आहे; व त्याचा पुत्र बभ्रु हाही सर्व मनुष्यांत श्रेष्ठ आहे. याचें योगसामर्थ्य इतकें विलक्षण आहे कीं, हा आमचे समोर आसपास किंवा दूर कोठेही पाहावा तरी सारखाच दिसतो. या बापलेंकांनीं रणांत मारिल्यामुळें सात हजार सहासष्ट वीर मुक्तीस गेले आहेत. हा बभ्रु मोठा यज्ञकर्ता, दानशौण्ड, विद्वान्, ब्रह्मज्ञ, दृढायुध, कीर्तिमान् व महातेजस्वी असून सात्वतांच्या वंशांत महाप्रसिद्ध आहे. इत्यादि. ” या बभ्रूचे विस्तीर्ण वंशांत मार्तिकावत नांवाचे सुप्रसिद्ध भोज राजे झाले.

सात्वताचा पुत्र जो अंधक त्याजपासून दृढाश्व राजाच्या मुलीला चार पुत्र झाले. त्यांचीं नांवें:—कुकुर, भजमान, शमि व कंबलबर्हिष. पैकीं कुकुराला धृष्णु हा पुत्र झाला. धृष्णूपासून कपोतरोमा. त्याला पुढें तैत्तिरि. तैत्तिरीचा पुनर्वसु. पुनर्वसूचा अभिजित्. अभि-मिताला आहुक हा पुत्र व आहुकी या नांवानें प्रसिद्ध असलेली कन्या हीं झालीं. हीं नांव-लौकिकवानांत मोठीं श्रेष्ठ होतीं. यांपैकीं आहु-काला उद्देशून पुराणज्ञ लोक पुढील अर्थाची

गाथा गातात. “ हा आहुक राजा आपले भोंवतीं श्वेतवर्णाचा किंवा शुद्ध मनाचा परिवार घेऊन व ऐशीं भाते किंवा ढाली बरोबर घेऊन देवांनीं राक्षित होत्साता एखाद्या उत्साहसंपन्न तरुण अश्वप्रमाणें बाहेर स्वारीला निघत असतो. ” या आहुकाचे भोंवतीं जी मंडळी असते तीं ज्यानें यज्ञ केला नाहीं, ज्याचें आचरण शुद्ध नाहीं, ज्याला सहस्रवर्ष आयुष्य नाहीं, ज्यानें शेंकडों मुद्रा ( नाणें ) दान केलें नाहीं, व ज्याला पुत्र नाहीं असा एकही मनुष्य नसे. आहुकाच्या आज्ञेबरोबर दहा हजार हत्ती, ज्यांना लगाम व पट्टे बांधले आहेत असे, त्याचप्रमाणें मेघांप्रमाणें घडघडणारे, आंतून सोन्यारुप्यानें मढाविलेले व वर बुरखा चढवून ध्वजा उभारलेले असे दहा सहस्र रथ, पूर्व दिशेला जातात; व तितकेच हत्ती आणि रथ उत्तरेच्या दिशेला धांवतात. या प्रकारची तयारी घेऊन तो आहुक राजा आसपासच्या सर्व राजांना जिकून आपले जे जात-बंधु भोज त्यांना घंटा बांधिलेल्या रथांत घालून मोठ्या थाटानें मार्गीतून मिरवीत जात असे. अंध-कांनीं आहुकाची बहिण जी आहुकी ती अवंति-राजाला दिली; व स्वतः आहुकानें काशीराजाची कन्या केली, तिचे ठिकाणीं त्याला दोन पुत्र झाले; त्यांचीं नांवें: देवक आणि उग्रसेन. हे दोघेही देवकुमारांसारखे तेजस्वी होते. देवकाला पुढें देवतुल्य चार पुत्र झाले. त्यांचीं नांवें:—देववान्, उपदेव, सुदेव व देवरक्षित. यांखेरीज त्याला मुली झाल्या. त्या सातीही त्यानें एकट्या वसुदेवालाच दिल्या. त्यांचीं नांवें:—देवकी, शांतिदेवा, सुदेवा, देवरक्षिता, वृकदेवी, उपदेवी व सातवी सुनाम्नी.

आतां उग्रसेनाची संतति:—उग्रसेनाला नऊ मुलगे होते. त्यांत कंस हा वडील; त्याचे



खाली न्यग्रोध, सुनामा, कंक, राजा शङ्ख, राष्ट्रपाल, सुतनु, अनाधृष्टि व पुष्टिमान् असे आठ. या भावांना पांचजणी बहिणी होत्या. त्यांचीं नांवेः—कंसा, कंसवती, सुतनु, राष्ट्रपाली व कंका; ही फारच सुंदर होती. (हे राजा) कुकुरापासून झालेल्या उग्रसेनाच्या संततीचें वर्णन हें मी तुला सांगितलें. हे कुकुरकुलोत्पन्न राजे अमित तेजस्वी होते, यांचें वंशवर्णन जो कोणी ऐकेल त्याला विपुल संतति होऊन त्याचा वंश ठीक चालेल.

## अध्याय अडतिसावा.

—:—

### स्यमंतकमणि.

वैशंपायन सांगतातः—भजमानाला विदूरथ नांवाचा पुत्र झाला, हा रथींमध्ये श्रेष्ठ होता. याला पुढें राजाधिदेव नांवाचा एक शूर पुत्र झाला. या राजाधिदेवाला एकाहून एक असे चढते पराक्रमी पुत्र झाले. त्यांचीं नांवेः—दत्त, अतिदत्त, शोणाश्व, श्वेतवाहन, शमी, दंडशर्मा, दंडशत्रु व शत्रुजित्. यांना श्रवणी व श्रविष्ठा अशा दोन बहिणी होत्या. शमीला प्रतिक्षत्र नामक पुत्र झाला. प्रतिक्षत्राचा स्वयंभोज, स्वयंभोजापासून हृदीक झाला. हृदीकाचे सर्वच पुत्र मोठे पराक्रमी झाले. यांत कृतवर्मा हा वडील होता व शतधन्वा, हा मध्यम. या शतधन्वाला देवर्षि च्यवन याच्या आशीर्वादानें चार पुत्र झाले, त्यांचीं नांवेः—भिषक्, वैतरण, सुदांत व विदांत. यांशिवाय कामदा व कामदंतिका अशा दोन कन्या झाल्या. कंबलबर्हि नामक जो मरुत्पुत्र सांगितला त्याला देववान् नामक पुत्र झाला. देववानाला असमौजा, वीर आणि नासमौजा. यांपैकी असमौजाला पुढें संतति न झाल्यामुळे अंधकारानें आपले तीन पुत्र सुदंष्ट्र,

चाररूप व कृष्ण हे असमौजाला दिले. हे राजा, हे व यांशिवाय दुसरे अनेक अंधक-वंशीय राजे मी तुला सांगितले. या अंधकाच्या वंशाचें जो नित्य मनन करील त्याला स्वतःला विपुल वंशप्राप्ति होईल.

क्रोष्टूला गांधारी व माद्री या स्त्रिया होत्या. (हें मार्गें सांगितलेंच आहे.) यांतील गांधारीला महाबलाढ्य अनमित्र नांवाचा पुत्र झाला. माद्रीला युधाजित् आणि देवमीदुष. अनमित्र हा शत्रूंना जिंकणारा आणि स्वतः पराभव न पावणारा असा होता. या अनमित्राला निम्ननामक पुत्र झाला. निम्नाला प्रसेन व सत्राजित् असे दोन पुत्र झाले. हे दोघेही शत्रुसेनेला जिंकणारे होते. यांपैकी प्रसेन हा द्वारावतींत रहात असतां त्याला समुद्रांतून निघालेला स्यमंतक नांवाचा दिव्य महामणी प्राप्त झाला. त्याची कथा अशीः—

या प्रसेनाचा बंधु सत्राजित् याचा आणि सूर्याचा जिवश्च कंठश्च स्नेह होता. एके वेळीं तो रथिश्रेष्ठ सत्राजित् रात्र सरून प्रातःकाल होण्याच्या समयीं स्नान व सूर्योपस्थान करण्यासाठीं रथांत बसून समुद्रतीरीं आला. तेथें सूर्योपस्थान करीत असतां भगवान् सूर्यनारायण नाक, डोळे वगैरेंचा आकार स्पष्ट न होतां केवळ तेजोमंडलरूपानें त्याचे पुढें येऊन उभा राहिला. त्याला पाहून सत्राजित् म्हणाला, “हे ज्योतिष्पते, तूं इतका मजसन्निध येऊन मला अधिक फायदा तो काय? कारण, तूं आकाशांत असतां ज्याप्रमाणें केवळ तेजोमंडलरूपानें माझ्या दृष्टीस पडतोस त्याच रूपानें जर आतांही दृष्टीस पडणार तर मग तुझी माझी एवढी दाटी पडून मला विशेष लाभ कोणता?” हे त्याचे शब्द ऐकतांच भगवान् सूर्यनारायणानें आपल्या कंठांतील स्यमंतक नांवाचें मणिरत्न सोडून एकीकडे पृथ्वीवर

ठेविलें. तो तेजस्वी मणी दूर होतांच सूर्याचे नाकडोळे सत्राजिताच्या स्पष्ट दृष्टीस पडूं लागले. तेव्हां त्याचें तें रमणीय रूप पाहून प्रसन्न होऊन राजानें त्याशीं घटकाभर इकडल्या तिकडल्या गोष्टी केल्या. मग भगवान् सूर्य जावयास निघाला. तेव्हां सत्राजित त्याला म्हणाला, “ हे भगवन्, हे प्रभो, आपण या मणिरत्नाच्या तेजानें सर्व लोकांना हा नित्य प्रकाश देत असतां ( हें मला आतां समजलें ). तर एवढें रत्न आपण मला द्यावें. कारण आपण माझे जिवश्च स्नेही म्हणवितां.” हें ऐकून भास्करानें तो मणी सत्राजिताला दिला. तो गळ्यांत बांधून सत्राजित आपल्या राज्यांत फिरूं लागला. तेव्हां प्रत्यक्ष सूर्यच धरणीवर आला असा भ्रम होऊन नगरांतले लोक त्याचे मागें धांवत सुटले. याप्रमाणें नागरिकांना थक्क करून सोडून सत्राजित त्या मण्यासह अंतःपुरांत गेला. अखेरीस त्यानें तो मणी आपला प्रियबंधु प्रसेन याला दिला. हा मणी वृष्णि व अंधक यांच्या घरीं असतां नित्य सुवर्ण वीत असे. हा मणी तेथें असतां पर्जन्य यथाकाल पडे; व रोगराईची भीति मुळींच नसे. असला हा मणी प्रसेनापासून आपणास मिळावा अशी श्रीकृष्णानें इच्छा केली. परंतु, तो त्यास प्राप्त झाला नाही. प्रसेनापासून तो जबरीनें हिसकावून घेण्याइतकी शक्ति कृष्णाचे अंगांत नव्हती असें नाही, पण त्यानें त्या उपायानें हरण केलें नाही.

पुढें एकदां तो प्रसेन त्या स्यमंतकमण्यानें आपलें शरीर भूषित करून मृगयेला गेला, व तेथें त्या मण्यामुळें वनचारी सिंहाचे हातून मरण पावला. पुढें तें मणिरत्न घेऊन तो सिंह पळत असतां एक बलाढ्य अस्वलांचा राजा

(जांबवान्) त्यावर तुटून पडला, व त्या सिंहाला मारून व त्याचें तें मणिरत्न घेऊन आपल्या गुहेंत शिरला. (या प्रकारें प्रसेनाचा वध होऊन मणी अस्वलाच्या गुहेंत जाऊन पडला. परंतु) पूर्वीं कृष्णानें प्रसेनापासून तो मणी आपणास मिळावा अशी इच्छा केली असल्यामुळें वृष्णि व अंधक कुळांतील मंडळी या प्रसेनाला कृष्णानेंच मारिलें अशी शंका घेऊं लागले. तो आरोप जेव्हां धर्मात्मा श्रीकृष्ण याचे कानीं आला, तेव्हां त्यानें चकचकीत सांगितलें कीं, मी तर हें कर्म केलें नाहीच व शिवाय हा मणी मी असेल तेथून मिळवून आणून देतो. अशी प्रतिज्ञा करून प्रसेन ज्या अरण्यांत शिकारीला गेला होता त्या अरण्यांत बरोबर कांहीं विश्वासू नोकर घेऊन कृष्ण गेला. तेथें त्यांच्या साहाय्यानें प्रसेनाच्या पावलांचा मार्ग काढीत गिरिश्रेष्ठ ऋक्षवान् आणि विंध्य हे त्यानें पालथे घातले. अखेर तो थकून गेला. इतक्यांत प्रसेन व प्रसेनाचा घोडा हेदोघेही मरून पडलेले त्याला आढळले. परंतु, स्यमंतकमणी तेथें दृष्टीस पडेना. पुढें पाहतां पाहतां प्रसेनापासून थोड्याशाच अंतरावर अस्वलानें मारून टाकिलेला सिंहही दृष्टीस पडला. सिंहाला अस्वलानेंच मारिलें, ही गोष्ट अस्वलाचीं जीं धुळींत पदाचिन्हें उमटलीं होती त्यावरून ध्यानांत आली. मग त्या पावलांचा माग धरीत धरीत, तो अस्वल धांवत धांवत ज्या मार्गानें गेला होता, त्या मार्गानें श्रीकृष्ण त्या अस्वलाच्या गुहेच्या तोंडाशीं पोचला. तो त्या अस्वलाच्या त्या विशाल गुहेंतून एका तरुण स्त्रीची वाणी त्याचे कानीं पडली. हे राजा, ही स्त्री म्हणजे त्या जांबवान् अस्वलाच्या

१ चौसष्ट हजार तोळे, असें याचें मान अन्यत्र दिलें आहे. ( भा० १० स्क० अ० ५६, श्लोक ११० ).

१ मारवाड व कच्छभूजकडील बालुकाप्रेक्षांत पावलांचा माग काढणारे मोठे तवेज लोक अजूनही आहेत व त्यांस “ पगी ” असें म्हणतात.

मुलाला खेळविणारी दाई होय. ती दाई तो स्यमंतक मणी त्या मुलापुढें खेळण्याकरितां ठेवून त्याला म्हणाली, “बाळ, रडूं नको. हा मणी घे. हा तुझाच आहे. कारण, हा मणी ज्याजवळ होता, त्या प्रसेनाला सिंहाने मारिलें व त्या सिंहाला तुझा बाप जो जांबवान् त्याने मारून हा जिंकून आणिला आहे. यासाठीं माझे शहाणे बाळा, तूं रडूं नको.”

दाईचें हें बोलणें श्रीकृष्णाच्या कानीं अत्यंत स्पष्ट रीतीनें पडलें. (तें ऐकून आपण केलेला तर्क खरा अशी त्याची खात्री झाली.) मग बलरामासह आपल्या बरोबरच्या सर्व यादवांस गुहेच्या बाहेरच ठेवून शाड्गधनुष्य धारण करणारा भगवान् कृष्ण त्या मण्याच्या उजेडानें त्या अस्वलाच्या गुहेंत शिरला; तेथें जांबवान् त्याच्या दृष्टीस पडला. मग त्या बिळांत एकवीस दिवसपर्यंत वासुदेवाचें व जांबवंताचें बाहुयुद्ध झालें. श्रीकृष्ण बहुत दिवस जेव्हां बिळांतून परतेना त्या वेळीं बलराम व इतर यादव हे कृष्ण बहुधा मारला गेला असावा असा तर्क करून द्वारकेला परत आले, व तेथें कृष्ण मेला, अशी बातमी त्यांनीं दिली.

इकडे कृष्णानें त्या महाबलाढ्यही जांबवंताला जेव्हां हार खावयास लाविलें, तेव्हां त्या जांबवंतानेंच प्रसन्न होऊन आपल्या मतीनें आपली जांबवती नामक सुंदर कन्या श्रीकृष्णाला अर्पण केली; त्याशिवाय, श्रीकृष्णानें आपणावर आलेला आळ दूर होऊन आपले वर्तनाची साफी व्हावी म्हणून तो स्यमंतक मणीही त्याजपासून घेतला. मग त्या जांबवानाला चार समजुतीच्या गोष्टी सांगून व आपण केलेल्या युद्धाबद्दलचा खेद दूर करून श्रीकृष्ण त्याच्या गुहेंतून बाहेर पडला, व

अत्यंत शोभेनें युक्त अशा स्थितींत द्वारकेंत शिरला. याप्रमाणें हरवलेला स्यमंतक-मणी संपादन करून व आपलें वर्तन मुळापासूनच चोख होतें अशी सर्वांची खात्री पटवून श्रीकृष्णानें सर्व सात्वत मंडळींची सभा भरवून तींत तो स्यमंतक मणी उघड रीतीनें सत्राजिताला अर्पण केला. एतावता, शत्रुमर्दक श्रीकृष्णानें आपल्यावर खोटाच आळ आला असतांही (आळ घेणारांना शिव्या देत न बसतां) स्यमंतक मणी (म्हणजे मुद्देमाल) हुडकून आणून आपले वर्तनाची सफाई केली.

सत्राजिताला दहा बायका होत्या, त्यांपासून शंभर मुलगे झाले होते. या शंभरांपैकीं तिघे फार प्रसिद्ध होते. यांतील ज्येष्ठानें नांव भंगकार असें होतें. दुसऱ्याचें नांव वातपति; हा वीर होता. तिसऱ्याचें नांव वियत्स्नात. या तीन पुत्रांप्रमाणेंच सत्राजिताला सर्वत्र प्रख्यात अशा तीन कन्या होत्या. त्यांचीं नांवें: सत्यभामा; ही सर्व स्त्रियांत वरिष्ठ होती. दुसरी व्रतिनी; हिचें व्रतपालन मोठें कडक असे; व तिसरी प्रस्वापिनी. यांपैकीं सत्यभामा त्यानें श्रीकृष्णाला दिली. भंगकाराला दोन पुत्र होते, त्यांचीं नांवें:—समाक्ष आणि नारेय. हे दोघेही मोठे गुणी निघाले असून शिवाय सद्गर्तन व रूपसंपत्ति यांविषयीं त्यांचा लौकिक असे.

मागे क्रोष्टूची जी कनिष्ठ स्त्री माद्री म्हणून सांगितली तिचा पुत्र जो युधाजित त्याला वृष्णि नांवाचा पुत्र होता. या वृष्णीला श्वफल्क आणि चित्रक असे दोन पुत्र होते. यांपैकीं श्वफल्काला, जिच्याबद्दल तिचा पिता प्रतिदिनीं गोदान करित असल्यामुळें जिला गांदिनी असें नांव पडलें होतें, ती काशीराजाची कन्या भार्या

१ कांहीं ठिकाणीं ही मुदत अठ्ठावीस दिवसांची आहे.

१ कांहीं ठिकाणीं “भार्या:ता:” असा पाठ आहे. त्याचा अर्थ त्या तिथीही बहिणी दिल्या असा होतो. तरी सत्यभामाच प्रसिद्ध आहे.

मिळाली होती. या गांदिनीचे ठिकाणी अक्रूर हा जन्मला. हा अक्रूर मोठा बलाढ्य, भाग्यवान्, यज्ञकर्ता व विपुल दक्षणा देणारा असा होता. या अक्रूराशिवाय उपासांग, मंगु, मृदूर, अरिमेजय, गिरिक्षिप, उपेक्ष, शत्रुहा, अरि-मर्दन, धर्मभृत्, यतिधर्मा, गृध्र, भोज, अंधक, सुबाहु व प्रतिबाहु हे पुत्र; व सुंदरी नांवाची रूपवती कन्या. इतकीं अपत्ये श्वफल्काला होतीं. यातील रूपयौवनसंपन्न व प्राणिमात्रांचें मनोहरण करणारी जी सुंदर कन्या सुंदरी ही विश्रुताश्वाची पट्टराणी झाली. अक्रूराला उग्र-सेनी नामक स्त्रीचे ठिकाणी सुदेव व उपदेव या नांवांचे देवतुल्य तेजस्वी दोन पुत्र झाले. श्वफल्काचा भाऊ जो चित्रक सांगितला त्याला पृथु, विपृथु, अश्वग्रीव, अश्वबाहु, सुपार्श्वक, गवेषण, अरिष्टनेमी, अश्व, सुधर्मा, धर्मभृत्, सुबाहु व बहुबाहु, इतके पुत्र व श्रविष्ठा व श्रवणा या दोन मुली होत्या.

हे राजा, या अध्यायांत सांगितलेलें श्रीकृष्णावरील मिथ्या आरोपाचें वृत्त जो कोणी समजून घेईल, त्यावर खोटे आळ कधीही येणार नाहीत.

## अध्याय एकुणचाळिसावा.

—:०:—

अक्रूरवृत्त.

वैशंपायन सांगतात:—कृष्णांनीं जो स्यमंतक मणी सत्राजिताचे स्वाधीन केला म्हणून सांगितलें तो पुनः अक्रूरानें शतधन्वा नामक यादवाचे द्वारें हस्तगत करून घेतला. याचें कारण असें कीं, अक्रूरानें सुंदर सत्यभामा आपणास मिळावी म्हणून सत्राजिताजवळ

मागणी घातली होती व त्या वेळेपासूनच सत्यभामेबरोबरच स्वर्णादिके विणारा तो स्यमंतक मणी आपणास मिळावा असा त्याचा हेतु होता. ( परंतु सत्यभामा जेव्हां श्रीकृष्णाला मिळाली तेव्हां तो तिजबद्दल निराश झाला. तथापि, स्यमंतक मिळविण्याची मात्र त्यानें शतधन्वा नामक एका यादवाचे द्वारें खटपट चालविली. ) त्यामुळे शतधन्वानामक बलाढ्य यादवानें रात्री सत्राजितावर छापा घालून त्याला ठार मारून तो मणि हिरावून आणिला आणि अक्रूराला दिला. त्या वेळीं, हे राजा, अक्रूरानें शतधन्वापासून तें रत्न घेऊन करार केला कीं, हें रत्न माझे ( अक्रूराचे ) हातीं लागलें आहे असें तूं कोणास सांगूं नको. कृष्ण कदाचित् तुझा पाठलाग करूं लागलाच तर आम्ही सर्व यादव तुझ्या पाठोपाठ उभे आहों, असें समज. कारण, आजकाल उभी द्वारका नगरी माझ्या अध्यावचनांत आहे, ही गोष्ट निखालस आहे. आपला बाप सत्राजित मारिलेला पाहून यशस्विनी सत्यभामा अत्यंत दुःखी झाली, व त्या दुःखावेगानें रथांत बसून हस्तिपुराला गेली. तेथें तिनें तें भोजकुलोत्पन्न शतधन्वाचें दुष्कर्म आपला पति श्रीकृष्ण याचे कानीं घातलें; आपण दुःखानें विव्हल होतसाती अश्रु ढाळीत पतीच्या पार्श्वभागी उभी राहिली. त्या वेळीं दुर्योधनानें कपटानें लाक्षागृहांत जाळलेल्या पांडव-बंधूंना स्वतः निवापांजली देऊन व त्यांची बाकीची और्ध्वदेहिक क्रिया करण्याकडे सात्यकीची योजना करून श्रीकृष्ण लग्नागीनें द्वारकेस गेला. द्वारकेंत येतांच मधुदैत्याला मारणारा श्रीकृष्ण आपला वडील बंधु जो हलधर बलराम त्याला म्हणाला, “ प्रसेनाला सिंहांने मारिलें व सत्राजिताला शतधन्वानें मारिलें. अशा स्थितींत स्यमंतक मी सत्राजिताला दिला

१ हा युधाजिताचा वंश याच ग्रंथांत पूर्वीं सर्व दिला असून पुन्हा विस्तारानें पुनरुक्ति करण्याचें प्रयोजन ग्रंथकारास ठाऊक.

१ भोजकुल हें यादव कुळांतील एक पोटकुल होय.

असल्यामुळे त्यावर माझी मालकी उघडच आहे. याकरितां हे महाबाहो, आपण सत्वर रथांत बसून व त्या बलाढ्य भोजाला ठार करून मणी आपलासा केला पाहिजे.” (असें बोलून कृष्ण व बलराम यांनीं शतधन्वाला गांठले. ) नंतर हृदीकाचा पुत्र तो शतधन्वा भोज याचें व श्रीकृष्णाचें तुंबळ युद्ध जुंपले. त्या वेळीं आपणास संकेताप्रमाणें अक्रूर साहाय्य येईल या आशेनें शतधन्वा चोहोंकडे अक्रूराला पाहूं लागला. परंतु, अक्रूरानें जेव्हां पाहिलें कीं, शतधन्वाची आणि कृष्णाची झांबी केवळ निकराची चालली आहे, तेव्हां अक्रूराचे अंगांत साह्याचें सामर्थ्य असतांही त्यानें कपट केलें, व त्याला साहाय्य दिलें नाहीं. आपणास कोणी साहाय्यकर्ता नाहीं असें शतधन्वाला आढळतांच भयानें गांगरून जाऊन त्यानें पळून जाण्याचा निश्चय केला. त्या वेळीं त्या शतधन्वाजवळ विज्ञातहृदया नांवाची एक अति चलाख घोडी होती. ही रोज शंभर योजनें चालत असे; व हिच्या साह्यानेंच शतधन्वा श्रीकृष्णाशीं लढत होता. तिजवर बसून त्यानें पळ काढिला तो एका दमांत शंभर योजनें रस्ता टाकून गेला. इतकी मजल मारिल्यावर ती घोडी अतिवेगामुळे फारच थकून गेली. शिवाय रामकृष्णांचा रथ पाठोपाठ चढ करून येत आहे असें शतधन्वाला दिसलें, तेव्हां त्यानें ती घोडी तेथेंच सोडली. थोडक्यांतच अतिश्रमानें व दुःखानें त्या घोडीचे प्राण स्वर्गस्थ झाले. ती गोष्ट पाहून कृष्ण बलरामाला म्हणाला कीं, हे महाबाहो, आतां आपला रथ येथेंच थांबवा. कारण, शतधन्वाच्या घोडीचे बहुतेक बारा वाजले असें माझ्या लक्षांत येत आहे, याकरितां आतां रथाचें कांहीं कारण नाहीं. मी आतां पायी-पायीच चालत जाऊन तो स्यमंतक मणी

हिसकावून आणितों. असें म्हणून श्रीकृष्ण पायीच शतधन्वाचा पाठलाग करूं लागला; व जातां जातां अखेर मिथिला नगरीच्या समीप-भागीं त्या अस्त्रनिपुण कृष्णानें शतधन्वाला गांठून ठार केलें. परंतु, त्या महाबल भोजाला मारून फायदा कांहींच झाला नाहीं. कारण, मणी त्याजपाशीं आढळला नाहीं. तेथून कृष्ण परत येतांच बलरामानें ‘ मणी कोठें आहे तो दे ’ म्हणून म्हटलें. त्यावर कृष्णानें उत्तर केलें कीं, मणी नाहीं. तें ऐकतांच दादांचें माथें फिरलें. व ‘ धिःकार असो, धिःकार असो ! ’ असें वारंवार म्हणूं लागले. शेवटीं ते म्हणाले, ‘ तूं भाऊ आहेस. एवढ्याच खातर गय केली आहे. असो; देव तुझे कल्याण करो. मी आतां चाललों. मला त्या द्वारकेचें कारण नाहीं, तुझेही नाहीं आणि यादवांचेही नाहीं.’ असें सांगून बलराम निघाला तो मिथिला नगरीस गेला. तेथें मिथिलेश्वरानें त्या शत्रुमर्दन रामाची अनेक इष्ट उपहार देऊन पूजा केली.

या सुमारासच बुद्धिमंतांत श्रेष्ठ जो अक्रूर यानें नानातः हेचे सर्व कांहीं मनसोक्त क्रतु केले; आणि साठ वर्षेपर्यंत त्यानें हें यज्ञसत्त चालू ठेवून त्यांत शेलकीं शेलकीं रत्नें, नानातः हेचीं द्रव्ये, विपुल अन्नशांति, प्रचुर दक्षणा व सर्व तःहेचीं इच्छित दानें चालू ठेविलीं होती. हे यज्ञ इतके प्रसिद्ध झाले कीं, त्यांचें अक्रूरयज्ञ असें स्वतंत्र नांवच पडलें. हे यज्ञ करण्यांत अक्रूराची मोठी चतुराई होती. कारण, त्याजपाशीं स्यमंतक मणी होता, तो हिरावून घेण्यासाठीं कोणी परचक्र येईल, या भयास्तव त्यानें हें यज्ञदीक्षारूपी कवच धारण केलें; व या योगानें त्यानें स्वतःचा बचाव केला; व स्यमंतक मण्यापासून आयतीच प्राप्त होणारी विपुल संपत्ति यज्ञ-

१ यज्ञदीक्षा घेतल्यावर घे म्हटल्या कोणी युद्धार्थ आन्धान करीत नाहीं, असा राजधर्म आहे.

निमित्तानें लोकांस वांटून स्वतःचें कल्याण व लोकांचेही आराधन केले.

असो; बलराम दादा रुसून मिथिलेला गेले हें सांगितलेंच आहे. ते तेथें असतां राजा दुर्योधन त्यांजकडे गेला, व त्यांजपासून त्यानें गदायुद्धाचें अलौकिक कौशल्य संपादिलें. ( ही बातमी द्वारकेंत येतांच ) वृष्णि व अंधक कुळांतील महारथी व स्वतः महात्मा कृष्ण यांनीं दादांची समजूत घालून त्यांस द्वारकेंत परत आणिलें; तेव्हांच अंधक मंडळीबरोबर अक्रूर द्वारकेंतून निघून गेला. वास्तविक पाहतां युद्धांत महापराक्रमी अशा सत्राजिताला म्हणजे कृष्णाच्या प्रत्यक्ष सासऱ्याला ( स्यमंतक मण्यासाठीं ) अक्रूरानें मारिलें होतें ( त्या अर्थी कृष्णानें त्याचें पारिपत्य करणें न्याय्य होतें ). परंतु, आपले स्वजातींत दुफळी उत्पन्न न व्हावी म्हणून त्यानें त्याची उपेक्षा केली. अक्रूर द्वारकेंतून गेल्यावर असा चमत्कार झाला कीं, इंद्र तेथें पर्जन्य पाडीना व त्यामुळें अनावृष्टि होऊन अन्नावांचून सर्व राज्य रोडलें. तें पाहून कुरुर आणि अंधक या मंडळींनीं जाऊन अक्रूराची समजूत घालून त्याला पुन्हा द्वारकेस आणिलें. तो दानशूर अक्रूर द्वारकेंत येतांच त्या समुद्रतीरच्या प्रांतांत इंद्रानें पर्जन्याची रेलचेल करून सोडिली. अक्रूर हा मोठा बुद्धिमान होता, हें मागें सांगितलेंच आहे. त्यानें द्वारकेंत आल्यावर कृष्णाचा रोष घालविण्यासाठीं अशी खुबी केली कीं, आपली सुशील बहिणच कृष्णाला देऊन टाकिली. कृष्णही कांहीं कमी बुद्धिमान नव्हता; त्यानें अक्रूराच्या दानधर्मावरून व इतर थाटावरून अक्रूराजवळच स्यमंतक असला पाहिजे असें ताडिलें; आणि अक्रूर एकदां सभेंत आहे असें पाहून त्याला म्हटलें, “महाराज, तें स्यमंतक मणिरत्न निःसंशय

आपले हातीं लागलें आहे; तरी तें माझें मला परत करा. आपण संभावित आहां, याकरितां मजपाशीं हलकटपणा करूं नका. या रत्ना-प्रीत्यर्थ आपल्यावर माझा रोष होऊन आज साठ वर्षे लोटलीं; व इतक्या दीर्घकालांत तो अनेक वेळां धुमधुमसून अतिशय वाढला आहे. करितां हें ध्यानांत धरून काय करणें तें करा.” कृष्णाचें तें नरमगरम वचन ऐकून त्या शहाण्या अक्रूरानें आपणास तो मणी परत करण्यांत कोणताही क्लेश वाटत नाही, असें दाखवून सर्व सात्वतांच्या सभेंत तो स्यमंतक कृष्णाच्या हवालीं केला. शत्रूला नरम आणणाऱ्या कृष्णानें अक्रूरानें आढेवेढे न घेतां आपला मणी परत केला, हें पाहून आपली प्रसन्नता दाखवून तो मणी पुनरपि आपण होऊनच अक्रूराला दिला. कृष्णाच्या हातून आपणास तें मणिरत्न राजरोस मिळालें असें पाहतांच त्या गांदिनीच्या पुत्रानें म्हणजे अक्रूरानें उघडपणें तें आपल्या गळ्यांत लटकाविलें. तेव्हां त्या मण्याच्या तेजानें तो सूर्यासारखा शोभूं लागला.

जो कोणी शुचिर्भूत होऊन एकाग्र चित्तानें हें स्यमंतकोपाख्यान नित्य श्रवण करील तो सर्व प्रकारच्या सुखांचा फलभोक्ता होईल. शिवाय, हे राजा, अशा मनुष्याची कीर्ति निःसंशय ब्रह्मलोकापर्यंत जाईल. हें मी तुला कांहीं तरी सांगत नाहीं.

## अध्याय चाळिसावा.

—:०:—

### वराहोत्पत्तिवर्णन.

[ स्यमंतक मण्याचें आख्यान ऐकत असतां अक्रूरानें वास्तविक अक्षम्य अपराध केला असून व श्रीकृष्ण परमात्मा त्याचें पारिपत्य करण्यास समर्थ असूनही लोकांस त्रास न

व्हावा, ज्ञातींत विरोध न वाढावा, इत्यादि उंची गोष्टी मनांत आणून परमात्म्याने त्याला क्षमा केली. इतकेंच नाही, तर तो अमूल्य मणी पुन्हा अक्रूराला स्वहस्ते अर्पण केला. इत्यादि गोष्टी ऐकून जनमेजयाला परमात्म्याच्या क्षमा, औदार्य वगैरे अनेक गुणांबद्दल प्रबल भक्ति उत्पन्न होऊन अशा परमात्म्याचें चरित्र अधिकच ऐकावें अशी बुद्धि होऊन त्याने वैशंपायनास प्रश्न केला. ]

जनमेजय विचारितोः—हे वैशंपायना, अमित तेजस्वी जो परमात्मा विष्णु याचे पुराण अवतारांच्या कथा थोर थोर ज्ञात्यांच्या तोंडून ऐकत असतां त्या अवतारांत वाराह म्हणून एक अवतार होता एवढें आम्हीं ऐकिलें. परंतु, या यज्ञवराहाचें चरित्र, त्याचा विधि, त्याचा विस्तर, त्याचें कर्म, त्याचे गुण, त्याचा देशकाल, त्याचा अधिकार व त्याचें मनीषित हीं मला कांहीं समजत नाहीत. त्या वराहाचें अंतःस्वरूप काय, बाह्याकार कसा, त्याची देवता कोणती, त्याची इतिकर्तव्यता काय, त्याचें सामर्थ्य कोणतें व त्यानें पूर्वीं काय काय केलें, तें मला माहीत नाही. पूर्वीं कृष्णद्वैपायनानें यज्ञासाठीं मोठमोठे ब्राह्मण जमले असतां त्यांच्या समक्ष या महावराहाचें चरित्र सांगितलें होतें. तर, हे वैशंपायना, भगवान् नारायणानें हें वराहरूप कोणत्या कारणानें घेतलें? व ही भूमी समुद्रांत निमग्न झाली असतां आपल्या दाढेनें वर कशी काढिली, इत्यादि त्या बुद्धिवान् व अरिमर्दन श्रीकृष्णाचीं अशेष कर्मे यथाक्रम सविस्तर ऐकण्याची माझी इच्छा आहे. त्याचप्रमाणें त्याचीं इतर अवतारांतील चरित्रें व त्याची मूल प्रकृति यांचेही वर्णन आपण सांगावें. तो देवशत्रूंचा घात करणारा बुद्धिमान् भगवान् विष्णु देवगणांनीं व्याप्त व पुण्यवान् लोकांनीं

सेवित असा पवित्र स्वर्गलोक सोडून या मृत्यु-लोकीं येऊन वसुदेवाच्या कुलांत जन्म घेऊन वासुदेव संज्ञा पावला, हें सर्व कां? त्याच-प्रमाणें या सर्व सृष्टीचा उगम, देव व मनुष्य यांचा नायक आणि सर्वव्यापी असा परमात्मा आपल्या दिव्य आत्म्याला मनुष्यदेहाशीं कां संयुक्त करिता झाला? जो श्रेष्ठ चक्रधर हें मनुष्यांचें संसारचक्र निर्दोषपणें स्वतः चाल-वितो त्याला त्याच चक्रांत येऊन पडण्याची बुद्धि कशी झाली? जो देव विष्णु स्वर्गांत राहून जगतांतील सर्व लोकांचें गोपन म्हणजे रक्षण करितो तो या भूलेकीं येऊन स्वतःच गोपत्व धरिता कां झाला? जो भूतात्मा या पंचमहाभूतांचा कर्ता व धारणकर्ता असून ज्याचे उदरांत श्री नांदते असा तो या भूमी-वर फिरणाऱ्या यःकश्चित् स्त्रीच्या गर्भांत कसा मावला? ज्यानें देवमंडळीच्या इच्छे-वरून ( वामनावतारीं ) तीन पावलांनीं तिन्ही लोक जिंकून क्रमानें स्वर्ग, मृत्यु व अधोलोक यांची प्राप्ति करून देणारे जे धर्म, अर्थ व कामरूपी तीन पुरुषार्थ त्यांचे मार्ग कायम केले; जो प्रलयकालीं स्वतः जलरूप धारण करून आणि हें सर्व पंचभूतात्मक जगत् सकारण गड करून या सर्व लोकांना त्यांतील जडचेतन अंशासह एकचएक जलनिर्भ्रांचें रूप देऊन टाकितो; जो स्वतः फार जुनाट असून ज्यानें पुरातन कालीं वराहरूप धरून आपल्या दंताग्रानें या वसुधेला समुद्रांतून वर काढिलें; ज्या अविनाशी सुरश्रेष्ठानें पूर्वीं इंद्राखातर सर्व असुरांना जिंकून हें त्रैलोक्य देवांना अर्पण केले; ज्यानें पूर्वीं सिंहाचें रूप घेऊन व पुन्हा त्यांत नर व सिंह अशी द्विधा करून नरसिं-हरूपानें हिरण्यकशिपु नांवाचा महाबलाढ्य दैत्य मारिला; जो सर्व शक्तिमान् परमात्मा पूर्वीं प्रलयकालीं संवर्तक नांवाचें वडवाशीचें

रूप घेऊन पाताळ-समुद्रांतील सर्व जल हवि म्हणून पान करिता झाला; हे ब्रह्मन्, ज्याला युगायुगाचे ठायीं अनंत मस्तकांचा, अनंत नेत्रांचा व अनेक चरणांचा देव असें म्हणत आले; सर्व स्थावरजंगम सृष्टि नष्ट होऊन व तिचे ठिकाणीं एकच एक जलसमुद्र होऊन राहिला असतां जो त्यांत शयन करितो व अशा वेळीं ज्याच्या मंथनदंडतुल्य नाभिनालांतून ब्रह्मदेवाचें वसतिस्थान जें कमल तें निर्माण झालें; ज्यानें तारकासुराशीं युद्ध करीत असतां सर्व-देवमय व सर्वशस्त्रमय असें आपलें शरीर करून सर्व दैत्य मारिले; ज्यानें गरुडावर बसून मस्तीत आलेला कालनेमी दैत्य लोळविला; मय नामक दैत्य जिंकिला; व तारक नामक महासुर मारिला; ज्यापासून अमृत उत्पन्न झालें, असल्या क्षीरसमुद्राच्या उत्तर तीरासमीप जो योगमायेचा आश्रय करून शाश्वत योगाभ्यासांत पडून राहिला आहे; ज्या दिव्य पुराण पुरुषाला अत्यंत तपः-संचयाच्या प्रभावानें देवमाता आदिति ही वामनरूपानें गर्भांत धरिती झाली व गर्भांतून बाहेर पडतांच ज्यानें दैत्य मंडळीनें कोंडून टाकिलेल्या इंद्राचे मनोरथ पूर्ण करून त्याचा संतोष केला; तसेंच ज्यानें तीन लोकांत तीन पाउलें देऊन सर्व दैत्यांना जळांत लपून बसावयास लाविलें, व स्वर्गातील देवांस पुन्हा निर्भयपणें क्रीडादिक करण्यास लाविलें; आणि इंद्राला देवांच्या राज्यावर बसविलें, ज्यानें यज्ञासंबंधीं पात्रें, दक्षणा, दीक्षा, चमस, उलूखल, वेदी, कुश, स्तुव, प्रोक्षणी, ध्रुवा, अवभृथाचें साहित्य, तसेंच आहवनीय अग्नि, गार्हपत्याग्नि तत्संबंधीं विधि व अन्वाहृत्य कर्म, त्याचप्रमाणें तीन तपहेच्या सुधा केल्या; ज्यानें

हव्यकव्य करणारे द्विज निर्माण केले, व यज्ञसमयीं मंत्रविधिपूर्वक देवांना हव्य भाग घेण्याचा अधिकार दिला; व पितरांना कव्याचे भागीदार केलें; त्याचप्रमाणें ज्यानें यूप, समिधा, स्तुच, सोम, पवित्र असे परिधी, इत्यादि यज्ञीय द्रव्ये निर्माण केलीं. त्याचप्रमाणें अग्नि व तत्स्थापनार्थ भिन्न स्थानें निर्माण करून सदस्य, यजमान, मेध्यप्रभृति उत्तम उत्तम ऋतु निर्माण केले; ज्यानें ब्रह्मदेवानें घातलेल्या प्रवृत्तीप्रमाणें यज्ञाचे निरनिराळे विभाग लोकांमध्ये चालू करून आपलें सामर्थ्य प्रकट केलें; ज्यानें क्षण, लव, काष्ठा, कला, प्रातः, मध्याह्न व सायं हे तीन काल, व मुहूर्त, तिथी, मास, पक्ष, संवत्सर, ऋतु याप्रमाणें कालभाग निर्माण करून, नित्य, नैमित्तिक व काम्य या त्रिविध कर्मांकडे या कालविभागाचा उपयोग कसकसा करावयाचा याबद्दल श्रुति, स्मृति व शिष्टाचार या प्रकारचीं तीन प्रमाणें ठरवून दिलीं, त्याचप्रमाणें ज्यानें स्थावरजंगमात्मक क्षेत्रं म्हणजे शरीरें निर्माण करून त्यांचे ठिकाणीं आयुष्य म्हणजे कालमर्यादा, वृद्धि ( म्हणजे लहानाचें मोठें होणें किंवा एकाचें अनेक होणें ), द्विपाद, चतुष्पाद इत्यादि लक्षणभेद व सौंदर्यादि धर्म निर्माण केले; त्याचप्रमाणें ज्यानें ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य असे यज्ञोपयोगी तीन वर्ण; स्वर्ग, मृत्यु व पाताळ हे तीन लोक; ऋक्, यजुः, साम हे तीन वेद; दक्षिण, आहवनीय, गार्हपत्य हे तीन अग्नि; भूत, भविष्य व वर्तमान हे तीन काल; सात्विक, राजस, तामस हीं तीन कर्मे; पुत्रैषणा, वित्तैषणा व लोकैषणा या प्रकारचीं तीन व्यसन; सत्व, रज व तम हे तीन गुण व भूः, भुवर् व स्वर् हे तीन लोक;

१ दक्षिणाग्रीवर ब्रह्मयानें शिजविलेला चर. हा ऋत्विजाला दक्षिणेयवर्जी द्यावयाचा असतो.

१ इदं शरीरं कौतये । क्षेत्रमित्यभिधीयते ॥

म० गी० अ० १३, श्लो० १.



इत्यादि अनेक गोष्टी ज्याने आपल्या अपार सामर्थ्याने सृष्टीच्या आरंभी निर्माण केल्या; जो सर्व भूतांचा व गुणांचा स्वप्न असून स्वतःही जो भूतात्मक व गुणात्मक आहे; जो जीवांना जन्ममृत्यूच्या रूपाने ब्रह्मांडांत सर्वत्र फिरवितो, व जो जीवरूप असतां इंद्रिये व विषय यांच्या संयोगाने प्राप्त होणाऱ्या सुखांत रमतो; जो सर्वनियामक आहे, ज्याचे पदाचा मार्ग धर्मिष्ठांना सदा खुला आहे, परंतु, पाप्यांना मात्र जेथे रीघ नाही; ब्राह्मणादि चतुर्वर्ण ज्यापासून झाले; होता, उद्गाता इत्यादि चतुर्विध ऋत्विजांचा जो रक्षणकर्ता; जो चतुर्विध विद्येचा ( आन्वीक्षिकी इ० ) ज्ञाता, व ब्रह्मचर्यादि चार आश्रमांचा आधार; दशदिशा ज्याच्या उदरांत राहातात, असा जो आकाशरूप; त्याचप्रमाणे जो वायुरूप, जलरूप, व अग्नि, चंद्र व सूर्य इत्यादि ज्योतिरूप; जो निर्विकल्प, जो चक्षुःस्वरूप, जो रात्रिरूप अंधकाराचा नाशकर्ता, जो सर्व ज्योतींतील श्रेष्ठ ज्योति व सर्व तपांतील श्रेष्ठ तप असे श्रुतींत म्हटले आहे; सूत्रात्मरूपाने ज्याला परमहणतात; विराटरूपाने ज्याला अपर म्हणतात, व ज्याला आत्मरूपाने परात्परही म्हणतात; ज्याच्या नारायण स्वरूपांत सर्व वेद, सर्व क्रिया व सर्व धर्म हे राहातात; सत्य, तप व गति आणि मोक्ष हीं सर्व ज्याच्या नारायणरूपाच्या आश्रयाने राहातात; जो सर्वांचे परमोच्च आश्रयस्थान आहे; जो आदित्याचाही आदि आहे; जो स्वतः दिव्य, सर्वव्यापी व दैत्यांतक आहे; युगांतकाली जो अंतकाची कामगिरी बजावीत असून जो यमाचाही अंतक आहे; मन्वादिक जे लोकाचार-नियंते त्यांचाही जो नियंता; जो सर्व पवित्रांत पवित्र, जो वेदवेत्त्यांनाही परमवेद्य, जो मरीच्यादिकांचा प्रभु, जो सर्व सुंदर वस्तूंत सुंदर व तेजस्वीत तेजस्वी;

जो मनुष्यांचे मन, तपस्यांचे तप, नयशीलांचा विनय, तेजस्यांचे तेज, सर्व सृष्ट पदार्थांचा स्वप्न व सर्व लोकांचा आदिकारण; जो देहधारकांचा देह, गतिमंतांची गति, जो आकाशांत निर्माण झालेला वायु, व वायूने चेतन होणारा हुताशन; अग्नि हा देवांचा प्राण, व मधुसूदन नारायण त्या अग्नीचाही प्राण; जठराग्नीच्या सामर्थ्याने अन्नाचा परिपाक होऊन अन्नरस उत्पन्न होतो, मग त्या अन्नरसापासून रक्त बनते; रक्तापासून मांस, मांसापासून मेद, मेदापासून अस्थि, अस्थीपासून मज्जा, मज्जेपासून शुक्र, व शुक्रापासून गर्भसंभव हीं सर्व परंपरा एका रसव्यापारापासून निर्माण होते. आतां हा जो गर्भरूप पिण्ड याला हेतुभूत जे रेत तो उदकाचा भाग आहे; व हा शुभ्रवर्ण असल्यामुळे सोमरूप आहे. पुढे जठराग्नीच्या योगाने उत्पन्न होणारा जो ऊष्मा हा अग्निस्वरूप होय. त्याचप्रमाणे पुरुषाचे शुक्र हे सोमरूप आहे, व स्त्रीचे आर्तव हे अग्निरूप आहे. एतावता शुक्र व आर्तव हे दोन्हीही भाग रसरूप असून चंद्र व अग्नि हे त्यांचे पोषक आहेत. कफापासून शुक्र होतें, पित्तापासून शोणित होतें, हृदयांत कफ असतो व नाभीचे ठिकाणी पित्त असतें; देहामध्ये हृदय राहातें, तेच मनाचेही स्थान होय. मन हाच प्रजापति होय; आणि कफ हा सोम समजला जातो; व पित्त हा अग्नि असून तो जठराग्नि-संज्ञेने नाभी व कोष्ठ यांमधील प्रदेशांत राहातो; एतावता हे सर्व जगत् ( पिण्ड ) अग्नीषोमात्मक आहे. याप्रमाणे शुक्रशोणितसंयोगाने गर्भ स्थापित होऊन तो मेघाप्रमाणे वाढीस लागला असतां त्यांत जीव हा परमेश्वरासहित प्रवेश करितो; प्रवेशानंतर तो शिरःप्रभृति अवयव निर्माण करून त्याचे पोषण करितो. तो शरीरस्थ प्राणरूप होऊन प्राण, अपान, समान,

उदान व व्यान असे आपले पांच भाग करितो; यांपैकी प्राण हा हृदयाचे ठिकाणीं राहून त्या भागास वाढवितो; अपान हा देहाचें पश्चिमार्ध म्हणजे जवनापासून चरणापर्यंतचा भाग यास वाढवितो; उदान वायु हा शरीराचा छातीपासून वरचा भाग वाढवितो; व्यान हा सर्व शरीरसंधीचे ठिकाणीं राहून शरीराला बळकटी आणि तो व म्हणूनच याला व्यान असे म्हणतात; आणि समान हा नाभीदेशीं राहून अन्नपानादिक यथास्थान पोंचवितो; या प्रकारें पंचप्राणांची वांटणी झाल्यावर त्या जीवाला इंद्रियद्वारा विषयरूपानें पृथ्वी, आप, तेज इत्यादि पंचमहाभूतांचा साक्षात्कार होऊं लागतो. याचें कारण, त्याचीं जीं इंद्रियें तीं पृथिव्यादि पंचमहाभूतांचींच विशिष्ट रूपें असल्यामुळे तीं स्वभावतःच आपआपल्या विषयांशीं संगत होऊं लागतात. या शरीरापैकी देह हा पृथ्वीचा भाग, प्राण हा वायूचा, कर्णादिकांचीं रंध्रे हा आकाशाचा, लालामूत्रादि खाव हा जलाचा; व नेत्रांतील ज्योति हा भाग तेजाचा; व या सर्वांचा नियामक, तें मन; व या मनाच्याच सामर्थ्यानें ग्रामनगरादि प्रदेश हे निर्माण झाले.

याप्रमाणें ही अनादिसिद्ध सृष्टि त्या परमात्म्यानेंच निर्माण केली असतां तीमधील या मर्त्य लोकांत तोच परमात्मा मनुष्यरूप धारण करून येण्यास कसा राजी झाला? याबद्दल मला मोठें आश्चर्य वाटतें व संशयही येतो. मनुष्ययोनींतील जीव अखेर ज्याकडे जावें म्हणून धांव घेतात, तोच उलट मनुष्यांत येऊन मिसळतो याला काय क्षणावें? हे वैशंपायना, मी माझे एकंदर पूर्वज व त्यांतून विशेषतः माझी शाखा याबद्दलचा इतिहास तुमचे मखांतून ऐकला. आतां श्रीविष्णु व एकंदर वृष्णिकुल, यांचा वृत्तांत क्रमशः

ऐकण्याची इच्छा आहे. देव तसेच दैत्यही विष्णु हा अतिशय आश्चर्यकारक आहे असे म्हणतात. याकरितां असल्या त्या विष्णूची उत्पत्ति व त्याचें तें आश्चर्यकारक चरित्र मला सांगा. बलवीर्यानें प्रख्यात व तेजांनें अपरिमित व स्वकर्मानें जीवमात्राला चकित करून सोडणारा अशा त्या विष्णूचें चमत्कारपूर्ण चरित्र मला खचितच सुखावह होईल, याकरितां तुम्ही तें मला सांगा.

### अध्याय एकैचाळिसावा.

—:—

#### श्रीविष्णूचें अवतारवर्णन.

वैशंपायन सांगतातः—हे जनमेजया, शार्ङ्ग धनुष्य धारण करणारा जो भगवान् श्रीविष्णु त्याच्या संबधानें तूं एक गाढाभर प्रश्न मला केलेस, त्यांतून मला झेपतील तितक्यांचीं उत्तरे मी तुला सांगतो. तर आतां श्रीविष्णूचें यश ऐकच. हे राजा, तूं तरी मोठा भाग्यवानच आणि म्हणूनच श्रीविष्णूचें यश ऐकण्याची तुला बुद्धि स्फुरली. ठीक आहे; आनंद आहे; तर आतां माझे मुखांतून श्रीविष्णूची दिव्य उत्पत्ति ऐक.

या श्रीविष्णूला वेदवेत्ते-ब्राह्मण, सहस्र-नेत्र, सहस्र-मुख, सहस्र-बाहु, सहस्र-मूर्धा, सहस्र-कर, सहस्र-जिह्व, सहस्र-मुकुट, सहस्र-हस्त, व सहस्रादि आणि सहस्रद, अव्यय प्रभुदेव इत्यादि विशेषणांनीं वर्णितात. ते ब्राह्मण तो सर्वव्यापी परमात्मा सर्वदा यज्ञस्वरूप असून यज्ञांतील हवन, हव्य, होता, पवित्र पात्रें, वेदि, दक्षिा, चरुस्थली, स्तुवा, स्तुक्, सोम, शूर्प, मुसल,

१ 'स्तुवा' ही एक ढबपैशाश्रतकी पुढें उखळी असलेली पळी असते. यानें घृताची आहुती देतात.

२ 'स्तुक्' ही अजमास सुव्याच्या वारापट तूप राहील अशी हंसाचे मुखाचे आकृतीची एक पळी असते.

प्रोक्षणीपात्र, अन्वाहार्यादि हविर्भाग, अध्वर्यु, सामगायक ब्राह्मण, सदस्य, सदन (पत्तिशाला), सदु (ऋत्विक्शाला,) समिधा, दर्भ, दूर्वा, चर्मस, उलूखल, प्राग्वंश, यज्ञभूमी, ऋत्विज, स्थंडिल, चर व स्थिर असे ऋस्व व दीर्घ प्रमाणांचे शकट, प्रायश्चित्ते, स्वर्गादि फले, यज्ञवेदी, कुश, मंत्र, हव्य-वाहक अग्नि, वह्निभाग, गायत्रीछंद; अग्नेभुज, सोमभुज, घृतार्चि व उदयनीय इत्यादि संज्ञक अग्निही सर्व तोच आहे, असे म्हणतात. हे वैशंपायना, तो श्रीवत्साने लांछित असणारा देवदेवेश श्रीविष्णु याचे हजारों हजार अवतार पूर्वी होऊन गेले व पुढेही निःसंशय असेच होतात, असे सर्व वेददर्शा जो ब्रह्मा तो म्हणतो. हे महाराजा, तूं मला सुरश्रेष्ठ व अरिमर्दन असा भगवान् विष्णु देवलोक सोडून वसुदेवाच्या कुलांत कां आला, म्हणून विचारिलेस त्यापशीं ती पवित्र, दिव्य व कल्याणकारक कथा मी तुला पूर्णपणे सांगतो, ती ऐक. त्याप्रमाणेच त्या महातेजस्वी श्रीविष्णूचे महत्व व चरित्र मी तुला सांगतो. श्रीविष्णूचा अवतार उगाच होत नसतो, तो कांहीं विशिष्ट कार्यास्तव होत असतो. बहुधा हे कार्य म्हणजे देव व मनुष्य यांचे कल्याण करणे, व एकंदर लोकांचे तेज वाढविणे, हाच त्याचा उद्देश असतो व याच्या सिद्धार्थ तो सर्व भूतांचा अंतरात्मा अवतार धारण करीत असतो. अशा त्या परमात्म्याचे पवित्र, दिव्यगुणांनी युक्त,

आणि श्रुतिमंत्रांनी वर्णन केलेले जे अनेक अवतार, हे जनमेजया, मी सांगतो ते तूं पवित्रपणे मुकाट्याने ऐक. मी जें तुला हें वृत्त सांगणार तें फार पुरातन, फार पावन व श्रुतीला मान्य असे आहे. याकरितां विष्णूची दिव्य कथा मी तुला सांगतो आणि तूं ऐक.

हे जनमेजया, जेव्हां जेव्हां म्हणून लोकांत धर्माची ग्लानि होते तेव्हां तेव्हां पुन्हां धर्माची संस्थापना करण्यासाठीं हा सर्वशक्ति परमात्मा अवतार धरितो. हे राजा, या परमात्म्याची एक सत्वगुणविशिष्ट श्रेष्ठमूर्ति कायमची स्वर्गांत असते व ही सर्वदा दुष्कर असे तपःश्रवण करीत असते. याची दुसरी, तमःप्रधान मूर्ति ही प्रजेचा संहार करण्याकरितां योगनिद्रेचा आश्रय करून निद्रिस्त शयनावर असते. या मूर्तीचे अनुकरणाने लोकांत कुत्सित असे अध्यात्म-चित्तक निर्माण होतात. हा देवाधिदेव जगत्पति योगनिद्रेंत सहस्र युगे घालवून त्या कालाचे अंती लोककार्यार्थ प्रकट होतो. तसेच पितामह ब्रह्मदेव, सर्व लोकपाल, चंद्र, सूर्य, अग्नि, कपिलमुनि, परमेष्ठी, सर्व देव, सप्तही ऋषि, महायशस्वी त्रिलोचन शिव, वायु, समुद्र, पर्वत, महानुभाव सनत्कुमार, लोकनियंता महात्मा मनु, हे सर्वही या परमात्म्याच्या देहाचा आश्रय करून असतात. प्रदीप्त अग्नी-प्रमाणें ज्याचे तेज आहे अशा या जुनाट देवाने ब्रह्मदेवापासून तो तृणापर्यंत अनंत शरीरे निर्माण केली आहेत. त्यानें सर्व स्थावरजंगम, सर्व देवदैत्य, सर्व उरग, राक्षस नष्ट झाल्यावर समुद्रांत राहाणारे, व युद्धाविषयी उत्सुक असे मधुकैटभ नांवाचे दोन दुर्धर्ष राक्षस मारून त्यांना अमित वरही दिले. हा कमलनाभ परमात्मा पूर्वी समुद्रोदकांत निजला असतां त्याच्या नाभिकमलापासून ऋषींसहित देव निर्माण झाले. हा परमात्म्याचा पुष्करनामक अवतार

१ हा अग्नीवरच मात शिजवून तोच ब्राह्मणांना दक्षिणा म्हणून वावयाचा असतो.

२ 'चर्मस' हें एक चौकोनी पालें असून यानें सोमाची आहुती देतात.

३ हें यज्ञाच्या उपकरणशालेसमोरच बांधिलेले एक गृह असतें. हें पूर्वदिशेला असून त्यांत यज्ञकर्मे करणारे ऋत्विज व यज्ञकर्त्यांचे कुटुंबांतील मंडळीला राहाण्यास जागा असते.

समजावा. ज्यांत प्रत्यक्ष वेदच एकरूप करून ओतला आहे, असल्या पुराणांत या परमात्म्याचा श्रुतिमुख असा आदिवराह अवतार झाला, म्हणून वर्णिले आहे. या अवताराचे समर्थी परमात्म्या देवश्रेष्ठ विष्णूने वराहाचें रूप घेऊन पर्वतारण्यासहित समुद्रापर्यंत ही सर्व पृथ्वी आपल्या दाढेवर उचलली. यासच यज्ञवराह अशी संज्ञा आहे. या यज्ञवराह रूपाचे चार वेद हेच चार पाय, यज्ञीय यूप याच चार दंष्ट्रा, ऋतु हेच दांत, चितीं हेंच मुख, अग्नि हीच जिह्वा, दर्भ हे रोम, ब्रह्म हेंच मस्तक, दिवस आणि रात्र हे डोळे, वेदभाग हीच कर्णभूषणे, आज्य हीच नासिका, खुवा हें तोंड, साम-घोष हाच महान् शब्द, प्रायश्चित्त हेंच नखर, पशु हेच गुडघे, उद्राता हेच अंत्र, फले हेंच वृषण, व बीजयुक्त महौषधी हेंच वीर्य, वायु हाच अंतरात्मा, मंत्र हेच कुले, पिळलेला सोमरस हेंच रक्त, वेदी हा स्कंध, हवी हाच गंध, हव्यकव्य हेंच गतिचापल्य, प्राग्वंश हेंच शरीर, दक्षिणा हेंच हृदय, उपाकर्म हाच अधरभाग, प्रवर्ग्याचीं आवर्तने हींच भूषणे, नानाछंद हेच गतिमार्ग, गूढ उपनिषदे हेंच आसन, लाया हीच पत्नी; अशा प्रकारचा हा महातपस्वी दिव्यरूपी, धर्ममय, सत्यमूर्ति, श्रीमान्, व जो क्रमविक्रम सत्कृत ( म्हणजे ज्याने तीन पावलांनीं त्रिभुवन व्यापण्याचा अद्भुत पराक्रम केल्यामुळे ज्याचा सर्वत्र गौरव केला जातो असा ), धीर, महाबाहु, द्युतिमान्, अनेक दीक्षांनीं पवित्र झालेला, योगी, व केवळ महायज्ञस्वरूप असा हा वराह मेरु-पर्वताच्या शिखराप्रमाणें उच्च होता. यानें

१ कूर्म, श्येन इत्यादि अनेक आकारांचीं अग्नि-स्थापनेचीं स्थंडिले.

२ यज्ञांनीं यजमानाला कांहीं मंत्र म्हणून पाउलें दाकावीं लागतात, त्याला उद्देशून हें पद आहे.

सर्वत्र जलमय झाल्यानें एकच एक दिसणाऱ्या समुद्रांत बुडालेली ही सागरांत पृथ्वी तीवरील पर्वत व अरण्ये यांसह लोकांच्या कल्याणासाठीं आपल्या दाढेनें वर काढिली. याप्रमाणें, भूत-मात्रांचें हित पाहणाऱ्या या सहस्रशीर्ष आदि-देवानें यज्ञवराहाचें रूप घेऊन समुद्रजलाचें स्वपृष्ठावर धारण करणारी ही पृथ्वी समुद्रांतून वर काढून पुनरपि पूर्वरूपांनें स्थापित केली.

या प्रकारें मीं तुला वराह अवतार सांगितला. आतां नरसिंह अवतार ऐक. हे राजा, या नरसिंह अवताराचा प्रसंग असा आहे कीं, पूर्वीं कृतयुगामध्यें दैत्यांचा आदिपुरुष जो हिरण्य-कशिपु नांवाचा दैत्य याला स्वतःच्या बलाचा गर्व होऊन तो देवांना पाण्यांत पाहूं लागला, त्या वेळीं परमात्म्यानें सिंहाचें रूप घेऊन त्याला मारिलें. या हिरण्यकशिपूला इतकें बल प्राप्त होण्यास कारण, त्यानें अकरा हजार पांचशें वर्षेपर्यंत अतिशय तीव्र तपाचरण केलें. ह्या कालांत तो इंद्रियसंयमन करून, मौन धारण करून व केवळ जलावर निर्वाह करून दंडासनावर बसलेला असे. त्याचें तें तीव्र तप, नियमशीलत्व, ब्रह्मचर्य, तसेंच शम व दम, या सर्वांच्या योगानें हे पवित्रा जनमेजया, पितामह ब्रह्मदेव प्रसन्न झाला. हे भूपाला, प्रसन्न होतांच तो भगवान् स्वयंभु, ज्याला हंसपक्षि हे वाहक आहेत, व ज्याचा वर्ण सूर्यासारखा आहे, अशा उज्ज्वल विमानांत स्वतः बसून व बरोबर बारा आदित्य, अष्टवसु, साध्य, मरुत नामक देव, विश्वेदेव, रुद्रगण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, दिशा, उपदिशा, नद्या, सागर, नक्षत्रे, मुहूर्त, आकाशस्थ महाग्रह, तपोवृद्ध असे सिद्ध व देवर्षि, प्रसिद्ध सप्तर्षि, तसेच पुण्यवान् राजर्षि व गंधर्व आणि अप्सरागण हे बरोबर घेऊन हिरण्यकशिपूजवळ आला, आणि वर सांगितल्याप्रमाणें सर्व देवादि मंडळी सभोवतीं असतां,

तो ब्रह्मवेत्त्यांत श्रेष्ठ व चराचरांचा गुरु श्री-  
मान् ब्रह्मदेव त्या दैत्याला बोलला, “हे सुव्रता,  
तूं माझा खरा भक्त आहेस. तुझ्या या तपांने  
मी प्रसन्न झालों आहे. तुझे कल्याण असो;  
आतां मजपासून वाटेल तो वर मागून घेऊन  
आपली इच्छा तृप्त करून घे. ”

हिरण्यकशिपु म्हणाला, “देव, असुर,  
गंधर्व, यक्ष, उरग, राक्षस, मनुष्य किंवा  
पिशाच, यांपैकी कोणाचेही हातून कोणत्याही  
उपायांनीं मला मृत्यु न यावा; त्याचप्रमाणें हे  
लोकपितामहा, तपांने युक्त असे जे ऋषि ते  
क्रुद्ध झाले असतांही त्यांचा शाप मला बाधूं  
नये, हा वर मी निवडतो. तसेंच, शस्त्र,  
किंवा अस्त्र किंवा पर्वत किंवा वृक्ष किंवा  
कोणतीही ओली किंवा शुष्क वस्तु यांपासून  
किंवा इतर कोणत्याही वस्तूचे साहाय्यानें  
माझा वध होऊं नये. जो कोणी माझे सेवक,  
माझे सैन्य व माझे वाहन या सर्वांसह मला  
केवळ आपल्या पंजाच्या तडाक्यानेंच नाहींसा  
करूं शकेल त्याचे हातून माझा मृत्यु व्हावा;  
(मला वाटेल त्याचें रूप व अधिकार घेतां  
यावे) मीच सूर्य व्हावें; मीच सोम, मीच  
वायु, मीच अग्नि, मीच जल, मीच अंतरिक्ष,  
मीच नक्षत्रें, मीच दाही दिशा, मीच अहंकार,  
मीच क्रोध, मीच काम, मीच वरुण, मीच  
इंद्र, मीच यम, मीच धनपति कुबेर, मीच  
यक्ष व मीच किन्नराधिप असावें. ”

याप्रमाणें त्या दैत्यानें भाषण केलें असतां  
भगवान् ब्रह्मदेव हंसतच त्या दैत्यपतीला  
म्हणाले, “बाबारे, तूं हे जे वर मागितलेस  
ते सर्वही मोठे दिव्य व अद्भुत आहेत. तथापि,  
मी ते तुला दिले आहेत; आणि तूं मजपुढें  
ज्या ज्या इच्छा प्रदर्शित केल्या आहेत, त्या  
सर्वही पूर्ण होतील. यांत संशय बाळगूं नको.”  
याप्रमाणें सांगून भगवान् ब्रह्मदेव थेट आका-

शांतच आपलें ब्रह्मर्षिगणांनीं युक्त असें जें  
दिव्य ब्रह्मभवन तेथें गेले. त्या वेळीं देव त्यांस  
म्हणूं लागले, “हे भगवन्, या असुराला आपण  
असले असले वर दिले खरे; परंतु, यांच्या  
योगानें तो आम्हांला बाधा देईल; याकरितां,  
हे ब्रह्मन्, कृपा करून याच्या वधाचाही उपाय  
योजून देवा.”

देवांचें हें सर्वलोककल्याणहेतुक वाक्य  
ऐकून सर्व भूतांचा आदिकर्ता, सर्वशक्तिमान्,  
हव्यकव्यांचा निर्माता, स्वयंभु, सृष्टिकर्ता, मूल-  
प्रकृतिरूप व अविनाशी असा देव प्रजापति  
त्या देवगणांना म्हणाला, “हे देवगणहो,  
(मी त्याला विलक्षण वर दिले खरे, परंतु,  
काय करूं?) त्यानें तीव्र तप केलें त्या अर्थीं  
त्याचें फळ त्याला मिळालेंच पाहिजे होतें.  
तथापि, हें फळ भोगून या तपाचा क्षय होईल  
त्या वेळीं भगवान् श्रीविष्णूच त्याचा वध  
करितील. ” या प्रकारचें हें वाक्य या कमलो-  
द्भवाच्या मुखांतून ऐकतांच सर्वही देवगण  
आनंदित होऊन आपआपल्या दिव्य स्थानीं परत  
गेले. इकडे वर पदरांत पडतांच त्या वराच्या  
मस्तीनें चढून जाऊन तो हिरण्यकशिपु दैत्य  
सर्व लोकांना पिसाळवूं लागला. आश्रमांत  
जाऊन तेथील सत्यनिष्ठ, दान्त व नियमानें  
व्रताचरण करणारे मुनींवर बळजबरी करूं  
लागला. त्रैलोक्यांतील देवांना जिकून व सर्व  
त्रैलोक्य आपल्या मुठींत आणून आपण  
स्वर्गांत वास करूं लागला; व याप्रमाणें वर-  
सामर्थ्यानें उन्मत्त होऊन त्या बड्या दैत्यानें  
जेव्हां स्वर्गांत ठाणें दिलें, तेव्हां त्यानें यज्ञांत  
देवांना मिळणारे हविर्भाग बंद पाडून त्या  
ठिकाणीं आपले जातभाई जे दानव त्यांना  
हविर्भाग मिळण्याचा हक्क दांडगाईनें सुरू  
केला. त्यावेळीं आदित्य, रुद्र, विश्वेदेव व मरु-  
द्गण हे सर्वही शरणागतांचें रक्षण करणारा व

महाबलाढ्य असा जो भगवान् विष्णु त्याज-  
कडे आश्रयार्थ गेले. हा भगवान् विष्णु म्हणजे  
ब्राह्मणांचें दैवत, वेद व यज्ञ यांचें मूर्तस्वरूप,  
अतीत, अनागत व वर्तमान या तिन्ही कालांला  
व्यापून असणारा; सनातन, सर्व लोकांस वंघ,  
सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान् व शरणागतां-  
विषयी दयाळु असा पाहून देव त्याला  
शरण गेले.

देव म्हणाले, “ हे देवेशा, आम्हांला हिर-  
ण्यकशिपूच्या भयापासून तू आतां संभाळ. हे  
सुरश्रेष्ठा, ब्रह्मदेवप्रभृति जे आम्ही देवगण या  
सर्वांचाही तूच निर्माणकर्ता आहेस; तूच  
आमचा परमदेव व परमगुरु आहेस; हे उत्फुल्ल  
कमलनेत्रा, हे शत्रुपक्षभयंकरा, द्वितीच्या  
संततीचा नाश करण्याचे ठायीं तू आमचा  
आश्रय हो. ”

श्रीविष्णु म्हणाले, “ हे अमरहो, तुम्ही सर्व  
भय सोडा; कारण मी तुम्हांला अभय देतो  
आणि असें सांगतो कीं, अल्पकालांतच तुम्हांला  
पूर्ववत् स्वर्गाची मालकी मिळेल. मी जाणतो  
आहें कीं, तो दैत्य वरदानां चढून जाऊन  
तुम्हांपैकीं मुख्य मुख्यांनाही मोजीनासा झाला  
आहे. परंतु, हें समजा कीं, त्याचा त्याच्या  
अनुयायांसह मी नायनाट करून टाकितों. ”

वैशंपायन सांगतात:—याप्रमाणें त्या देव-  
गणांना वाटेस लावून श्रीविष्णु हिरण्यकशिपूचे  
सभास्थानीं आले. त्या वेळीं त्यांनीं अर्धें शरीर  
मनुष्याचें व अर्धें शरीर सिंहाचें असें धारण  
केलें होतें; व त्या वेळीं त्यांच्या देहाची कांति,  
त्यांचा शब्द, त्यांचें उद्दीप्त तेज व त्यांचा  
वेग हीं सजल मेघांप्रमाणें होतीं. तो हिरण्य-  
कशिपुही सामान्य नव्हता. तो अतिशय  
बलाढ्य, अतिशय जाज्वल्य व गुर्मीत आले-  
ल्या वाघाप्रमाणें पराक्रमी, असा असून हजारों  
मदोन्मत्त दैत्य त्याच्या रक्षणार्थ उभे होते.

पण अशाही स्थितींत त्या नृसिंहरूप धारण  
करणाऱ्या परमात्म्यानें केवळ त्याच्या हस्त-  
तलाला आपला हस्ततल लावून तेवढ्यानेंच त्या  
दैत्याला मृत्युसदन दाखविलें.

याप्रमाणें नरसिंहावताराचें हें वर्णन झालें.  
आतां यापुढें येणारा वामन. या अवतारांत  
दैत्यविध्वंसकर्त्या परमेश्वरानें वामनाचें ( बटूचें )  
रूप धारण केलें; आणि बलीनामक जो बल-  
वान् दैत्य होता, त्याचे घरीं यज्ञ चालू असतां  
जाऊन आपण ब्राह्मण म्हणून तीन पाउलें  
भूमि दान मागून घेतली; व तीं तीन पाउलें  
भरून घेण्यांतच त्या बलीचे अंगभूत असलेले  
एकाहून एक अक्षोभ्य असे जे राक्षस होते,  
त्यांच्यांत मोठी खळबळ उडवून दिली. त्या  
दैत्यांचीं नांवां: विप्रचित्ति, शिवि, शंकुरय,  
शंकु, अयःशिरा, शंकुशिरा, वीर्यवान् हयग्रीव,  
वेगवान् केतुमान्, उग्र, सोग्र, व्यग्र, महासुर,  
पुष्कर, पुष्कल, वेपन, बृहत्कीर्ति, महाजिह्व,  
साश्व, अश्वपति, प्रल्हाद, अश्वशिरा, कुंभ,  
संन्हाद, गगनप्रिय, अनुन्हाद, हरि, हर, वराह,  
शंकर, रुज, शरभ, शलभ, कुपन, कोपन-  
क्रथ, शंकुकर्ण, महास्वन्, दीर्घजिह्व, अर्क,  
नयन, मृदुचाप, मृदुप्रिय, वायु, गविष्ठ, नमुचि,  
शंबर, विज्वर, महान्, चंद्रहंता, क्रोधहंता,  
क्रोधवर्धन, कालक, कालय, वृक, क्रोध, विरो-  
चन, गरिष्ठ, वरिष्ठ, प्रलंब, नरक, इंद्रतापन,  
वातापि, बलदर्पित, केतुमान्, असिलोमा,  
पुलोमा, वाक्कल, प्रमद, मद, खसृम, कालवदन,  
कराल, कैशिक, शर, एकाक्ष, चंद्रहा, राहु,  
संन्हाद, सूमर, वखन यांपैकीं कोणाचे हातांत  
शतघ्नि, कोणाचे चक्र, कोणाचे परिघ, कोणाचे  
शूल, कोणाचे महाशिला, कोणाचे अश्मयंत्र,  
कोणाचे भिंदीपाल, कोणाचे शूल, कोणाचे  
उलूखल, कोणाचे परश्वध, कोणाचे पाश,

१ या ठिकाणीं गविष्ठ व यविष्ठ असेही पाठ सांपडतात.

कोणाचे मुद्गर व कोणाचे मुशल, याप्रमाणें अनेकांचे हातीं अनेक आयुधे होती. ते दैत्य दिसण्यांत मोठे भयंकर व अति चपल असून त्यांचे आकारही नानाप्रकारचे होते. कोणी कूर्ममुखी, कोणी कुक्कुटमुखी, कोणी शशमुखी, कोणी घुबडतोंडे, कोणी गाढवतोंडे, कोणी उंटतोंडे, कोणी डुकरतोंडे, कोणी मोठे भया-सुर सुसरतोंडे, कोणी जंबूकमुखी, कोणी उंदीर-तोंडे, कोणी बेडूकतोंडे, कोणी घोर वृकमुखी, कोणी मांजरतोंडे, कोणी गजवक्त्र, कोणी महावक्त्र, कोणी मगरतोंडे, कोणी मेंढतोंडे, कोणी गोमुख, कोणी अजामुख, कोणी अवि-मुख, कोणी महिषमुख, कोणी गोर्ध-मुख, कोणी शल्यमुख, कोणी क्रौंचमुख, कोणी गरुडतोंडे, कोणी गेंड्याच्या तोंडाचे व कोणी मयूरवदन होते. कोणी मोठ्या हत्तींचे कातडे पांघरलें होतें, कोणी मृगचर्म, कोणी चिंध्या व कोणी षल्कलें. कोणी डोक्यावर मुंडासे घातलें होतें, कोणी मुकुट, कोणी किरिट व कोणी कानांत कुंडलें घातलीं होती. कोणाच्या शेंड्या फारच लांब होत्या, कोणाचे कंठ शंखाप्रमाणें सुरेख होते, व कांहींची कान्तिही फार उज्ज्वल होती. या प्रकारें त्या दैत्यांनीं नानाप्रकारचे वेष घेतले होते. त्यांनीं नानातऱ्हेचीं पुष्पे व उट्या लाविल्या होत्या. या प्रकारें सज्ज होऊन व आपआपलीं झळ-झळीत अशें हातीं घेऊन ते अनंत राक्षस, आपल्या अलौकिक तेजांनीं सर्वासिं दिपवून टाकून तीन पाउलें घेणाऱ्या, त्या हृषीकेश वामनाच्या भोंवतीं गराडा देऊन उभे राहिले. त्या वेळीं त्या प्रभूनें एकाएकीं विकाल रूप धारण करून आपल्या पायाच्या लाथा व

हाताच्या चडकणा यांनीं ते असंख्यही दैत्ये ठार करून तत्काल ही सर्व पृथ्वी आपले ताब्यांत घेतली. ते विकाल रूप धारण करून परमात्मा पाऊल टाकीत असतां आकाशांतिल चंद्र व सूर्य हे त्याच्या स्तनांमधील जागेत आले; व त्याहूनही अधिक विशाल रूप करून तो जेव्हां आकाश आक्रमूं लागला, त्या वेळीं तेच चंद्रसूर्य त्याच्या नाभीशीं आले. त्या-नंतर त्या अतुलवीर्यशाली विष्णूनें त्याहीपेक्षां अधिक विशाल रूप घेतलें. त्या वेळीं तर हे चंद्रसूर्य त्याच्या गुडघ्यांशींच लागले, असें ब्राह्मणलोक बोलतात. याप्रमाणें सर्व असुर-श्रेष्ठांना जिंकून आणि अखिल पृथ्वी आपलीशी करून त्या बलिश्रेष्ठ विष्णूनें स्वर्गाचें राज्य पुनरपि इंद्राचे स्वाधीन केले. याप्रमाणें तुला परमात्म्याचा वामनरूप अवतार सांगितला. जे मोठमोठे वेदवेत्ते ऋषि आहेत ते त्या श्री-विष्णूचें यश याप्रमाणें गात असतात.

यापुढें भूतात्मा जो श्रीविष्णु याचा दत्ता-त्रेयसंज्ञक अवतार झाला. या अवतारांत मुख्य गुण क्षमा हा होता. या अवताराचे पूर्वी वेद लुप्तप्राय झाले होते. वेदक्रिया व यज्ञादिक नष्ट झाले. ब्राह्मणादि चतुर्वर्णांची भेसळ झाली. एकंदरीत सत्यधर्म शिथिल पडून अधर्म वाढूं लागला; सत्य नाहीसें होऊन असत्य जोरावरलें; धर्माचा सर्व घोटाळा उडाला व त्यामुळे प्रजाजन निकृष्ट दशेलायेत चालले. असा प्रकार पाहून परमात्म्यानें हा दत्तावतार घेऊन यज्ञक्रियांसहित पुनरपि वेद स्थापन केले. भेसळलेले ब्राह्मणादि चतुर्वर्ण निवडून वेगळे वेगळे केले. याच धर्मान् व वरदात्या दत्ता-त्रेयानें आपला भक्त जो हैहयकुलोत्पन्न राजा-कार्तवीर्य त्याला वर दिला की, हे निष्पापा, तुला हे दोनच बाहु आहेत परंतु, माझे कृपेनें युद्धसमयीं तुला यांचे बदली एक सहस्र बाहु

१ अवि म्ह० मेंढी.

२ हें पाण-घोरपडीला नांव आहे.

३ शल्य म्ह० शास्त्र नांवाचें एक जनावर.

उत्पन्न होतील. शिवाय, हे राजा कार्तवीर्या, तू या अखिल वसुंधरेचें पालन करशील—शत्रु-गण तुजकडे वर मान करून पाहूं शकणार नाहीत व तू मोठा धर्मज्ञ होशील. हे जनमे-जया, याप्रमाणें हा अद्भुत व सर्वथा शुभलक्षण असा श्रीविष्णूचा दत्तात्रेयसंज्ञक अवतार कथन केला. ( हा अवतार केवळ ज्ञानमार्ग-स्थापनार्थ होता. ) हें सर्व अवतारवृत्त मीं जसें ऐकलें होतें, तसें मीं तुला सांगितलें.

आतां पुढें भगवंताचा जामदग्न्यसंज्ञक अवतार झाला. या अवतारांत जामदग्न्य रामप्रभूनें सहस्र बाहूंच्या योगानें गर्विष्ठ झालेला व रणांत केवळ अजिंक्य राहिलेला जो राजा सहस्रार्जुन त्याला तो रणभूमीवर आपल्या सैन्याचे मध्य-भागीं रथांत उभा असतां खालीं येऊन धरणी-वर पाडून यथास्थित मनास वाटेल तसें बुक-लिलें. त्या वेळीं तो सहस्रार्जुन मेघांप्रमाणें महा-शब्दानें आक्रोश करूं लागला. तेव्हां परशु-रामानें आपल्या हातांतल्या पाजळलेल्या परशूनें त्याचे ते सर्व सहस्रही बाहु व त्याचे साथी सर्व असुर जातभाई यांस तोडून काडून अर्जु-नाला ठार मारिलें. मेरु व मंदर या पर्वतांनीं जिला शोभा आली आहे, अशा या पृथ्वीवर कोटों क्षत्रिय पसरले होते. परंतु, या परशुरा-मानें पुनःपुनः असे एकवीस वेळां पृथ्वीवरील हे सर्वही क्षत्रिय मारून टाकिले. याप्रमाणें ही पृथ्वी निःक्षत्रिय केल्यावर त्या महातपस्वी भार्गवरामानें घडलेल्या हत्येच्या पापशमनार्थ अश्वमेध यज्ञ केला; व त्या यज्ञांत प्रसन्न होऊन परशुरामानें ही सर्वही वसुंधरा दक्षिणेदाखल मरीचिपुत्र जो कश्यप याला दिली. या अश्व-मेधांत त्या रथिश्रेष्ठ, यशस्वी व उदार अशा परशुरामानें मोठे चलाख असे समुद्रकांठचे घोडे, रथ, अलोट सुवर्ण, धेनु व उंची उंची

हत्ती हेही दान केले. अर्जूनही तो बुद्धिमान् भृगुपुत्र जामदग्न्य लोकहितार्थ श्रेष्ठ असा जो महेंद्रपर्वत त्यावर एखाद्या देवाप्रमाणें वारंवार उज्ज्वल तप करीत असतो. याप्रमाणें हा सनातन व अविनाशी जो पर-मात्मा देवेश महाविष्णु त्याचा जामदग्न्य-संज्ञक अवतार तुला सांगितला.

चालू मन्वंतरांतील चौविसाव्या चौकडींतील त्रेतायुगांत कमलविशालनेत्र परमात्मा प्रथम विश्वामित्राला पुढें पाठवून मागोमाग आपलीं चार प्रकारचीं रूपें करून दशरथाचे पोटीं आला. तेथें त्याला लोकांत राम ही संज्ञा प्राप्त झाली. त्याच्या तेजाला केवळ सूर्याचीच उपमा. राक्षसांना मारणें, लोकांचा संतोष करणें, व धर्माची विशेष वाढ करणें, या हेतूनें महायश-स्वी परमात्म्यानें हा अवतार घेतला. या नरेंद्र राघवाला ' सर्व भूपतींचेही शरीर ' असें ज्ञाते म्हणतात. याच रामाला देवशत्रूंचा वध कर-ण्यासाठीं बुद्धिमान् विश्वामित्रानें देवांनाही जीं हातांत धरवत नाहीत असलीं दुर्धर अस्त्रें दिलीं; व ज्या रामानें त्या अस्त्रांच्या साहाय्यानें नियमशील मुनींच्या यज्ञाला विघ्न आणणारे जे बलाढ्य राक्षस मारीच आणि सुबाहु यांना मारिलें व त्यांचा हेतु विफल केला, त्या रामानें जनकराजाकडे यज्ञ चालला असतां तेथें जाऊन सहज खेळतां खेळतां शिवधनुष्य भंगून टाकिलें. तो अशेष धर्म जाणता व सर्व भूतांचा हित-कर्ता प्रभु रामचंद्र लक्ष्मणास बरोबर घेऊन चौदा वर्षपर्यंत वनांत राहिला. त्यावेळीं जिला जगांत सीता असें प्रख्यात नांव होतें व जी त्या रामचंद्राची पूर्वींची लक्ष्मी अशी त्याची ती रूप-वती स्त्री त्याचे पाठोपाठ चालली. रामानें चौदा वर्षे रानांत राहून घोर तप करून जनस्थान-नामक क्षेत्रीं राहात असतां देवांची कामगिरी



करून दिली. पाठीशीं लक्ष्मण घेऊन परमात्मा राम सीतेच्या पावलांच्या खुणा शोधत चालला असतां, मोठे भयंकर पराक्रमी, पुरुषांतील केवळ व्याघ्र, असे जे विराध आणि कबंध नांवांचे राक्षस, जे पूर्वीचे गंधर्व असून शापाने या योनींत आले होते, त्यांना आपल्या इंद्र-वज्राप्रमाणे दड, अग्नि, सूर्य किंवा विद्युलता यांप्रमाणे ज्यांची चमक असून ज्यांचे पिसारे अग्नीसारख्या लाल, सोन्याच्या वर्खांनीं चित्र-विचित्र केले होते, असल्या बाणांनीं त्यांच्या शरीरापासून वेगळे केले. त्यानें आपल्या सुग्रीव नामक मित्रासाठीं त्याचा वडील भाऊ जो बलाढ्य वानरराजा वाली त्याचा वध केला, आणि सुग्रीवाला राज्याभिषेक केला. पुढें, देव, असुर, यक्ष, गंधर्व, उरग, इत्यादिकांच्या समूहांनाही अवध्य, युद्धांत केवळ अजिंक्य, कोट्यावधी राक्षसांनीं युक्त असलेला, शरीरानें केवळ काजळाचा पर्वतच, व पराक्रमानें व्याघ्रासारखा, त्रैलोक्याला रडवून सोडणारा, वरदानानें चढल्यामुळें देवगणांनाही दुर्नरीक्ष, मोठा घोर, दुर्जय, दुर्धर, गर्वानें फुगलेला, विप्पाड शरीराचा, एखाद्या ढगाराप्रमाणें शोभणारा, महाबलाढ्य, सर्व राक्षसांचा स्वामी, मोठा गुन्हेगार, कड्या निश्चयाचा व युद्धांत दुर्जय, असा जो पुलस्तिपुत्र रावण त्याला या भूतपती रामचंद्रानें हां हां म्हणतां त्याचें सैन्य, बंधु, पुत्र व सचीव यांसह ठार मारिलें, त्याच-प्रमाणें मधुनामक राक्षसाचा लवणासुर नामक मोठा उन्मत्त योद्धा पुत्र होता. तो वरदानानें माजलासें पाहून त्या युद्धपटु रामानें त्याला मधु-वनांतच पार केलें. याप्रमाणेंच त्यानें दुसरेही अनेक राक्षस मारिले. याप्रमाणें क्षत्रियोचित शौर्याचीं कर्मे करून त्या धर्मिष्ठ रामचंद्रानें अप्रतिबंध असे दहा अध्वमेध विपुल दक्षणा देऊन केले. रामाचें राज्य चालू असतां कोण-

तीही दुर्वार्ता कानीं आली नाहीं, वारें कधीं प्रतिकूल वाहिलें नाहीं, किंवा कोणाचें द्रव्य चोरीला गेलें नाहीं, कोणाही स्त्रीला वैधव्य प्राप्त होऊन विलाप करण्याची वेळ आली नाहीं, कसलीही अरिष्टें आलीं नाहींत व राज्यां-तील सर्व लोक शिस्तीनें वागत असत. कोणाही प्राण्याला जल किंवा वायु यांपासून अपघात झाला नाहीं, किंवा वृद्धांना तरुणांचें प्रेतकार्य करण्याची पाळी आली नाहीं. क्षत्रिय लोक ब्राह्मणांची सेवा करीत, वैश्यलोक क्षत्रियांच्या छंदांनें वागत, व शूद्र हे अहंकार सोडून तीनही वर्णांची शुश्रूषा करीत. स्त्रिया कधींही भर्त्याची अमर्यादा करीत नसत; व पतीही स्त्रियांची पायमल्ली करीत नसत. सर्व जगच दावांत असल्यानें सर्व पृथ्वींत चोरच उरला नाहीं. रामच सर्वांचें भरण करणारा, रामच सर्वांचा पालनकर्ता, त्याचे राज्यांत लोकांचें आयुष्यमान सहस्र वर्षे, व पुत्रसंततीचें मानही सहस्रसंख्याच. प्राणिमात्राला रोग कसा तो माहीत नव्हता. देव, ऋषि व पितर या सर्वांचा परस्पर एकोपा होता. ज्यांना या पुराण्या गोष्टी पूर्ण माहीत आहेत असले विद्वान् लोक या रामराज्यासंबंधीं अनेक गाणीं गातात. त्या सर्व गाण्यांचें सार रामाचें माहात्म्य वर्णन करण्याकडेच आहे.

राम हा वर्णानें श्याम, वयानें तरुण, नेत्रांत आरक्त, मुखानें देदीप्यमान, मितभा-षणी, आजानुबाहु, देखणा, सिंहस्कंध व महा-भुज, अशा लक्षणांनीं युक्त असून त्यानें अकरा हजार वर्षपर्यंत अयोध्येचा राजा होऊन राज्य केलें. त्या माहात्म्याच्या राज्यांत ऋग्वेद, यजुर्वेद व सामवेद यांचा घोष, त्याच-प्रमाणें धनुष्यांचा ज्याघोष, त्याचप्रमाणें “ द्याद्या आणि द्या खा ” हे शब्द कधींच बंद पडले नाहींत. दशरथपुत्र राम हा सत्व-

शील, गुणी, स्वतेजांने चमकणारा किंबहुना चंद्रसूर्याहूनही अधिक तेजस्वी झाला. त्याने पुण्यप्रद असे शंभर यज्ञ करून त्यांच्या पूर्त्यर्थ विपुल दक्षणा दिल्या. इतकें करून तो रघु-कुलोद्भव समर्थ रामचंद्र अयोध्या सोडून स्वर्गास गेला. याप्रमाणे हा इक्ष्वाकुकुलाला आनंद देणारा महाबाहु रामचंद्र रावणाला त्याच्या गणांसह मारून स्वतः स्वर्गास चढला.

वैशंपायन सांगतात:—आतां परमात्म्याचा केशव किंवा कृष्णसंज्ञक अवतार मी सांगतो. हा सर्व लोकांच्या कल्याणाकरितां माथुर-नामक कल्पांत झाला. या अवतारांत त्या वीर्य-शाली केशवाने शाल्व, मैद, द्विविद, कंस, अरिष्ट, ऋषभ, केशी, चाणूर, मुष्टिक, इत्यादि राक्षस, कुवलयापीड नांवाचा हत्ती व पूतना नांवाची दैत्यकन्या, आणि याशिवाय मनुष्याचें सोंग घेतलेले अनेक राक्षस मारिले. अद्भुतकर्म करणारा जो बाणासुर त्याचे सह-स्वबाहु छेदून टाकिले. युद्धांत नरकासुर व महाबलाढ्य कालर्यवन यांस चीत केलें. स्व-तेजांने राजे लोकांचे संग्रहीं ज्या ज्या उत्तम वस्तु होत्या त्या हिरावून आणिल्या; व जेवढे म्हणून भूतलावर दुराचरणी राजे होते तेवढ्यांचा निःपात केला. अष्टाविसाव्या पर्यायांतील द्वापरयुगांत नव्या ( कृष्ण ) अवताराचे वेळीं जातूकण्याला पुढें पाठवून भगवान् विष्णूच व्यासरूपानें अवतीर्ण झाले. या वेळीं त्या महा-त्म्याने सत्यवतीचे पोटीं जन्म घेऊन (खुंटलेला) भारतवंश वाढीस लाविला; आणि मूळ एक वेद होता त्याचे चार भाग केले.

हे राजा, याप्रमाणे आतांपर्यंत लोक-कल्याणार्थ परमात्म्याने धरलेले मागील सर्व अवतार तुला सांगितले. आतां यापुढें होणारे-

ही तुला सांगतो. प्रभु विष्णु लोककल्याणा-साठीं पुनरपि शंभल नामक ग्रामीं विष्णुयशा-नामक ब्राह्मणाचे पोटीं कलंकी नांवांने दहावा अवतार घेईल. हा अवतार दहाव्या म्हणजे बौद्ध अवताराच्या अखेरीस होऊन यांत याज्ञ-वल्क्यमुनि हे प्रथम आविर्भूत होतील, आणि नंतर भगवान् बुद्धानें कलियुगांत दांभिक यज्ञ-प्रवृत्ति होऊन लोकांचा नाश न व्हावा म्हणून केल्ली निंदा खरी समजून स्वतः यज्ञांची निंदा करणारे व जगत् हे क्षणोक्षणी उत्पत्ति व नाश पावणारे आहे असें मत धारण केल्याने ज्यांना क्षणिकवादी असें नांव पडलें आहे, अशा सर्व बौद्धांशीं वाद करून व त्यांचा वादांत फडशा पाडून स्वतः आपल्या अनुयायांसह गंगायमुनांच्या संगमासन्निध जाऊन तेथें देह ठेवतील. नंतर कलियुगाचा संधिकाल लागेल. या कालांत वाटेला त्याने वाटेला त्याची स्त्री बळकवावी, असा भ्रष्टाकार झाल्यामुळे शुद्ध कुळी सर्वथा बुडून जाईल. राजे आपआपले सैन्य व सचिव यांसह नाश पावतील. प्रजांना नियंता नसल्यामुळे प्रजाजन एकमेकांवर उठून एक-मेकांचा प्राणघात करतील, व परस्परांचा द्रव्या-पहार करून परस्पर अत्यंत दुःखशोकाला कारण होतील. असा प्रकार येऊन ठेपला म्हणजे सर्व प्रजा दुःखमय होऊन कलियुगा-सहवर्तमान नाश पावेल.

या प्रकारें कलियुग नष्ट झालें कीं, आपोआप हिशोबानेंच कृतयुगाचा उदय होईल. त्याला निराळा प्रयत्न नको. असो; या प्रकारें हे व असलेच दैवी अंशानें युक्त असे परमात्म्याचे अनेक अवतार ज्ञात्यांनीं पुराणांतून वर्णिले आहेत. बाकी हें अवतारकथन इतकें अवघड आहे कीं, मोठमोठे देव देखील मूढ होऊन जातात; व या अवतारांचें वर्णन व्हावें म्हणूनच वेदापासून पुराणापर्यंत हे अनेक ग्रंथ

१ यास कृष्णानें स्वतः न मारितां मुचकुंदाकडून युक्तीने मारविलें.

प्रवृत्त झाले आहेत. परमात्मा सर्वलोकगुरू याचें यश प्राणिमात्रांनें कथन करावें असेंच मोहक असल्यामुळें मीं तें यथाशक्ति केवळ संक्षेप रूपानें तुला सांगितलें आहे. जो कोणी या अतुल वीर्यशाली परमात्म्याचें हें अवतार-कथन बद्धांजली होऊन प्रेमपुरःसर ऐकेल त्याचे पितर तृप्त होतील. हे अवतार ह्मणजे योगेश्वर जो भगवान् यानें योगमायेचा आश्रय करून दाखविलेल्या लीला होत. ( वस्तुतः त्याला यांचा लेप नाही. ) या लीलांच्या श्रवणानें मनुष्यावर भगवंताचा प्रसाद होऊन त्याला धार्मिक व लौकिक समृद्धि व नाना-प्रकारचे विपुल भोग प्राप्त होतील.

## अध्याय बेचाळिसावा.

—:०:—

### विष्णूचें ईश्वरत्वकथन.

वैशंपायन सांगतात:—हे जनमेजया, भगवान् विष्णु याला त्याच्या अभयदातृत्वामुळें विश्व अशी संज्ञा आहे; तो जनांचें दुरितदुःख हरण करितो ह्मणून त्याला कृतयुगांत हरि असें ह्मटलें आहे. त्याच्या अकुंठित सामर्थ्यावरून देवमंडळींत त्याला वैकुंठ असें नांव आहे. मनुष्यांत त्याला कृष्ण असें ह्मणतात; व त्याच्या निग्रहानुग्रहसामर्थ्यावरून त्याला ईश्वर असेंही ह्मणतात. या प्रकारें भगवंताच्या नानारूपी कर्मावरून त्याला भिन्न भिन्न नांवें पडलीं आहेत. अशा त्या बहुरूपी परमेश्वराच्या गहन लीलांची भूत व भविष्यकालाची गति मी जशीच्या तशीच तुला सांगतो, ती श्रवण कर. या लीला ऐकतांना तुझे असे ध्यानांत येईल कीं, हा अनंतात्मा नारायण प्रभु जरी वास्तविक अव्यक्त आहे तरीही या लीलांसाठीं त्यानें मत्स्यादि व्यक्त शरीरांचा

आश्रय केला. हा नारायण सर्व सृष्टीचा उगम असून स्वतः अविनाशी आहे. कृतयुगांत हाच जगत्स्रष्टा नारायण हरिसंज्ञेनें प्रख्यात झाला. हाच ब्रह्मा, शक्र, सोम, धर्म, शुक्र व बृहस्पतिही झाला. हाच यदुकुलानंद परमात्मा अदितीचें पुत्रत्व स्वीकारून इंद्राचा धाकटा बंधु किंवा उपेन्द्र झाला. हा सर्वशक्तिमान् परमात्मा विष्णु अदितीचे पोटी पुत्ररूपानें आला. हा केवळ त्याचा प्रसादच म्हणावयाचा. कारण, हा जन्म वेण्यांत त्याचा हेतु देवांचे वैरी जे दैत्य तसेच दानवं आणि राक्षस त्यांचा वध करून देवांस सुखी करणें हाच होता. ह्याच मायावी परमात्म्यानें त्रिगुणात्मक मायेचा आश्रय अरून पुरातन-कालीं ब्रह्मदेव निर्माण केला. याच आदि-पुरुषानें प्रथम कल्पांत मरीच्यादि प्रजापति निर्माण केले. मग या मरीचिकश्यपादि प्रजापतींनीं आपली संतति वाढवून उत्तम उत्तम अशीं अनेक ब्राह्मणांचीं गोत्रां निर्माण केलीं. या गोत्रांत निर्माण झालेले जे महात्मे ऋषि त्यांचे योगानें मूळ एकरूप असलेल्या वेदाचे अनेक शाखाभेद केले. बाबारे, या विष्णूची लीला केवळ अद्भुतरूप असून याचें यश सर्वथा गाण्यासारखेंच आहे; व ज्याला साधेल त्यानें हें यश लोकांस सांगतच रहावें असें आहे. याकरितां मी तें कथन करितों तें ऐक.

हे बाबारे, वृत्रासुराचा वध होऊन कृतयुग चालू असतां त्रैलोक्यविख्यात असें तारका-

१ दितीचे पुत्र ते दैत्य व 'दन्' पासून झाले ते दानव.

२ वृत्रासुरयुद्ध वेतायुगांत झालें. ( भा०, स्कं० ६, अ० १०।१६ ) असें असतां येथें कृतयुग चालू असल्याचें कसें लिहिलें आहे कळत नाही. कदाचित् प्रत्येक महा-युगाचे पोटांत कृतादि चतुर् युगें असतात, ही कल्पना धरिल्यास संगति लागते.

सुराशीं युद्ध झालें. या तारकयुद्धांत युद्धाविषयीं गर्व वाहाणारे असे मोठमोठे भयंकर दैत्य यांनीं यक्ष, उरग, राक्षस, यांसह देवमंडळीची मोठी कत्तल मांडिली. त्यावेळीं त्यांची युद्ध-सामग्री बहुतेक संपत येऊन ते युद्धाविषयीं पराङ्मुख होऊन आपला वाली जो परमात्मा हरि नारायण त्याला मनोभावानें शरण गेले. याच समयीं असा चमत्कार झाला कीं, मेघ हे सूर्य, चंद्र व इतर ग्रह यांसह आकाश आच्छादून टाकून निखाऱ्यांचा पाऊस पाडूं लागले; व चमचमणाऱ्या विजांनीं व्यापलेले आणि भयंकर कडकडाट करणारे असले ते मेघ एकमेकांवर आदळूं लागले. तशांत मेघमंडळीची खळबळ उडवून देणारे प्रवाहादि सप्तवायु वाहूं लागले. वज्राच्या वेगामुळें उठलेले जे वायु त्यांच्या तडाक्यानें व्याकुल होऊन व विद्युत्-पातामुळें तापून गेलेल्या पाण्याच्या योगानें आणि भयंकर उल्कापातांनीं पेटून गेलेलें आकाश जणूं धावरून ओरडूं लागले. हजारों उल्कापात होऊं लागले. व बारंवार आकाशांतून चालणारीं विमानेंही उलथीं पालथीं होऊं लागलीं; व कधीं खालीं पडूं लागलीं; आणि कधीं अधिकच वर उसळूं लागलीं. चार युगांच्या अखेरीस प्रलयकाल सुरू झाला असतां ज्या प्रकारचीं लोकांना भय देणारीं चिन्हे उत्पन्न होतात, त्याच प्रकारचीं या उत्पातसमयीं सर्व चिन्हे दिसूं लागलीं. सर्वत्र अंधारमय होऊन कशाची प्रभा मिळून दिसेना व कोणतीही वस्तु न्याहाळेना; व दाही दिशा अंधकाराच्या पुंजानें व्यापून गेल्यामुळें त्यांचा प्रकाश उमटेना. फार काय सांगावें, अत्यंत घोर अशा अंधकारा-पुढें सूर्याचें देखील तेज पडेना व त्यामुळें अर्थातच द्यौ (आकाश) ही कालमेघाचें पांघरूण घेऊन अमावास्येची प्रत्यक्ष मूर्तिमंत रात्रच कीं काय अशी भासत होती. अशा

त्या अंधकारानें व्याप्त झालेल्या मेघपुंजांना आपल्या उभय हातांनीं दूर सारून भगवान् हरि परमात्मा यानें आपली श्यामसुंदर दिव्य मूर्ति प्रकट केली. त्या मूर्तीचा वर्ण सजल मेघा-सारखा नील व तीवरील केशही नीलवर्ण. या-प्रमाणें एकंदर शरीर व त्यावरील कान्ति हीं उभय कृष्णवर्ण असल्यामुळें कृष्ण परमात्म्याला पाहून नीलपर्वताचा भास होत असे. कटी-भोंवतीं झळाळीत पितवर्णी पंतांबैर होता. आगीसारख्या लाल सोन्याचे दागिने अंगावर होते; व शरीराचा मूलवर्ण धूसर असल्यामुळें धूम्रानें व्याप्त असा प्रलयाशीच उठला आहे काय असें भासे. त्याला पुष्ट असे आठ खांदे होते. त्याचे मस्तकावरील केश किरीटाखालीं झांकले होते. सोन्याच्या ज्यांना मुठी आहेत अशीं आयुधें हातांत धरिल्यानें त्याला अधिक शोभा आली होती, व चंद्रसूर्याच्या किरणानें चमकणाऱ्या गिरिशिखराप्रमाणें अचल असें नंदक नांवाचें खड्ग हातीं धेतल्यानें त्याला आनंद होत असे व तें खड्ग मनःशिला नामक धातूच्या वर्णाच्या कमरपट्ट्यांत अडकविलेलें असे. त्याच्या भात्यांत बाणरूपी सर्प भरून राहिले होते, व त्यानें हातांत शक्ति, वज्र, हल, शंख, चक्र व गदा, हीं आयुधें धारण केलीं होती. त्या विष्णुरूप पर्वताचें क्षमा म्हणजे पृथ्वी हें मूळ असून त्यावर श्री म्हणजे लक्ष्मीरूपी वृक्ष होता, किंवा जो साक्षात् लक्ष्मीचा म्हणजे शोभेचा वृक्षच होता. अशा त्या परमेश्वराच्या हातांत शार्ङ्ग धनुष्य असून हरिद्वर्णाचे अश्व ज्याला जोडिले आहेत, ज्याच्यावर गरुडाच्या आकृतीचा ध्वज फडकतो आहे, चंद्र व सूर्य हीं ज्याचीं शोभिवंत चाकें आहेत, मंदर पर्वत

१ पीतांबर याचा मुख्यार्थ पिवळे वस्त्र असा आहे, तथापि, रूढीमध्ये तो बदलून तिळाचें तेल या न्यायानें पिवळा पीतांबर असा प्रयोग सद्य झाला आहे.

हा ज्याच्या दोन चाकांमधील आंस आहे, अनंत नामक सर्प हाच ज्याच्या रथाच्या दोऱ्या आहेत, मेरु पर्वत हा ज्याचा तुंबा आहे, आकाशांतील तारागण हेच ज्याच्या रथाच्या टपावर जडविलेलीं चित्रविचित्र नक्षीचीं फुलें; व ग्रहनक्षत्रे हेच ज्याला ठिकाठिकाणीं घातलेले टांके आहेत, अशा त्या विश्वमय रथांत बसलेली परमात्म्याची भीताला अभय देणारी मूर्ति त्या दैत्यांपासून पराजय पावलेल्या देवगणांनीं पाहिली. तेव्हां ते सर्व देव इंद्राला पुढें करून हात जोडून व जयजय शब्द उच्चारून त्या शरणागताला अभय देणाऱ्या देवास शरण गेले. मग त्यांची ती दीनवाणी विनवणी ऐकून परमात्म्या विष्णूला दया आली; आणि घोर संग्राम करून देवमंडळीला त्रास देणाऱ्या दानवांचा निःपात करण्याचा निश्चय त्यानें केला. त्या पुरुषोत्तम विष्णूनें अत्युच्च अशा आकाशांतूनच त्या सर्वही देवांना प्रतिज्ञापूर्वक असें सांगितलें कीं, हे मरुद्गणहो, देव तुमचें कल्याण करो. तुम्ही भिऊं नका, स्वस्थ व्हा. मी सर्व दानव मारिलेच समजा; आणि तुम्ही हें त्रैलोक्याचें राज्य आपलें परत घ्या. या-प्रमाणें त्या कधींही अनृत न बोलणाऱ्या श्री-विष्णूच्या मुखांतून त्यांना जेव्हां आश्वासन मिळालें तेव्हां ते सर्वही संतुष्ट होऊन त्या सर्वांच्या मनाला असला पराकाष्ठेचा आनंद झाला कीं, तसला आनंद पूर्वीं समुद्रांतून त्यांना ज्या वेळीं अमृत प्राप्त झालें होतें त्या वेळीं मात्र झाला होता.

भगवंतांनीं असें आश्वासन देतांच सर्वभर माजून राहिलेला काळोख संपुष्टांत आला. दग कोठच्या कोठें नाहींसे झाले; मंगल असे वारे सुटले, दाही दिशा प्रसन्न दिसूं लागल्या, सर्व नक्षत्रे तेजास चढून चंद्राभौवतीं प्रदक्षिणा घालूं लागलीं, त्याचप्रमाणें शनिशुक्रादि सर्व ग्रहगण

दीप्तिमान् होऊन सूर्याभौवतीं प्रदक्षिणा घालूं लागले. ग्रहाग्रहांचा विरोध बंद पडला. नद्यांचीं उदके स्वच्छ दिसूं लागलीं, देवयान पितृयान व मोक्षयान हे तीनही मार्ग रजो-रहित होऊन स्वच्छ दिसूं लागले, नद्यांचे ओघ सरळपणें वाहूं लागले, क्षुब्ध झालेले समुद्र पूर्ववत् झाले, मनुष्यांचीं आंतरिंद्रियें शुभेच्छेनें प्रेरित झालीं. मोठमोठ्या ऋषींची चिंता दूर झाल्यानें ते उच्च सवनावर वेद म्हणूं लागले. यज्ञयाग सुरू होऊन त्यांत अग्नीला मिष्ट व पवित्र असा हविर्भाग मिळूं लागला. सारांश, हे राजा, देवाधिदेव जो सत्यप्रतिज्ञ विष्णु त्याची शत्रुवधाविषयींची निश्चित वाणी कानीं पडतांच सर्व लोकांना फार प्रेम वाटून चित्तांत अत्यानंद झाला, व सहजच सर्व लोक सुरळीतपणें आपआपल्या धर्माचें सेवन करूं लागले.

## अध्याय त्रेचाळिसावा.

—:०:—

### दैत्यसेनावर्णन.

वैशंपायन सांगतातः—प्रत्यक्ष श्रीविष्णु आपला वध करणार ही भयंकर बातमी ज्या वेळीं दैत्यदानवांच्या कानीं गेली त्या वेळीं त्यांनीं युद्धाविषयींची जंगी तयारी चालविली. कारण, युद्धांत पराजय व्हावा हें त्यांना आवडत नव्हतें. मयनामक असुर एका कांचनमय रथावर चढला. हा रथ कधींही न मोडेल इतका भक्कम होता. याच्या गर्भांतील क्षेत्र चारशें हात होतें, याला चार चाकें होती. पाण्यांतून, आगींतून, समविषम भूभागांतूनही हा न अडखळतां धांवत जात असे. यावर मोठमोठालीं निवडक आयुधें सुव्यवस्थित भरून ठेविलीं होती. क्षुद्र घंटांच्या जाळ्या सभोंवार लावल्या असल्यामुळें तो रथ चालूं लागला

असतां त्यांचा मोठा घणघणाट उठे. तो व्याघ्र-चर्मने सुशोभित केला असून रत्नाच्या व सुवर्णाच्या जालांनीं खचला असल्यामुळे फारच सुशोभित दिसे. त्याचा आंसही फार खबरदार होता. त्या काळचे जे नामांकित रथ होते त्यांत हा श्रेष्ठ होता. हा केवळ पर्वत-प्राय दिसत असे. यांत मुख्य रथखिरीज-करून इतर लोक बसण्यासाठीं केलेल्या जागा ( ज्यांस संस्कृत भाषेंत उपस्थान असे म्हणतात ) त्याही फार सोईच्या बनविल्या होत्या. त्या रथावर हरीण, लांडगे, वगैरे पशु व अनेक तऱ्हेचे पक्षी यांचीं चित्रे बसविलीं होती. दिव्यास्त्रांनीं भरलेले असे भाते त्यांत ठेविलेले होते. त्याचा गडगडाट केवळ मेघांच्या गडगडाटाप्रमाणे असे. त्यांत गदा आणि परिघ हीं आयुधें भरपूर ठेविलीं होती. त्याचा अफाटपणा पाहून मूर्तिमंत समुद्राचा भास होत असे. त्याचे सांघे सोनेरी कड्यांनीं आवळले होते. त्याच्या चाकांचे तुंबेही सोनेरीच होते. त्याजवर उंच उंच ध्वज व पताका फडकत असल्यामुळे शिरोभागीं सूर्यमंडल धारण करणाऱ्या मंदराचलाचा भास होत असे. धिप्पाड हत्ती किंवा नीलमेघ याप्रमाणें तो भव्य दिसे. त्याच्या अति चपल वेगामुळे सिंहाचें साम्य दिसे. त्यावर अनेक अस्वल ठेविले होते. हजारों मेघांच्या गर्जनेप्रमाणें त्याचा घडगडाट असे. तो केवळ आगीच्या लोळाप्रमाणें दिसे. त्या दिव्य रथाची गति आकाशांतही असून शत्रूच्या रथाचा तो चुराडा करून टाकणारा होता. असो; अशा त्या रथावर अंशुमाली सूर्य जसा मेरुपर्वतावर चढतो त्याप्रमाणें तो रणोत्सुक मयासुर चढला.

तारकासुरानेही तसलाच जंगी रथ आणिला होता. तो सर्वच लोखंडाचा होता. त्याचा विस्तार कोसभर होता. त्याच्या ध्वजावर कावळे

बसविले होते. त्याला ठिकठिकाणीं लहान लहान मेघडंबऱ्या उचलून दिल्या असल्यामुळे लहान टेंकड्यांनीं भरून गेलेल्या पर्वताप्रमाणें तो दिसे. तो लोहमय असल्यानें त्याच्या कृष्णवर्णावरून काजळाच्या ढिगाप्रमाणें दिसे. त्याला पोलादाचीं केलेलीं आठ चाकें होती. त्याचे दांडे व तुंबेही लोखंडाचे होते. पेटलेल्या कोळशाप्रमाणें त्याचें तेज होतें. गर्जणाऱ्या मेघाप्रमाणें त्याचा आवाज होता. त्याला लोखंडी जाळ्यांचे झरोके चौफेर बसविले होते. त्यांत लोखंडी परिघ, फेंकण्याचीं अश्मयंत्रें, प्रास, तोमर, मुद्गर, शत्रूला भीति देणारे परशु व एकमेक गुंफलेले असे विस्तीर्ण पाश, इत्यादि सामुग्री भरपूर ठेविली होती. शत्रूंवर चाल करून जाण्यासाठीं दुसरा मंदर पर्वतच उठला आहे कीं काय असा ज्याला पाहून भास होत होता, व ज्याला हजार गाढव जोडिले होते अशा उत्कृष्ट रथावर तो तारकासुर बसला. तिसरा विरोचन हा रागानें खवळून जाऊन व हातीं गदा घेऊन, चमकणाऱ्या शिखराप्रमाणें त्या तारकसैन्याच्या अग्रभागीं उभा राहिला. चौथा हयग्रीव दानव यानें आपला रथ हजार घोड्यांनीं चालविला होता. हा हयग्रीव शत्रूंचीं सैन्यांचीं सैन्यें उध्वस्त करण्याइतका पराक्रमी होता. पांचवा वराह दानव. हा अनेक सहस्र दोऱ्या लाविलेले व अत्यंत दीर्घ असे धनुष्य ओढीत एखाद्या पारंढ्या सुटलेल्या वटवृक्षाप्रमाणें सैन्याच्या तोंडावर उभा राहिला. सहावा खर नामक दानव हा तर युद्धविषयीं इतका हुटुहुटून गेला होता कीं, त्याच्या देहांत तो तेख मावेनासा होऊन त्याचे दांतोंआठ फुरफुरू लागले, व संतापानें त्याची मस्ती अश्रूंच्या रूपानें डोळ्यांतून घळघळ वाहू लागली. सातवा दानव त्वष्टा. हा अठरा घोडे जोडलेल्या रथांत बसून मोठ्या नेटानें दानवांच्या

गराडचांतून सैन्याच्या रचलेल्या व्यूहांतून फिरत होता. आठवा विप्रचित्ति दानवाचा पुत्र श्वेत हा श्वेतकुंडलें अंगावर घालून एखाद्या श्वेतपर्वताप्रमाणें शोभायमान् दिसणारा युद्धासाठीं सामोरा उभा राहिला. बलीचा पुत्र अरिष्ट हा मेहनत केलेला श्रेष्ठ वीर हातांत पर्वतावरील पाषाणांचीं आयुधें घेऊन युद्धार्थ उभा राहिला. त्या वेळीं तोही पर्वतासारखा दिसत होता. दहावा किशोर दानव. हा तर युद्धासाठीं इतका खुलखुलला होता कीं, तो एखाद्या शिंगराप्रमाणें थयथय नाचूं लागला, आणि दैत्यसैन्याच्या मध्यभागीं जाऊन उभा राहिला. त्या वेळीं उदय पावलेल्या सूर्याप्रमाणें तो शोभूं लागला. अकरावा लंब. ह्याची कांति पाण्यानें ओथंबलेल्या मेघाप्रमाणें असून याच्या अंगावरील वस्त्रें व भूषणें हीं लांबच-लांब शोभत होतीं. असा हा लंब दैत्यांच्या सैन्य-व्यूहांत जाऊन उभा राहिला असतां कंकणग्रहणसमयीं राहूच्या जाबडचांत सांपडलेल्या सूर्याप्रमाणें दिसूं लागला. महाग्रह जो स्वर्भानु म्हणजे राहु हा हंसतच दैत्यसैन्याच्या अघाडीस उभा राहिला. दांत, ओंठ, नेत्र व मुख हींच याचीं युद्धांतील आयुधें होतीं. असला हा विलक्षण होता.

या वर सांगितलेल्या ठळक ठळक दानवां-शिवाय दुसरे असंख्य दानव होते. त्यांतील कित्येक घोड्यांवर बसले होते. कित्येक हत्तींच्या खांद्यावर, कित्येक सिंहांवर, कित्येक व्याघ्रां-वर, कोणी डुकरांवर तर कोणी अस्वलांवर, कोणी गाढवांवर तर कोणी उंट्यांवर व कोणी तर मेघांवर स्वार होऊन चालले होते. कांहींनीं मोठमोठ्या पक्ष्यांच्या पाठीवर स्वाऱ्या ठेविल्या

होत्या; व कांहींनीं तर वायूचेंच वाहन केलें होतें, हा रिसाला झाला. याशिवाय पायदळ तर वेगळेंच होतें. त्या पायदळांत कसले कसले भ्यासूर व वेडेवांकड्या तोंडाचे दैत्य होते. कोणाला एकच पाय होता तर कोणाला दोन्हीही होते; व युद्धाविषयीं उत्सुक होऊन ते नंदिवेलाप्रमाणें डरकळ्या फोडीत होते. मस्तींत आलेल्या व्याघ्राप्रमाणें गर्जना करणाऱ्या त्या दानवश्रेष्ठांनीं सारखा कोलाहल माजविला होता; व त्यांतील कित्येक जण खणाखण दंड ठोकीत होते. अडसरासारखे लांबच लांब ज्यांचे बाहू आहेत असले ते दैत्य गदा, परिघ वगैरे उग्रायुधें हातांत घेऊन, आणि धनुष्याला ताण देदेऊन आपल्या प्रतिपक्ष्यांकडील देवतांना भय देऊं लागले. याशिवाय कित्येकांनीं आपले हातांत प्रास, कोणी पाश, कोणी खड्ग, कोणी तोमर, कोणी अंकुश, कोणी पट्टिश, कोणी शतघ्नी, कोणी शतधारांचे मुद्गर, कोणी गंडशैल, कोणी शैल, कोणी परिघ, कोणी चक्रे, इत्यादि अनेक प्रकारचीं आयुधें हातीं घेऊन व त्यांशीं सहज मजेनें खेळून सर्व दानवसैन्यांत आनंदी आनंद करून सोडला.

याप्रमाणें हें दानवांचें सर्वही सैन्य युद्धा-विषयीं बळकट उत्कंठित होऊन सूर्यापुढें चालत जाणाऱ्या मेघमंडलाप्रमाणें देवसमूहासमोर तोंड देऊन उभें राहिलें. हजारों हजार दैत्यांनीं खचलेलें व वायु, अग्नि, जल, मेघ आणि पर्वत यांप्रमाणें भासणारें तें अद्भुत सैन्य सर्वांच्याही अंगांत त्या रणप्रवाहांत घुसण्याचा आवेश संचारल्यामुळें युद्धलालसेनें केवळ वेडें होऊन गेलेलें दिसत होतें.

१ ही गोष्ट असंभाव्य नव्हे. आजकालही शहामग व त्याच्या वर्गातील कित्येक पक्षी हे मनुष्याला पाठीवर सहज वाहूं शकतात.

## अध्याय चव्वेचाळिसावा.

—:०:—

### देवसेनावर्णन.

वैशंपायन सांगतात:—बा जनमेजया, तू या संग्रामांत दैत्यांच्या बाजूला सैन्याचा विस्तार कसा होता तें ऐकलेंस. आतां विष्णु-पक्षाच्या म्हणजे देवांच्या एकंदर सैन्याचा विस्तार कसा होता तो ऐक. आदित्य, वसु, रुद्र, तसेंच महाबलाढ्य अश्विनीकुमार हे सर्वही आपआपले हाताखालचीं सैन्ये व आपले अनुयायी यांसह बंदोबस्तांनं सज्ज होऊन राहिले. लोकपाल व सर्व देवांचा अग्रणी जो सहस्रनेत्र इंद्र तो ऐरावतावर बसून सर्व सैन्याच्या अघाडीस उभा राहिला. त्याचे डावे बाजूस गरुडाप्रमाणें वेगवान्, सुंदर चक्रांनीं युक्त, सुवर्ण आणि हिरे यांनीं शोभिंवत केलेला असा रथ तयार ठेविला होता. त्या देवेंद्रामागून देव, गंधर्व, यक्ष यांचे थवेच्या थवे चालले होते, व तेजस्वी सदस्य आणि ब्रह्मर्षि त्याची स्तुति गात होते. वज्राचे आघातांनं उदय पावलेल्या विद्युलतारूप आयुधानें युक्त अशा स्वैर-संचारी पर्वताप्रमाणें दिसणाऱ्या मेघांनीं भोंवतालीं कोट करून त्या इंद्राचें रक्षण केलें होतें. अशा बंदोबस्तांत भगवान् इंद्र, ज्याची स्तुति सोमयज्ञकालीं ब्राह्मणलोक यज्ञमंडपांत गातात, असा तो ऐरावतावर बसून चालला. याप्रमाणें तुताऱ्या वेगरे रणवाद्यांच्या घोषांत ज्या वेळीं इंद्राची स्वारी स्वर्गांतून चालली त्यावेळीं शेंकडों अप्सरांचे ताफे स्वारीपुढें नाचूं लागले. त्या इंद्राच्या रथावर ज्याला दांड्याला वेळूची काठी आहे असा ध्वज लाविला असून, त्याला वायुवेगानें किंवा मनोवेगानें पळणारे घोडे जोडिले होते व मातली त्यावर सारथी बसला होता. त्या वेळीं तो रथ पाहून सहस्रकिरण रवीची किंवा रविकिरणांनीं सर्वथा व्याप्त

झालेल्या मेरु पर्वताची आठवण होते असे. यम हा आपला दांड आणि कालस्वरूपी मुद्गर उगारून आपल्या हबकणीनं दैत्यगणांस दडवीत देवसैन्यांत उभा राहिला. त्यापुढें देवसैन्याच्या मध्यभागींच पाशधारी वरुण उभा होता, त्याचे रक्षणार्थ त्याचे भोंवतीं चार समुद्र व वारंवार जिभल्या चाटणारे मोठमोठे सर्प होते. त्याचें शरीर जलमय असून त्याचे हातांत शंख व मुक्तामय बाहुभूषणें होती. तो हातामध्ये काल-पाश घेऊन चंद्रकिरणप्रमाणें धवल अशा अश्र्वांशीं व वायूनं उसळविलेल्या जलतरंगांशीं नानाप्रकारचे खेळ खेळत होता. त्याच्या अंगावर पांढरें घवघवीत आणि मलमलीहूनही पातळ असें वस्त्र होतें. पोंवळ्यांच्या वेलींचीं रमणीय अशीं कडीं त्याच्या हातांत होती व पाचूंप्रमाणें त्याची शरीरकान्ति असून त्याच्या उदरावर हारांचें ओझेंच लोंबत होतें. अशा रीतीनं तो वरुण मर्यादेबाहेर वाढलेल्या समुद्राप्रमाणें युद्धोत्कटेनं उचंबळून चालला होता. कुबेरही त्या युद्धांत हजर होता. त्याजबरोबर यक्षराक्षसांचीं सैन्ये व गुह्यकांचे गण होते. त्याचें शरीर अतिशय सुंदर असून त्यावर पाचूचें तेज होतें. त्याचें विमान मनुष्यें ओढीत होती. तो देवांचा खजिनदार असल्यामुळें शंख व पद्म या नांवांचे दोन निधी मूर्तिमंत त्याजबरोबर होते. त्याला राजराजेश्वर अशी संज्ञा होती. अर्थातच त्याचेजवळ अलोट संपत्ति होती, व तो सर्वांना द्रव्यपुरविणारा असल्यामुळें त्याला धनद असें म्हणत. त्याला विमानांतून युद्ध करण्याची होस होती. यामुळें तो पुष्पक नामक विमानांत बसून तें मनुष्यांच्या खांद्यांवर देऊन त्या युद्धभूमीवर उभा होता. तो शंकराचा प्रिय मित्र असून स्वतःही शंकराप्रमाणेंच शोभिंवत असल्यामुळें त्या राजराजाकडे सर्वांचेही डोळे वेधून राहिले होते.



याप्रमाणें देवसैन्याच्या चार बाजूंना बलाढ्य असे हे चौघे लोकपाल आपआपली नेमलेली दिशा धरून रक्षणार्थ उभे होते. म्हणजे पूर्वे-कडील बाजू इंद्रानें संभाळिली होती, दक्षिणे-कडील यमानें, वरुणानें पश्चिमेकडील व उत्तरे-कडील कुबेरानें. त्याशिवाय दिनराज सूर्य हा मेरु पर्वताच्या भोंवतीं किरणाच्या आपल्या सात घोडे जोडलेल्या व तेजानें जळतोच कीं काय अशा उज्ज्वल किरणमय आकाशस्थ रथांत बसून आलातचक्राप्रमाणें स्वर्गप्रदेशांत गिरक्या घेत व सर्व लोकांना सतत प्रकाश-मान् करीत आपल्या सहस्रकिरणमय तेजांनीं चमकत चमकत द्वादश स्वरूपांनीं देवमंडळींतून फिरत होता. शुभ्र अश्व जोडलेल्या रथांत बसून आपल्या शीतल व जलमय किरणांनीं जगताला आनंदवीत भगवान् शीतरश्मी म्हणजे चंद्रही तेथें आला होता. याचे भोंवतीं नक्षत्रांचा परिवार होता. हा शीतकिरण चंद्र म्हणजे ब्राह्मणांचें मुख्य दैवत; ग्रहण-समयीं पृथ्वीची छाया स्वदेहावर धारण करणारा, रात्रीसंबंधीं अंधकाराचा क्षय करणारा, आकाशस्थ ज्योतींमध्ये प्रधान, सर्व रसांना प्राणभूत, सर्व औषधींचा मालक आणि रक्षणकर्ता, अमृताचें निधान, या अग्निसोमात्मक जगतांतील प्रथम म्हणजे अन्नात्मक अंश, अर्थातच रसमय, व हिमरूपी शस्त्र धारण करणारा (थंडीनें मारणारा), अशा त्या शीतमय चंद्राकडे दानव मंडळी विशेष रोखून पाहात होती. जो सर्व भूतांचा प्राण, जो मनुष्यदेहामध्ये प्राण, अपान, व्यान, उदान आणि समान या पांच रूपांनीं विभक्त आहे;

१ याचें कारण चंद्र हाही एके दृष्टीनें दानवांत धरिला आहे. ज्योतिषांतही क्षीण चंद्र पापग्रह व पूर्णचंद्र पुण्यग्रह, असा उभयात्मक मानिला आहे. तेव्हां चंद्र हा दानव अर्थात् आपले जातीचा असून देवांत मिसळला म्हणून दानवांचा त्याजवर रोष.

जो सप्तरूपभेदानें या त्रैलोक्यांतील चराचराचें पालन करितो, ज्याला अग्नीचा सारथी असें म्हणतात, जो सर्वांचा उद्भव व ईश्वर आहे, सप्तस्वरात्मक जें गायन तें ज्याचें उत्पत्तिस्थान म्हटलें आहे, ज्याला महाभूतांतील उत्तम भूत असें म्हणतात, ज्याला अमूर्त असेंही म्हणतात, ज्याची गति फार शीघ्र असून ज्याची उत्पत्ति आकाशापासून असून ज्याला मातरिश्वा म्हणजे आपल्या उत्पत्तिस्थानाचे (आकाशाचे) ठिकाणींच चलन पावणारा असें म्हणतात, असा तो सर्व भूतांचा प्राणभूत वायु पर्जन्याला साथ घेऊन आपल्या अंगांतील सर्व बल प्रकट करून मोठ्या सोसाट्यानें दैत्यमंडळीला प्रति-कूल दिशेनें वाहून बेजार करूं लागला. या-शिवाय विद्याधरांना बरोबर घेऊन देव, गंधर्व व मरुद्गण हे कांत टाकलेल्या सर्पाप्रमाणें जाज्वल्य अशा तरवारींच्या फेंका करीत होते, व मोठमोठाले सर्प देवमंडळीच्या हातीं बाण-रूप होऊन आपलीं तोंडे पसरून रागानें तीव्र विष ओकीत ओकीत आकाशांतून इतस्ततः संचरत होते. पर्वतही आपलीं शिलामय शिखरें व आपल्या अंगावरील सहस्रावधि शाखांनीं विस्तारिलेले वृक्ष यांस बरोबर घेऊन दानव-सैन्यावर हला करण्यासाठीं देवपुढ्याला येऊन मिळाले. आकाशांत संचार करणाऱ्या पक्षि-गणांत श्रेष्ठ असा जो अरुणाचा धाकटा भाऊ गरुड त्यावर स्वयंप्रकाश असा लक्ष्मीपति श्रीहरि बसून त्या समरांगणांत स्वतः उभा होता. हे जनमेजया, या श्रीहरीचें वर्णन तुला किती म्हणून सांगूं? याला हृषी-केश असें म्हणतात; कारण तो इंद्रियांचा स्वामी आहे. त्याला पद्मनाभ असें म्हणतात; कारण याच्या नाभीच्या ठिकाणीं कमल आहे. याला त्रिविक्रम म्हणतात; कारण यानें तीन पावलांत वामनावतारीं त्रिभुवन व्यापलें. याला

प्रलयकालचा अग्नीही म्हणतात; निखिल विश्वाचा प्रभूही म्हणतात; जो मधुसूदनरूपाने समुद्रांतून आल्याने ज्याला समुद्रयोनि असे म्हणतात. त्याने मधु नामक दैत्याला मारिले म्हणून मधुरिपु म्हणतात. यज्ञांतील हविर्भागाचा तो भोक्ता असल्यामुळे त्याला हविर्भुक् असे म्हणतात. यज्ञांत याचा सन्मान होत असल्यामुळे त्याला क्रतुसत्कृत असे म्हणतात. जो पृथ्वी, आप व आकाश या सर्वही भूतांशीं एकरूप असल्याने ज्याला सम असे म्हणतात. जो दुष्टांना निर्दलून जगताला स्वास्थ्य देतो, यास्तव ज्याला अरिहा आणि शांतिकर असे म्हणतात. सर्व जगत् याजपासून उत्पन्न झाल्यामुळे त्याला जगद्योनि किंवा जगद्बीज असेही म्हणतात. शिवाय जगताला सदुपदेश करणारा हा असल्यामुळे या उदारबुद्धि परमात्म्याला जगद्गुरु असे म्हणतात. ज्याच्या हातांमध्ये सदैव चक्र आणि गदा असतात त्याने शत्रूचा घात करणारे अत्युत्तम तेजस्वी केवळ सूर्यासहित असणाऱ्या अग्नीप्रमाणे जाज्वल्य असे आपले सुदर्शन चक्र उगारून देवसैन्यांत ठाणे धरिले होते. त्या वेळीं डाव्या हाताने सर्व असुरांचा नाश करणारी व वर्णाने काळी असून शत्रूलाही कालाचा मार्ग दाखविणारी जंगी गदा तो गरगरवीत होता, व त्यामुळे त्या गदेला तेजोमंडलासह उदय पावणाऱ्या सवित्रे बिंबाची शोभा आली होती. उरलेल्या हातांत त्या गरुडध्वज महायशस्वी प्रभूने शार्ङ्गधनुष्य इत्यादि अनेक उज्ज्वल आयुधे धरिली होती.

अशा लक्षणांनी युक्त होऊन तो परमात्मा कश्यपपुत्र व सर्पाशन असा पक्षिश्रेष्ठ जो

१ लेखितसे असमानः समेतात् । लोकान् समग्रान् वदन्नेज्वलाद्भिः ॥ भ० गी० अ० ११, श्लो० ३०.

२ वास्तविक या उपमेचा संबंध मागील श्लोकांतील चक्राशीं लावणे जास्ती समीचीन आहे; परंतु, चतुर्धराने तो गदेकडे लाविला आहे.

गरुड त्यावर बसला होता म्हणून सांगितलेच आहे. हे राजा, तो गरुड कसा होता म्हणशील तर तो वायूपेक्षाही अधिक वेगाने गमन करीत असून आपल्या पक्षांच्या फटकाऱ्याने आकाश हालवून सोडी. त्याच्या चोंचीत मोठा सर्प धरिला असल्यामुळे तो मोठा शोभिवंत दिसत होता व त्याच्या त्या विशाल देहामुळे समुद्रांतून अमृतप्राप्ति झाल्यावर घुसळण्यांतून मोकळा होऊन वर आलेला हामंदराचलच कीं काय असा भास होई. त्या गरुडाचा पराक्रम असामान्य होता. त्याने देवासुरांच्या लड्यालढींत हजारों वेळ आपला तडाका दाखविला होता व अमृतासाठीं चाललेल्या भांडणांत इंद्राच्या वज्राने त्याला वण पडला होता. त्याला मोठी शोभिवंत शिखा व झुलपे होती. शिवाय कानांत आगीसारख्या लाल सोन्याची सुंदर कुंडले होती. चित्रविचित्र पिसांचे त्याच्या अंगावर पांघरूण होते, त्यामुळे व आपल्या धिप्पाडपणामुळे अंगावरून गैरिकादि धातूंचे पट्टे असणाऱ्या पर्वताप्रमाणे तो दिसत असे व त्याने तोंडांत धरलेल्या व अर्धवट गिळलेल्या सर्पांच्या मस्तकांत असलेल्या चंद्रतुल्य तेजस्वी मण्याच्या प्रभेने त्याचे विशाल उराड फारच शोभत होते. सुंदर सुंदर रंगबिरंगी पिसे ज्यांत भरली आहेत असे आपले विस्तीर्ण उभे पंख पसरून तो आकाशांतून मौजेने चालला असतां सर्व आकाश भरून टाकी, त्या वेळीं दोही बाजूंना इंद्रधनुष्यांच्या कमानी उभारून आकाशभर फिरणाऱ्या प्रलयकालच्या मेघांचाच भास होत असे. अथवा दैत्यांच्या शत्रुरूपाने प्रकट झालेले ते नील, लोहित व पीत वर्णांच्या पताकांचे अवरोपणस्थानच कीं काय असे वाटे. अशा त्या गरुडावर बसलेल्या श्रीविष्णूच्या मार्गोमाग देवगण, व तपोधन मुनि जाले.

असून आपल्या मंत्रमय वाणीने त्या गदाधराचें स्तोत्र करून त्याला संतोषवीत होते.

या प्रकारें कुवेरानें अंगीकारिलेलें, यमानें पुढाकार घेतलेलें, वरुणानें वेढिलेलें, इंद्रानें शोभायमान् केलेलें, चंद्रप्रभेनें धवलित झालेलें, वायुवेगानें दणाणून राहिलेलें, अग्नितेजानें झगमगणारें व विष्णु, जिष्णु, सहिष्णु व भ्राजिष्णु यांच्या तेजानें भरलेलें असें ते अद्भुत शक्तियुक्त व देवसैन्य सज्य होऊन युद्धार्थ उभे राहिले. याप्रमाणें उभय सैन्यें उभी राहिली असतां अंगिरसकुलोत्पन्न देवगुरु बृहस्पति “तुमचें कल्याण असो, तुमचा जयजयकार होवो.” याप्रमाणें देवमंडळीस आशीर्वाद देत होते. तिकडे दैत्यगुरु शुक्राचार्य हेही दैत्यमंडळीला याचप्रमाणें आशीर्वाद देऊन राहिले होते.

## अध्याय पंचेचाळिसावा.

—:—

### देवासुरसंग्रामवर्णन.

वैशंपायन सांगतात:—मग त्या एकमेकांवर चढ करून जय मिळवूं इच्छिणाऱ्या देव व असुर या उभयतांच्या सैन्यांची मोठी तुंबळ लढाई झाली. अनेक प्रकारचीं शस्त्रास्त्रे घेऊन ते दानव त्वेषानें देवांवर जेव्हां चाल करूं लागले, त्या वेळीं पर्वत पर्वतांशीं भांडतात कीं काय असें भासूं लागलें. देव व असुर यांमधील युद्ध एक प्रकारें अद्भुतच होतें. कारण, त्यांत एका बाजूला धर्म व विनय, आणि असुरांच्या बाजूला अधर्म व दर्प, असा विपरीत प्रकार होता. तें देवदानवांचें युद्ध फारच गर्दीचें व अतिशय घोर असें झालें. त्यामुळें सर्व जगताला त्राही त्राही होऊन जाऊन युगांतीचा प्रलयाग्नि पेटला कीं काय असा भास होऊं लागला. कारण त्या वेळीं ते दानव अत्यंत वेगवान् व केवळ आकाशांत

उडी घेणारे असे आपल्या चपळ रथांचे घोडे चेंपून हातांत नंग्या तरवारी घेऊन कोणी मुसळें फेकीत, कोणी वाण सोडीत, कोणी धनुष्यें ताणीत, कोणी मोगऱ्यांचा वर्षाव करीत, कोणी आपल्या हातांतील परिघ भिरकावीत, तर कोणी पर्वतच फेंकीत,—अशा प्रकारें इंद्र-प्रभृति देवगणांवर तुटून पडले. याप्रमाणें त्या महाबलाढ्य आणि विजयशाली दानवांनीं भडा-भड देवांना घायाळ करण्याचा यत्न सुरू केला, त्या वेळीं ते देवगण त्या रणभूमीवर हिरमुष्टी होऊन अत्यंत खेद करूं लागले. त्या दितीच्या पुत्रांनीं त्या देवांचीं आपल्या परिवानें मुंडकीं उडविलीं. आपल्या अस्त्रजालांनीं त्यांची कणीक मऊ केली, व त्यांना प्रथम पाशांत गुरफटवून निश्चेष्ट करून नंतर बाणांच्या योगानें छाताडें फोडून त्यांना रक्ताच्या गुळण्या ओकावयास लाविलें. या प्रकारें त्या दानवी मायेच्या तडाक्यांत सांपडून त्या देवांची कांहींएक गडबड चालेनाशी झाली. त्या असुरांचें सामर्थ्य किती म्हणून सांगावें ? त्यांच्या शक्तीपुढें ते देवांचें सैन्य निरस्त्र व विप्रयत्न होऊन मेल्याप्रमाणें निश्चेष्ट दिसूं लागलें. असा प्रकार पाहून देवश्रेष्ठ जो सहस्रनेत्र इंद्र तो आपल्या शक्तीनें ते दैत्यांचे मायावी पाश दूर करीत आणि आपल्या वज्रानें दैत्यांच्या बाणांचे तुकडे करीत त्या घोर दैत्यसैन्यांत शिरून त्यांतील प्रमुख दैत्यांना प्रथम ठार करून उरलेल्या त्या अफाट दैत्यसैन्याला आपल्या तामसी मायेच्या योगानें तमोमय करून सोडता झाला. इंद्राच्या सामर्थ्यामुळें याप्रकारें अत्यंत घोर अशा तमानें व्याप्त होतांच त्या दानवांना देव कोणता व असुर कोणता, हें ओळखेना. अशा समर्थी दैत्यांच्या मायावी पाशांतून सुटलेले देवगण यत्न करून अंधकारानें गोघळून

गेलेल्या त्या दैत्यांचीं शरीरें तडातड धरणीवर पाडूं लागले. याप्रमाणें त्या तमाच्या प्रभावानें नीलवर्ण व वेशुद्ध होऊन जाऊन देवांच्या हातून ते धिप्पाड दानवगण पंख तुटलेल्या पर्वतांप्रमाणें धडाधड कोसळूं लागले. इंद्राच्या त्या तामसी मायेचा परिणाम केवळ दैत्य-सैन्यावरच न होतां त्या दैत्यांच्या राजभवनावरही झाला. कारण, तो सर्व राजवाडा त्या-मधील मेघांप्रमाणें धिप्पाड असे रक्षक राक्ष-सांसह काळोखांत दडून जाऊन अंधकाराच्या समुद्राप्रमाणें भासूं लागला.

दैत्यसैन्याची ही अवस्था पाहून मय नामक असुरानें कल्पांतकालीन वडवाग्नीषासून बनविलेली अशी अत्युग्र महामाया सोडून तिच्या योगानें इंद्राच्या तामसी मायेला जाळून काढिलें. मयासुराच्या त्या मायेनें त्या इंद्रमायेनें निर्माण केलेलें तें सर्व तम नष्ट करितांच असुर मंडळीला पुन्हा तेजला चढून ती तत्काल युद्धार्थ उभी राहिली. इकडे मयासुरानें सोडलेल्या त्या और्वी मायेच्या योगानें देवमंडळीच्या अंगाचा जेव्हां भडका होऊं लागला तेव्हां ते थंडगार अशा पाण्यांत निजावयास सांपडावें म्हणून शीतकिरण जो जलात्मा चंद्र त्याच्या आश्रयास धांवले. या-प्रमाणें त्या और्वी मायेच्या तेजानें जळून जाऊन भ्रष्टतेज झाले असतां त्या देवांनीं दैत्यांना शरण जाण्याची आपली इच्छा आपला अधिपति जो इंद्र त्याला कळविली. याप्रमाणें त्या दैत्यमायेच्या सामर्थ्यानें देवसैन्य कावून जाऊन इंद्राकडे आलें असतां इंद्रानें वरुणाला आज्ञा केली. त्या वेळीं वरुण म्हणाला कीं, हे इंद्रा, पूर्वकालीं गुणांनीं केवळ ब्रह्मदेवाप्रमाणें असा भृगुमहर्षीचा पुत्र जो

तेजस्वी और्वमुनि त्यानें अति दारुण असें तप केलें. मग तो आपल्या तपस्तेजानें सनातन सूर्याप्रमाणें जेव्हां सर्व जगत् तापवूं लागला तेव्हां सर्वही मुनिगण व ब्रह्मर्षींसह देवगण त्याजकडे आले. त्याचप्रमाणें दानवपति हिर-ण्यकशिपु दानवही त्या परम तेजस्वी ऊर्व-ऋषीची विनवणी करूं लागला. ब्रह्मर्षी त्या ब्रह्मतुल्य ऋषीला म्हणाले, “हे मुने, आपण ऋषिवंशात जन्मलेले असून ब्रह्मचर्य अवलंबिलें आहे, व त्यामुळें आपलें हें ऋषिकुल खुंटलेंसे-च झालें. कारण आपण आपल्या पित्याच्या पोटी एकटेच उत्पन्न झालां असून आपण उर्ध्वरेत्याचें व्रत पतकरून तपाचे कष्ट सोशीत बसलां आहां आणि पुत्रपौत्रादि संतानवृद्धि करण्याचा क्रम सोडून दिला आहे. आपल्याचप्रमाणें ब्राह्मण-जातींत अनेक जितेंद्रिय मुनींचीं कुलें त्यांत एकच एक पुरुष उरून छिन्नमूल होत चाललीं आहेत. तथापि, त्या सामान्य कुळांची आम्ही फिकीर करीत नाहीं. परंतु आपण तपानें अत्यंत श्रेष्ठ असून आपलें तेज केवळ ब्रह्मदेवाच्या तोडीचें आहे; याकारितां ( आपल्यासारख्याचें पुत्ररूप प्रतिबिंब मार्गें रहावें असें आह्मांस फार वाटतें म्हणून ) आम्ही विनंती करितों कीं, आपण वंशवृद्धि करण्याकडे लक्ष द्या, आणि आपण आपणास ( पुत्ररूपानें ) द्विगुणित करा. आपण तपाच्या योगानें आपलें तेज फारच उत्कर्षास आगलें आहे. तर असलें हें ओजवलेलें उत्कृष्ट तेज केवळ आपल्याच ठिकाणीं राखून न ठेवितां तें स्त्रीचे गर्भांत घालून पुत्ररूपानें आपले मूर्तीची दुसरी प्रत निर्माण करा.”

याप्रमाणें त्या ऋषींनीं विषयाची गोष्ट काढितांच त्या ब्रह्मचारी मुनीच्या मनाला फार मोठा धक्का बसला; आणि त्या ऋषींची निर्भर्त्सना करून तो म्हणाला, “बाबांनो ब्रह्म-योनींत उत्पन्न होऊन ब्राह्मण्याचें आचरण

१ पूर्वकालीं पर्वतांस पंख होते, परंतु इंद्रानें पुढें ते तोडून टाकिले.

करणारे आणि वन्यमूलफलांवर निर्वाह करून सर्वदा आर्ष म्हणजे ऋषियोग्य कर्म करणारे जे कोणी आहेत त्यांचा पुरातन कालापासून 'ब्रह्मचर्य' हा शास्त्रानें शाश्वतधर्म सांगितला आहे. या ब्रह्मचर्याचें सामर्थ्य सामान्य नव्हे. ब्रह्मचर्याचें योग्य रीतीनें पालन केल्यास तें ब्रह्मचाला देखील हालवून सोडील. जे कोणी ब्राह्मण गृहस्थाश्रम धरून असतील त्यांना याजन, अध्यापन व प्रतिग्रह या निर्वाहार्थ तीन वृत्ति सांगितल्या आहेत. परंतु आमच्यासारखे जे वनवासी मुनि आहेत त्यांना वन हेंच निर्वाहाचें साधन. ( आमच्यासारख्यांना वानप्रस्थ विवाहावांचूनच करितां येतो. ) आजपर्यंत जे कोणी अंबुभक्ष म्हणजे जलपान करून रहाणारे, वायुभक्ष म्हणजे केवळ वायु भक्षण करून रहाणारे, व दांत असतां दंतोलू-खलिक म्हणजे दांतांतोंडाचा खलबत्ता करून तुसासकटच नीवारादि कच्चे धान्य खाणारे, अथवा अश्मकुट्ट म्हणजे दंतांचें साधन नसल्यानें दगडांनं कुटून हिरवें धान्य खाणारे आणि पंचाग्निसाधन करणारे—असले असले अत्यंत दुष्कर व्रतें करून तपश्चर्या करणारे जरी झाले तरी मुख्यतः या ब्रह्मचर्यव्रताचाच अवलंब करून त्याच्या बळावरच मोक्षप्राप्ति करून घेण्याची त्यांनीं उमेद बांधली. बाबांनो, ब्राह्मणाला जें ब्राह्मणत्व येत असतें तें या ब्रह्मचर्यामुळेंच, असें सत्यलोकांत रहाणारे जे ब्रह्मवेत्ते ( अर्थात् स्वानुभवी ) जन ते म्हणतात. ब्रह्मचर्य हा धैर्याचा पाया आहे, तपाची इमारतही ब्रह्मचर्याशिवाय उभी रहात नाही. ज्यांनीं मिळून इहलेकीं असतांना नैष्ठिक ब्रह्मचर्य करारानें तडीस नेलें तेच आजकाल

स्वर्गांत जाऊन नांदत आहेत. योगावांचून सिद्धि नाही; सिद्धीवांचून यश नाही. परंतु, असल्या या यशाला मूलभूत जें तप तें ब्रह्मचर्याहून अधिक दुसरें नाही. याकरितां पांचही इंद्रियें व तद्वारा ( इंद्रियविषयरूपी ) पंचही भूतें यांचें नियमन करून पुरुषानें ब्रह्मचर्यानें रहावें. कारण यापलीकडे दुसरें श्रेष्ठ तप कोणतेंही नाही. योगदाढर्यावांचून केवळ भगवीं पांघरून डोई मुंडणें, दृढनिश्चयावांचून व्रताचरण करणें आणि ब्रह्मचर्यावांचून तपाचरण करणें, या तीन कृतींना दंभ म्हणजे ढोंग अशी संज्ञा आहे. हे ऋषीहो, पूर्वीं ब्रह्मदेवानें जेव्हां केवळ मनोबलानें सनत्कुमारादिक मानसप्रजा उत्पन्न केली त्या वेळीं तुमच्या या स्त्रिया कोठें होत्या, त्यांशीं पुरुषाचा संयोग कोठेंसा होता आणि चित्ताला उलथून पाडणारा कामातुरपणा तरी कोठें होता? तुम्ही आपणास महात्मे म्हणवितां त्या अर्थीं तुमचे ठिकाणीं तपाचा खराच जोर असेल तर ब्रह्मदेवाच्या पद्धतीप्रमाणेंच तुम्हीही मानस प्रजा निर्माण करा. तपस्वी म्हणविणाऱ्यांनीं आपले मनानेंच योनी निर्माण करून तिचेच ठिकाणीं गर्भाचें आधान करून मानस प्रजा निर्माण करावी. इतरांप्रमाणें हाडामांसाची स्त्री घेऊन तिच्याशीं संयोग करून तिचे ठिकाणीं बीजाधान करणें हें व्रत तपस्यांना सांगितलें नाही. याकरितां तुम्ही आपणास भले म्हणवीत असतां मजपुढें बेधडक ( मीं लग्न करावें म्हणून ) जें धर्मार्थाला सोडून भाषण केलेंत त्यावरून तुम्ही भले मनुष्य नाहीं असें मला वाटतें. ( माझी संतति असावी असा ज्या अर्थीं तुमचा आग्रह त्या अर्थीं ) मी आतांच स्वसंकल्पानें माझे ठिकाणींच मनोमय योनी निर्माण करून स्त्रीसंयोगावांचून जाडवल्या वृत्तीचा असा एक औरसपुत्र निर्माण करितों.

१ चार बाजूंता चार धुन्या पेटवून मस्तकावर सूर्याचा प्रखर ताप घेणें याला पंचाग्निसाधन असें म्हणतात.

याप्रमाणें वनवासी जनांना योग्य अशा विधीने माझाच आत्मा माझे ठिकाणी पुत्ररूपानें द्वितीय आत्मा निर्माण करील. मात्र तो पुत्र इतका तेजस्वी होईल कीं, प्रजेला जाळून टाकितो असें वाटेल.” याप्रमाणें बोलून त्या तपोनिष्ठ ऊर्वमुनीने आपली मांडी अग्नीत घालून तीच पुत्रोत्पत्तीचें स्थान समजून अरणीप्रमाणे ती एका दर्भानें मंथूं लागला. तेव्हां एकाएकी त्याची मांडी फोडून इंधनावाचूनच ज्वाला धारण करणारा व सर्व जगताचा ग्रास करूं इच्छिणारा पुत्ररूप अग्नि त्यांतून निघाला. ऊर्वाची मांडी फोडून तिन्ही लोकांना जाळू पहाणारा असा परम कोपिष्ठ जो पुत्ररूपी अंतर्कर्ता अग्नि उत्पन्न झाला त्याला और्व असें म्हणतात. तो उत्पन्न होतांच त्वेषयुक्त वाणीनेच आपल्या पित्याला म्हणाला, “मला सोडा, मला जाऊं द्या. भुकेनें माझे प्राण चालले. मी आतां जाऊन सर्व जग भक्षण करितों.” असें म्हणून तो अंतक अग्नि आकाशाला पोचतील अशा ज्वाळा बाहेर टाकीत आ पसरून प्राणिमात्राला अग्निसात् करितच दाही दिशा वाढूं लागला.

या समयास सर्व लोकपति प्रभु ब्रह्मदेव ऊर्वमुनीनें असला लोकोत्तर पुत्र ज्या स्थळीं निर्माण केला त्या स्थळीं प्राप्त झाला. तेथें पाहातो तों ऊर्व ऋषींची मांडी सूतरूप अग्नीनें पेटली असून पुत्राच्या कोपाग्नीमुळें ऋषीगणांसह सर्व लोकही पेटून राहिले आहेत असें दिसलें. त्या वेळीं ब्रह्मदेव ऊर्व मुनीचा प्रथम सत्कार करून म्हणाला, “लोकांच्या कल्याणासाठीं हे पुत्ररूप तेज ( बाहेर वाढूं न देतां ) आपलेच ठिकाणीं संभाळून ठेवा. ( असें आपण केल्यास ) हे विप्रर्षे, मी आपल्या या पुत्राचें उत्तम साहाय्य करीन, मी यास रहावयास उत्तम स्थळ देईन व अमृततुल्य मधुर असें

भक्ष्यही देईन. हे वाक्यते, मी हें कांहीं तरी सांगत नाहीं.” त्यावर ऊर्वानें उत्तर केलें, “हे भगवन्, आपल्या सारख्यांनीं माझ्या पुत्राकडे इतपत लक्ष पोचविलें हा मजवर मोठा अनुग्रह आहे. यामुळें मी आपल्याला मोठा धन्य समजतो. आपण म्हणतां याप्रमाणें माझे पुत्राची सोय लाविल्यास सर्वांवरच मोठा अनुग्रह होणार आहे. आतां मी इतकेंच विचारून घेतों कीं, माझा हा पुत्र इष्ट अशा तारुण्यांत आला, आणि अन्नाविषयीं विशेष लालसा करूं लागला म्हणजे अशाचें समाधान होण्यास आपण त्याला कसल्या प्रकारचीं हव्यें देणार आहां ? शिवाय ह्या महातेजस्वी पुत्राला योग्य असें वसतिस्थान व त्याच्या दांडग्या शक्तीला पुरें पडेल असलें कोणतें अन्न आपण देणार आहां ? ”

ब्रह्मदेव झणाला, “हे विप्रर्षे, आपण जाणतांच कीं खुद्द माझे उत्पत्तिस्थान उदक हें आहे. याकरितां वडवा म्हणजे घोडीच्या आकाराचें ज्याचें मुख आहे असा जो उदकपति समुद्र तेथेंच आपल्या पुत्राला मी वसती देणार आहे. कारण, समुद्राचें मुखही जलमयच आहे. ( मुखार्शी भूमीवरील नद्यांचें मधुर उदक मिळतें. ) याकरितां हेंच स्थळ तुझ्या पुत्राला मी वसतीकरितां देणार व तेथील मधुर उदक हेंच तुझ्या पुत्राचें भक्ष्य होईल. कारण मी स्वतःही हेंच हविभक्षण करित त्याच ठिकाणीं सर्वदा वसती करित असतो. हे सुत्रता, जेव्हां युगांताचा काल येईल तेव्हां हा तुझा पुत्र आणि मी लोकांचा क्षय करण्याकरितां वारंवार सर्वत्र संचार करूं. हा जलभक्षण करणारा तुझा पुत्ररूपी अग्नि मी जो अशा रीतीनें राखून ठेवितों त्याचा हेतु असा आहे कीं, जेव्हां प्रलयकाल येईल त्या वेळीं

हाच अग्नि देव, असुर, राक्षस यांसह सर्व भूतांचा दाहकर्ता होईल.”

ब्रह्मदेवांनीं ऊर्व मुनीला सांगितलेली गोष्ट और्वालाही पटली, व त्या वेळीं त्यानें ब्रह्मदेवाला “बरे आहे” असें उत्तर करून आपल्या ज्वाला झांकून घेतल्या व आपलें सर्व दाहक तेज बापाचे ठिकाणीं ठेवून आपण समुद्रमुखांत शिरला.

असें होतांच ब्रह्मदेव व सर्व महर्षी और्व अग्नीचा प्रताप पूर्णपणें ओळखून ( त्यामुळें चित्तास समाधान पावून ) आपआपल्या मार्गास लागले. ऊर्वमुनीच्या तपापासून होणारा हा सर्व अद्भुत प्रकार पाहून हिरण्यकशिपु हा ऊर्वाला साष्टांग दंडवत घालून म्हणाला, “हे भगवन्, आतां येथें सर्व लोकांसमक्ष जो प्रकार घडला, तो खरोखरच अद्भुत होय. हे मुनिश्रेष्ठा, प्रत्यक्ष पितामह देखील आपल्या तपानें इतका संतुष्ट झाला आहे तर आपला प्रभाव कांय सांगावा? असो; मीं जर सदाचरणीं असेन तर, हे महाव्रता, मी तुझा आणि तुझ्या पुत्राचा एक नम्र सेवक आहे असें लेखावें. याकरितां मी आपणास शरण आलों असून मी सर्वदा आपल्याच आराधनांत तत्पर रहाणार आहे. मात्र याउपर जर मला कोठें ( युद्धांत ) खालीं बसण्याची पांळी आली, तर तो आपला पराजय, माझा नव्ह; असें मी समजेन. ”

ऊवमुनि उत्तर करितात, “हे हिरण्यकशिपो, तूं ज्या अर्थीं मला गुरु म्हणून मानितोस त्या अर्थीं मी स्वतःला मोठा धन्य व अनुगृहीत म्हणून समजतो. हे सुव्रता, तूं कांहीं काळजी करूं नको. माझे या तपःप्रभावानें तुला आतां भय म्हणून कसलें नाहीं असें समज. याशिवाय तुझ्या संरक्षणार्थ मी तुला माझ्या पुत्राने निर्माण केलेली ही अग्निमय माया देतो,

हिची मौज अशी आहे कीं, ही तरती ठेवण्याला कांहीं इंधन वगैरे लागत नसूनही इतकी जलाल असते कीं, प्रत्यक्ष अग्निही तिला स्पर्श करीत नाही. ही माया, तूं आणि तुझे वंशज यांच्या शत्रूंचा निग्रह करण्याचे कामीं तुझे हुकमांत राहील; आणि आपल्या ( तुझ्या ) पक्षाचा वचाव करून प्रतिपक्षाचा मात्र फडशा करील.”

और्व मुनीचे हे शब्द ऐकून तो दानवेश्वर हिरण्यकशिपु “ठीक आहे” असें म्हणून त्या मायेचा स्वीकार करून आणि मुनिश्रेष्ठाला प्रणाम करून आपण कृतार्थ झालों असें मनांत समजून मोठ्या आनंदानें स्वर्गास परत गेला.

वरुण म्हणाला, “हे देवहो, ही देवांनाही दुःसह झालेली जी मयासुरानें सोडलेली माया तिचा हा जो इतिहास मी सांगितला त्यावरून तुमचे ध्यानांत आलेंच असेल कीं, ही माया ऊर्व मुनीचा पुत्र जो और्वाग्नि त्यानें स्वतः निर्माण केली. आतां ज्यानें पूर्वी ही स्वतेजानें निर्माण केली त्यानेंच हिला त्याच वेळीं असा शाप देऊन ठेविला आहे कीं, हिरण्यकशिपु मरतांच ही निस्तेज होईल. यास्तव, माझे असे म्हणणें कीं, जर ही माया हाणून पाडून हे देवेंद्रा, आपणास सुखी करावें हें आपणास संमत असेल, तर आपण जलयोनी जो भगवान् निशाकर म्हणजे चंद्र तो माझे साहाय्य द्यावा म्हणजे मी त्याला बरोबर घेऊन व त्याजमधील याद म्हणजे जलजंतु यांचेही साहाय्य घेऊन या मायेला निश्चित हाणून पाडून.”

## अध्याय शेचाळिसावा.

### देवांची सरशी.

वैशंपायन सांगतात:—वरुणाची ही शिफारस ऐकून देवांचा उत्कर्ष चित्ताच्या इंद्राला फार आनंद झाला; आणि “ठीक आहे.”

असें वरुणाला आश्वासन देऊन अगोदर हिमा-  
युध जो सोम त्याला युद्धास जाण्याविषयी  
त्याने आज्ञा केली. इंद्र म्हणाला, “ हे  
सोमा, तू जा; आणि दैत्यांचा विनाश करून  
देवांचा विजय करण्याचे कामी या पाशधर  
वरुणाला साहाय्य कर. तुझे सामर्थ्य विन-  
तोड आहे, तू आकाशस्थ ज्योतींत श्रेष्ठांत  
श्रेष्ठ आहेस. जे कोणी रसवेत्ते आहेत ते  
लोकांतील सर्व रस त्वद्रूपच आहेत असे जाण-  
तात. तुझ्या मंडलांत ज्याप्रमाणे क्षयवृद्धि  
दिसून येईल त्याच धोरणाने सागरांत पाण्याची  
भरतीओहोटी चालते ( इतका तुझा जलावर  
अंमल आहे ). जगताला कालाची सोय लावून  
देऊन तू त्यांतील अहोरात्राचे चक्र फिरवि-  
तोस. हे सोमा, तुझ्या अंगावर जे हे शश-  
संज्ञक चिन्ह तू धारण करितोस ते चिन्ह  
म्हणजे पृथ्वीची अंतराळी तुजवर पडलेली  
छायाच होय. परंतु ही गोष्ट नक्षत्रांचे ज्यांस  
ज्ञान आहे असे देवही जाणत नाहीत. तू  
सूर्यमार्गाच्या वर असून इतर सर्व ज्योती-  
च्याही शिरोभागी आहेस. तू आपल्या तेजाने  
तम दूर घालवून सर्व जगताला प्रकाशित  
करितोस. तुझे किरण शुभ्र असून तुझे शरीर  
हिममय आहे. तू ज्योतींचा पालक असून  
तुला शशि अशी संज्ञा आहे. तूच मेघांचा  
कर्ता असून कालाचा प्राणही तूच आहेस. तू  
यज्ञांत पूज्य असून यज्ञांत लागणारा सोम-  
रसही प्रवाहरूपाने तूच आहेस. तू ओष-

धींचा स्वामी असून क्रियांचे उत्पत्तिस्थान तूच  
आहेस. तुझी उत्पत्ति जलापासून असून तुझ्या  
ठिकाणीं उष्णता कशी ती नसल्यामुळे तुला  
शीतांशु असें म्हणतात. तू अमृताचा आधार  
आहेस. तू मोठा चंचल असून तुझे वाहन  
शुभ्र आहे. लोकांत जे कोणी दिसण्यांत कांति-  
मान् किंवा सुंदर आहेत त्या सर्वांची कान्ति  
तूच आहेस; व सोमरसावर निर्वाह करणाऱ्या  
सोमदेवांचा सोम तूच आहेस. सर्व भूतमात्रांत  
तुझ्या इतके शांत तेज कोणाचेच नाही. तू  
नक्षत्रांचा अधिपति असून अंधकाराचा शत्रु  
तूच आहेस. याकरितां हा वरुण सैन्यासह  
जात आहे त्याबरोबर तू युद्धास जा; आणि  
ज्या आसुरी मायेच्या योगाने आपण युद्धांत  
भाजून निघतो आहो ती माया थंड करून टाक.”

सोम म्हणाला, “ हे जगत्पते, हे देवेन्द्रा,  
ज्या अर्थी मला आपण युद्धार्थ आज्ञा करितां  
त्या अर्थी मी असा कांहीं थंडीचा तडाका  
पाडितों कीं, त्या योगाने त्या दैत्यांची अग्नि-  
मय माया नाहीशीच होईल. तुम्ही आतां  
गंमतच पहा कीं, युद्धभूमीवर हे सर्वही दानव  
बर्फात गुरफटले जाऊन माझ्या अतिशय  
शीतलत्वांने पोळून निघतील व असे झाले  
म्हणजे त्याची मायाही लटकी पडेल व धुंदीही  
उतरेल. ”

वैशंपायन सांगतात:—सोमाचे असें बोलणें  
होतांच त्याच्या प्रेरणेनें दैत्यांच्या भोंवतीं  
बाष्पासह हिमाची वृष्टि इतकी दाट झाली  
कीं, तिनें ते दैत्य मेघगणांत सांपडल्याप्रमाणें  
गुरफटून गेले. मग त्या महारणांत तो पाश-  
धर वरुण व शुभ्रांशुधर चंद्र हे अनुक्रमें  
पाशघात व हिमपात यांच्या योगाने दानवांचा  
संहार करित चालले. पाशधर वरुण व जल-  
धर चंद्र हे दोघेही जलाधिपच. हे खवळ-

१ सर्व आकाशस्थ ज्योती यांचे जल हे पोषक आहे,  
व जलाचा उगम चंद्र हा आहे. या दृष्टीनें चंद्र हा  
सूर्यापेक्षाही श्रेष्ठ आहे. हल्लींची नेवळार हैपायसिद्धी  
ज्योती बाष्पमय असेच सांगते.

२ छायाहि भूमेःशशिनो मल्ले नारोपिता शुद्धिमसः  
प्रजाभिः ( रघुवंश—कालिदास ).

३ शश म्हणजे ससा त्याच्या आकाराचे छायारूप  
चिन्ह ज्याच्या अंगावर आहे तो.

१ बर्फाचे अति गरमपानेही हातास चटकाच वसतो.



लेल्या महासागराप्रमाणे जलवर्षाव करीत युद्धभूमीवर संचार करू लागले. त्या दोघांनी ते दैत्यसैन्य पाण्याच्या पुरांत बुडविले असता ते युगांतीच्या मेघांनी केलेल्या जलप्रलयांत सांपडले की काय असे दिसत होते. ते दोघे देव म्हणजे चंद्र व वरुण हे अनुक्रमे आपले पाश व किरण यांच्या योगाने दैत्यांनी निर्माण केलेल्या मायेचा पाडाव करिते झाले. चंद्राच्या शीतजलाने पोळल्यामुळे ( गारठून गेल्यामुळे ) व वरुणाच्या पाशाने जखडल्यामुळे ते दैत्य शिखर उडलेल्या पर्वताप्रमाणे त्या रणांत अचळ बसले. शीत किरणांच्या तडाक्यामुळे थंडीने मेहरून जाऊन आणि सर्वांग हिमाने व्याप्त होऊन ते विझलेल्या निखान्यांप्रमाणे निरुपयोगी पडून राहिले. त्या वेळी दैत्यांची निस्तेज झालेली विचित्र विमाने आकाशांत खालीवर खालीवर करू लागली. इतक्यांत मायावी दानव जो मयासुर त्याने आपली दैत्यमंडळी पाशधराने जखडली असून चंद्राने हिमांत बुडवून टाकिली आहे असे पाहिले; आणि त्या दानवश्रेष्ठ मयाने आपला पुत्र जो क्रौंच त्याने निर्माण केलेली जी अति विस्तृत पर्वतरूपिणी माया ती देवमंडळीवर सोडिली. ही माया पर्वतमय असल्यामुळे तिचे ठिकाणी सर्वत्र शिलासमूह असून गंड शिलांचे योगाने ती हंसतेच आहे की काय असे भासत होते. तिची शिखरे वृक्षांनी भरून गेली होती आणि तिजवरील गुहांत झाडी वाढली होती. त्याचप्रमाणे तीत सिंह, व्याघ्र व हत्ती यांची गर्दी होऊन राहिली होती; व सिंहव्याघ्रगजादिकांच्या कळपांचे नायकांमुळे ती मोठी प्रसन्न दिसत होती. शिकारीचे हरण तीत विपुल असून तिजवरील वृक्ष वायूने गदगद हालत होते. अशा त्या पर्वतरूपी मायेचा प्रयोग करितांच तिज-

मधून शिलांचा वर्षाव होऊन त्यापासून बारीक-बारीक धोंडे देवमंडळीच्या अंगावर तडातड बसू लागले. तसे मोठमोठे वृक्ष तुटून अंगावर कोसळू लागले. या प्रकारे त्या मयाने त्या देवमंडळीला सडकून काढून आपली दावनमंडळी सजीव केली. त्या वेळी या पार्वतीमायेपुढे पूर्वी चंद्र व वरुण यांनी निर्माण केलेल्या दोन्हीही माया लोप पावल्या. लोखंडासारख्या कठीण अशा दगडांचा त्या रणांत देवमंडळीवर वर्षाव सुरू राहिल्याने पृथ्वी तिजवर सर्वभर पर्वत उभे राहिल्याप्रमाणे दगडांच्या राशींनी जाण्यायेण्यास विकट व वृक्ष आणि पर्वत यांनी भरून गेलेली अशी दिसू लागली. मग त्या देवमंडळीत ज्याला दगडाचे तडाके बसले नाहीत किंवा ज्याच्या अंगावर एखादी शिळा कोसळली नाही, किंवा वृक्ष आडवा आल्याने जो अडला नाही, असा एकही देव शिलक राहिला नाही. अखेर एकगदा धारणकर्ता विष्णू-खेरीज बाकीचे सर्वही देवसैन्य धनुष्ये तुटून जाऊन व आयुधे मोडून पडून सर्वथा निष्प्रयत्न होऊन बसले. मात्र तो समर्थ श्रीपति गदाधारी श्रीविष्णु युद्धाच्या रगाड्यांत असतांही लवमात्र भय पावला नाही; व त्या जगत्स्वामीची सहनशक्ति अलौकिक असल्यामुळे ( तो दैत्यांचे चेष्टेने ) रागावलाही नाही. तो मेघश्याम-कान्ति जनार्दन याला प्रत्येक गोष्टीचे कालज्ञान असल्यामुळे, व देव व असुर यांची कुस्ती कशी काय होते हे पाहावयाचा हेतु असल्यामुळे तो आपल्या कर्तबगारीची योग्य वेळ येई तोपर्यंत थांबला होता.

आतां वेळ येतांच ती मयासुराने सोडिलेली अतिदीर्घ पार्वती माया दूर करण्यासाठी त्या भगवंताने अग्नि व वायु यांस आज्ञा केली. भगवंताच्या शब्दाने प्रेरणा होतांच ते अग्नि व वायु परस्परसाहाय्याने अतिशय वाढून त्या

पार्वती मायेला दूर सारते झाले. कारण, ते उभयही त्या रणामध्ये अतिशय वाढून शत्रूंना ज्या वेळी भोंवऱ्यांत घालू लागले त्या वेळी त्या पार्वती मायेची जळून राख झाली; आणि अशा रीतीने ती माया नाश पावली. कुठे वायूचे साहाय्याला अग्नि आणि कुठे अग्नीच्या साहाय्याला वायु, याप्रमाणे प्रकार होऊन त्यांनीं प्रलयकालीं कोपलेल्या अग्नि-वायू-प्रमाणे ती दैत्यसेना केव्हांच भाजून टाकिली. त्या दानव-सैन्यांत त्या अनलअनिलांच्या (अग्निवायूंच्या) जोडीने मोठी मौज मांडिली. कोठेही वायु गेला कीं, त्याच्या पाठोपाठ अग्नि धांवत जाई. कांहीं दानव होरपळून खाली पडू लागले, कांहीं वर उसळू लागले, व अखेरीस भस्म होऊन सर्व नाहीसे झाले; आणि याप्रमाणे अग्नीने आपली कामगिरी बजावली. त्याचप्रमाणे वायूने सर्वभर वाकटळ उठवून दैत्यांचीं विमाने उलथीं पालथीं करून टाकिलीं, व या प्रकारे त्या दानवी मायेचा अंमल सर्वथा दूर केला. त्या वेळीं गदाधर श्रीविष्णूची स्तुती होऊ लागली. जिकडून तिकडून “शाबास शाबास! दैत्यांना लटकें पाडून, त्रैलोक्याला बंधांतून सोडून आपण आनंद दिलात त्या अर्थी, हे विष्णो, आपली शाबास आहे, शाबास आहे,” असा ध्वनी कार्नी येऊ लागला.

याप्रमाणे सहस्राक्ष इंद्राचा जय व मया-सुराचा पराजय होतांच सर्व दिशा प्रसन्न झाल्या, धर्मकार्ये प्रसार पावू लागलीं, चंद्राचा मार्ग खुला झाला, सूर्यही क्रान्तिवृत्तावर आला, प्रजाजन आपआपल्या पूर्वस्थितीवर आले, व लोक सुरळीतपणे सदाचाराने वागू लागले, मृत्यु आपली मर्यादा उलंघीनासा झाला (अकालमृत्यु दूर गेला), अशीला आहुती मिळू लागली, देवांना यज्ञांत हविर्भाग मिळू लागून ते यजमानांना स्वर्गप्राप्तीची खूण

दाखवू लागले; सर्वही दिक्पाल आपआपल्या दिशांचे ठिकाणीं राहून निर्भयपणे लोकांचे पालन करू लागले; तपोनिष्ठ शुद्धवृत्तीचे जे लोक होते त्यांचा उत्कर्ष होऊन दुष्टकर्मी लोकांचा नायनाट झाला. देवपक्ष आनंदीत होऊन दैत्यपक्ष खेद करीत खाली बसला, धर्माला जोर येऊन तो तीन पायांवर चालू लागला व अधर्म लुला पडून एकच पायावर खरडत बसला, मोक्षाचे महाद्वार खुले झाले, व नीतीचे मार्ग स्थापित होऊन जगांतील लोक आपआपले धर्माप्रमाणे वर्णाश्रमाचे पालन करू लागले, राजेलोक मोठे तेजस्वी होऊन प्रजेचे यथान्याय रक्षण करू लागले, देवादि-कांची लोक स्तोत्रे गाऊ लागले, लोकांतील पापप्रवृत्ति कमी होऊन दारुण अज्ञानरूपी अंधकार नष्ट झाला. याप्रमाणे त्या अग्नि आणि वायूच्या युद्धाचा परिणाम लोकांना सुखकर झाला, त्यांच्या जयाच्या योगाने लोकांवरचीं संकटे दूर झालीं, व लोकही प्रेमाने त्या उभयतांचा जयजयकार वर्णू लागले.

इकडे दैत्यांना अग्निवायूंपासून मोठे अरिष्ट प्राप्त झालेले ऐकून त्यांच्या रक्षणार्थ सुप्रसिद्ध कालनेमी नांवाचा दानव रणभूमीवर प्रकट झाला. त्याच्या मस्तकावरिल मुकुट सूर्याप्रमाणे देदीप्यमान होता, त्याच्या अंगावरिल अलंकार व बाहुभूषणे शब्द करीत होती. तो मंदराचलाप्रमाणे विष्पाड असून रुप्याने खचला होता. त्याला शंभर मस्तके, शंभर तोंडे व शंभर बाहु असून शंभरही हातांत धेतलेलीं आयुधे घेऊन तो उभा राहिला होता. त्या वेळीं तो एखाद्या शंभर शिखरांच्या पर्वताप्रमाणे शोभत होता. तो ऊष्णकालीं वनांत भडकत चाललेल्या अग्नीप्रमाणे जाज्वल्य दिसत होता; त्याचे डोईचे केश धुरकट रंगाचे असून त्याची दाढी हिरवट

होती; व त्याच्या तोंडांतील खालचा जबडा लांब लांब दांताडांनीं खचून गेला होता. त्याचें शरीर अति विशाल असून त्रैलोक्यामधील अंतर भरून काढण्याइतकें वाढण्याजोगें होतें. तो आकाशाची मंडपी हातावर सहज तोलून धरण्याइतका समर्थ होता; व मोठमोठाले पर्वत लाथेनें उडवून देण्याइतकी त्याची अचाट शक्ति होती. पर्जन्यासकट मोठमोठाले मेघ तो सहज फुंकारनें उडवून देत असे; त्याचे डोळे अतिदीर्घ, तिरळे आणि लालगुंज असे असत. त्याचें तेज केवळ इंद्राप्रमाणें होतें; तो रणभूमीवर आला तो देवांना धमकावीत आणि जाळूं पाहातच आला. त्यानें दाही दिशा झांकून टाकिल्या. प्रलयकालीं खाण्यासाठीं हापापलेल्या गुर्मीदार मुत्यूप्रमाणें तो भयंकर दिसत होता; त्या धिप्पाड राक्षसानें आपला पुष्पालंकार घातलेला व लांब सडक बोटांचा व ज्यांतील हातमोजा किंचित् उचलला गेला आहे व ज्याचा तल अतिसुंदर आहे असा उजवा हात उगारून देवांनीं मारून टाकिलेल्या दानवांना “ उठा, उठा ” म्हणून इषारा दिला. शत्रूंना केवळ काळासारखा अशा त्या कालनेमीला रणभूमीवर पाहतांच देवांची भयानें गाळणच उडाली. तो कालनेमी जेव्हां त्या समरांत लांबलांब देंगा टाकूं लागला तेव्हां वामनावतारीं तीन पावलांत भूमी आटणारा हा परमात्मा त्रिविक्रमच चालला आहे कीं काय असें वाटून लोक त्याच्याकडे साश्चर्य पाहूं लागले. त्यानें आपलें पहिलें पाऊल उचलितोच उसळणाऱ्या वाऱ्यानें आकाश भरून गेलें, आणि सर्व देवतांना भयभीत करीत तो युद्धभूमीवर फिरूं लागला. मयासुराला बरोबर घेऊन तो कालनेमी रणांत फिरत असतां विष्णुसहित चालणाऱ्या इंद्राचा भास झाला, व कालाप्रमाणें भयंकर तो

कालनेमी आपणावर चाल करून येतोसें पाहून इंद्रप्रभृति सर्वही देवगण भयानें विव्हाल झाले.

## अध्याय सत्तेचाळिसावा.

—:०:—

### कालनेमीचा पराक्रम.

वैशंपायन सांगतात:—आपले ज्ञातिबंधु जे दानव त्यांना आनंदित करण्याकरितां महातेजस्वी जो कालनेमी असुर तो ग्रीष्म ऋतूच्या अंती ज्याप्रमाणें मेघसमूह वाढत जातो त्याप्रमाणें त्रैलोक्यभर वाढूं लागला. याप्रमाणें कालनेमी हा जेव्हां सर्वत्र त्रैलोक्यभर पसरला असें आढळून आले, तेव्हां त्या दानवमंडळींतील जे मुख्य मुख्य होते ते अत्युत्तम अमृत तोंडीं लागले असतां जसे ( मेलेले मनुष्यही ) उठून उभे राहातात, त्याप्रमाणें यापूर्वीं जरी थकून भागून व निराश होऊन मट्कन् खालीं बसलेले होते, तरी आतां, ते सर्व श्रम विसरून हुषारीनें टप्पिशीं उठून युद्धार्थ उभे राहिले; आणि या तारकामय संग्रामांत आपलाच जय व्हावा अशी सतत ज्यांची इच्छा होती ते मयासुर आणि तारासुरप्रभृति दानव जे हा वेळपर्यंत भेदरून जाऊन मट्ट बसले होते ते निर्धास्तपणें युद्धभूमीवर उभे राहून युद्धोत्कंठेनें चमकूं लागले; व कालनेमीला पाहून त्यांना अंतर्धामी इतकें प्रेम वाटलें कीं, त्या प्रेमभरांत ते निःशंकपणें वारंवार अस्त्रें सोडीत व व्यूहांतून इकडे तिकडे धांवत. त्याचप्रमाणें मयासुराचे हाताखालीं जे कोणी म्होरके वीर होते तेही सर्व शंका सोडून युद्धार्थ उभे राहिले. याप्रमाणें मय, तार, वराह, शूर हयग्रीव, विप्रचिंतीचा पुत्र श्वेत, खर वलंब हे दोघे, बलीचा पुत्र अरिष्ट, तसेंच किशोर व उष्ट्र हे दोघे, देवतुल्य स्वर्भानु व वक्रयोधि नांवाचा महासुर; हे सर्वही मोठे अस्त्रवेत्ते, तपोनिष्ठ व कार्य-

कुशल असे असुर जमून सर्वश्रेष्ठ जो कालनेमी त्याला साथ करण्यास गेले. त्याच्या साहाय्य ते हातीं जंगी जंगी गदा, चक्रे, फरश, पर्वत-प्राय शिळा, पर्वताचे तुटके कडे, पट्टे, गोफणी, भाले, तोफा, सोटे, बड्या बड्या तोफा, कालदंडासारखीं मुसळें, फेंकण्या-जोगे मोगरे, युगें, यंत्रें, मोकळ्या व तोंडें शेवटलेल्या अर्गळा, पाश, प्राश, जिभळ्या चाटणारे साप, धांवणारे बाण, वज्रें, पहारा, झगझगीत तोमर, नंग्या तरवारी, पाजळून झक केलेले तीव्र शूल, इत्यादि आयुधें घेऊन मोठ्या हुरूपानें आपल्या खंभ, विस्तीर्ण व पुष्ट अशा बाहुंच्या बलासह सज्ज झाले. याप्रमाणें झगझगीत अस्त्ररूपी विजा जीत चमकून राहिल्या आहेत अशी ती दैत्यचमु वर्षाकालीं नक्षत्र लुप्त झालेल्या आणि मेघांनीं आच्छादिलेल्या द्यौ- ( आकाशा ) प्रमाणें शोभूं लागली.

इकडे इंद्राच्या हाताखालची देवांची सेनाही चंद्र आणि सूर्य यांच्या शीतोष्ण तेजांनीं शोभत होती. प्रत्यक्ष वायूच तिच्या वेगस्थानीं होता. सोमामुळें ती सौम्य होतीच. तारागणांच्या पताका फडकत होत्या; मेघरूपी वस्त्र तिला गुरफटलें होतें; ग्रह व नक्षत्ररूपानें ती हास्य करित होती; यम, इंद्र, कुबेर आणि बुद्धिमान् वरुण हे तिचे रखवालदार होते, व यक्षगंधर्व हेही तींत पुष्कळ होते. तिच्यांत अग्नि आणि वायु हे चेतून राहिले होते. परमात्मा नारायण तिचा सर्वस्वी आधार होता. शिवाय तिच्यांत अस्त्रांचीही रेलचेल होती. यामुळें व तिच्या अफाटपणामुळें ती दिव्य देवसेना समुद्राप्रमाणें भयंकर दिसत होती. अशा या दोन अवाढव्य सेनांचा जेव्हां युद्धार्थ संयोग झाला, तेव्हां युगांतीं होणाऱ्या द्यावा-पृथ्वीच्या संयोगाचा भास होऊं लागला. देव व दानव यांची ज्यांत एकच गर्दी उसळून गेली

आहे, असें तें युद्ध फारच घनघोर झालें. एका पक्षाला विनय आणि क्षमा, आणि दुसऱ्या पक्षाला पराक्रम व दर्प हीं दिसून येत होती. तीं जंगी सैन्यें घेऊन जेव्हां ते भयंकर देव व दैत्य एकमेकांवर चढ करून जावयास निघाले, त्या वेळीं पूर्व-पश्चिम समुद्रांच्या योगानें खवळलेल्या मेघांप्रमाणें ते दिसूं लागले. पर्वतावरील वनांत फुलं फुललीं असतां हत्ती जसे त्या वनांतून मौजेनें हिंडत असतात, त्याप्रमाणें त्या चित्रविचित्र सैन्यांतून ते देव व दानव मोठ्या आनंदानें फिरत होते. मग उभय-तांनीं नगारे बडविले व अनेक शंख फुंकले. त्यांचा शब्द एवढा तुमुल झाला कीं, त्यामुळें आकाश, पृथ्वी व दशदिशाही भरून गेल्या. धनुष्यांच्या दोऱ्यांचे हातावर होणारे फट्-फट् आवाज, शिवाय धनुष्यांच्या कांबिटांचे लवतांना होणारे कुंकुयू आवाज आणि हुंदुभीचे स्वर यांच्या कलहोळांत दैत्यांच्या आरोळ्या लपून गेल्या. मग उभयपक्षांकडील धीर युद्धोत्कण्ठेनें उतावीळ होऊन एकमेकांवर तुटून पडले; व द्वंद्वयुद्धांत शिरून कोणी कोणाला खाली पाडिलें, कोणी कोणाचे हात मोडले. देवांनीं त्या वेळीं भयंकर वज्रें व उत्तम पोलादी परीघ व तीस तीस अंगुळें लांबीच्या तरवारी शत्रूवर फेंकिल्या; दानवांनीं भल्या भल्या गदा फेंकिल्या, गदेच्या आघातानें अंगें चुरडून व बाणांनीं छिन्नभिन्न होऊन कोणी सर्वभर उलथेपालथे पडले, व कोणी तशांतच अस्त्रप्रयोग करित होते. नंतर ते दोघेही रागाच्या आवेशांत आपलीं शीघ्रगामी विमानें यांसह एकमेकांशीं भिडले. कोणी समोरा-समोर तोंड देऊं लागले, कोणी तोंड फिरवून माघार घेऊं लागले, रथी रथ्यांना अडवूं लागले, व पायदळ लोक पायदळाला अडवूं लागले. त्या रड्यांत रथांचा जो घडघड शब्द

उठला, तो आकाशांत परस्परांवर आदळणाऱ्या मेघांच्या शब्दाप्रमाणें भासला. कोणी रथांचा चुराडा केला, कोणी रथाखालीं चुरडून गेले, कांहींचे रथ अशा चेंचार्टीत सांपडले कीं, त्यांना फिरावयास वाव मिळना. ते मस्तीत आलेले उभयपक्षीय वीर उंच उंच हात उडवून ढालतरवारींनीं एकमेकांशीं भिडूं लागले. त्या वेळीं त्यांच्या अंगदादि भूषणांचे खडाखड आवाज होऊं लागले. कांहींजण अस्त्रांनीं छिन्नभिन्न होऊन वर्षाकालीं जल स्रवणाऱ्या मेघाप्रमाणें रुधिर स्रवूं लागले. ती देवदानवांची मारामारी फारच घनघोर झाली. खालींवर फेंकलेल्या गदांनीं व एकमेकांवर आदळणाऱ्या शस्त्रांनीं तें अगदीं रणमैदान भरून गेलें होतें. तें युद्ध म्हणजे एक तऱ्हेचें दुर्दिनच होय. कारण त्यांत ते धिप्पाड दैत्य हेच मोठमोठाले ढग उसळले होते; देवांचीं तेजस्वी आयुधें याच विजा लवून राहिल्या होत्या; व उभयसैन्यांची बाणवृष्टी हाच पर्जन्य पडत होता.

अशांत महादानव जो कालनेमी तो रागावून एकाएकीं समुद्राच्या ओघामुळें पुष्ट झालेल्या मेघाप्रमाणें वाढला. तो इतका कीं, विद्युद्रूपी ज्यांच्या गळ्यांत पुष्पमाळा हालत आहेत व प्रदीप्त अशा अशनींचा ज्यांचेपासून वर्षाव होत आहे, व जे पर्वतश्रृंगांप्रमाणें धिप्पाड आहेत, अशा मेघांचा त्याच्या शरीरस्पर्शानें चुराडा झाला. तो कालनेमी ज्या वेळीं क्रोधानें फूं फूं करूं लागला त्या वेळीं रागानें मोडलेल्या त्याच्या भृकुटीतून घर्माच्या धारा लागून मुखांतून निश्वासरूपानें अग्नीच्या ठिणभ्या घेऊन निघणाऱ्या ज्वाळा बाहेर पडूं लागल्या. अशांत त्याचे ते असंख्य बाहु अंतरिक्षांत उभे, आडवे, तिरपे असे सर्वभर पसरले. तें पाहून

आ पसरून जिभाळ्या चाटणारे हे काळेकुळकुळीत सापच फिरतात कीं काय असें वाटलें. त्यानें आपल्या अनेक हातांत धनुष्यें, गदा व अनेक दिव्य अस्त्रें घेऊन आकाश भरून टाकिलें असतां, तें पर्वतांच्या तुंग शिखरांनीं व्याप्त झालें कीं काय असें दिसूं लागलें. अंगावरील वस्त्र वायु फडकवीत आहे, अशा स्थितींत तो रणभूमीवर उभा असतां सायंकाळच्या सूर्यप्रकाशानें ज्याचें शिखर व्याप्त झालें आहे अशा दिव्य मेरुपर्वताप्रमाणें दिसूं लागला. इंद्र ज्याप्रमाणें आपल्या वज्रानें महान् पर्वत छेदून खालीं पाडतो, त्याप्रमाणें त्या कालनेमीनें आपल्या मांड्यांच्या घसक्यानें पर्वतांचीं श्रृंगें व मोठमोठाले वृक्ष उपटून घेऊन त्याच्या साहाय्यानें देव मंडळी हाणून पाडिली. आयुधाची गोष्ट वेगळीच, पण त्या असुरानें शस्त्रांप्रमाणें कर्कश अशा आपल्या केवळ बाहुंनीं देवमंडळीचीं मस्तकें व वक्षस्थळें इतकीं छिन्नभिन्न केलीं कीं, देवांना जागचें हालवेना. याशिवाय यक्ष, गंधर्व व उरग यांतील मुख्यांना त्यानें नुसत्या बुक्क्यांनीं बुकलून व्याकूळ केलें, व त्यांची फळीं फोडून टाकिली. देव कांहीं कमी खटपटी नव्हते; तथापि, त्या कालनेमीची दहशत त्यांच्या मनांत इतकी बसली कीं, तेथें त्यांना काय करावें तें सुचेनासें झालें. ऐरावतावर बसलेला एवढा सहस्रनेत्र इंद्र पण तोही कालनेमीनें आपल्या शरजालांनीं असा जखडून टाकिला कीं त्याचें पाऊल पुढें पडेना. मोठा पाशधारी वरुण, पण त्याचेही त्यानें पाश हिसकावून घेऊन त्याला निर्जल समुद्राप्रमाणें कोरडा पाडून किंवा निर्जल मेघाप्रमाणें फिका पाडून रणांत मट्ट बसविलें. देवांचा खजिनदार जो लोकपाल कुबेर त्याला त्या असुरानें कालस्वरूपी बडग्यांच्या मारानें द्रव्य वांटण्याचें थांबविलें, व त्यामुळें तो कुबेर रडूं लागला.

१ पावसाळ्यांत ज्या दिवशीं सूर्यदर्शन होत नाही त्या दिवसाला दुर्दिन म्हणतात.

यम म्हणजे सर्वांचे प्राण हरण करणारा व दंडानें ज्याला त्याला मारणारा पण अशालाही त्या कालनेमीने मृतप्राय करून सोडून दक्षिण दिशेला पळवून लाविलें. याप्रमाणें या चारही दिशांच्या इंद्रप्रभृति पालकांना उखडून लावून त्याने त्या चौघांची कामगिरी आपलेकडे घेतली व आपल्या एका देहाचे चार देह करून ते चतुर्दिशेला स्थापित केले. नंतर स्वर्भानूने दाखविलेल्या मार्गानें नक्षत्रमार्गांत जाऊन त्याने चंद्राचें तेज व त्याचा प्रांतही हरण केला. (तो एवढेच करून राहिला नाही, त्यानें खुद्द चंद्रालाही स्वर्गद्वारांतून हाकून लाविलें व सूर्यालाही त्याचा अयनमार्ग, त्याचा एकूण प्रांत व त्याचें दिनकर्तृत्व हिरावून घेऊन स्वर्गांतून काढून दिलें. अग्नि हा देवांच्यां मुखीं आहे असें दृष्टीस पडतांच तो त्यानें आपल्या मुखांत आणून ठेविला. वायूला तर त्यानें तडाक्यासरसा जिंकून आपला ताबेदार करून सोडिलें. नद्यांवर त्यानें अशी कांहीं जबरदस्ती केली कीं, त्यांना समुद्राच्या मुखापासून ओढून आणून दांडगाईनें देहधारी करवून आपल्या आज्ञेंत ठेविलें. याचप्रमाणें आकाशांतील व भूमीवरील सर्व जल आपल्या बसांत आणून त्यानें पर्वतांचे सर्वत्र पहारे ठेवून पृथ्वीचें पालन चालविलें. एवंच, तो दैत्य सर्व लोकांना व्यापून टाकून व सर्व लोकांना भयावह होऊन प्रत्यक्ष ब्रह्मदेवाप्रमाणें स्वतःच सर्व-भूतपति होऊन बसला. सर्व लोकपाल व चंद्र, सूर्य, ग्रह, त्याप्रमाणेंच अग्नि व वायु या सर्वांच्या जागीं आपण एकटाच होऊन त्या युद्धभूमीवर शोभूं लागला. याप्रमाणें लोकांचे उद्भव व लय जेथें होतात अशा परमेष्ठीच्या ( ब्रह्मदेवाच्या ) जागीं

जाऊन जेव्हां हा कालनेमी बसला, तेव्हां देव ज्याप्रमाणें ब्रह्मदेवाची स्तुति करितात, त्याचप्रमाणें दैत्य मंडळीनें त्याची स्तुति आरंभिली.

## अध्याय अष्टेचाळिसावा.

—:०:—

कालनेमी व विष्णु यांचें युद्ध.

वैशंपायन सांगतात:—याप्रमाणें कालनेमीनें सर्व त्रैलोक्य आपलेंसें केलें तथापि त्या दानवाच्या विपरीत आचरणामुळें वेद, धर्म, क्षमा, सत्य व नारायणाचा आश्रय धरून रहाणारी देवी-लक्ष्मी—या पांच गोष्टी मात्र त्याला अनुकूल होतना. त्या जेव्हां हातीं येतना तेव्हां तो दैत्येंद्र रागास चढून विष्णूचेंच स्थान हिरावून घेण्याच्या हेतूनें थेट नारायणाजवळ येऊन ठेपला. तो हातीं शंख, चक्र, गदा घेऊन सुवर्णपंखांनीं युक्त व मस्तकावर तुरा धारण करणाऱ्या कश्यपपुत्र गरुडावर मुखांत बसलेला सजल मेघाप्रमाणें नील कान्तीचा व विद्युलतेप्रमाणें तेजस्वी पीतवस्त्र नेसलेला भगवान् नारायण दानवाच्या नाशाकरितां हातांत गरगर गदा फिरवीत असतां त्याचें दृष्टीस पडला. तो कधींही क्षुब्ध न होणारा विष्णु धिमेपणें दैत्यनाशार्थ रणांत उभा राहिलेला पाहून कालनेमी अतिक्षुब्ध होऊन म्हणाला, “ अरे, हाच आमचा पूर्वींच्या मोठमोठ्या दानवांचा व विशेषतः समुद्रवासी मधु व कैटभ यांचा शत्रु. यानेंच युद्धांत जुने जुने बहुत दानव मारिले असून हा युद्धांत पडला असतां आम्हां दैत्य मंडळीकडून याची कंडू कधींही जिरत नाही, असा लौकिक आहे. हा अस्त्र घेऊन युद्धांत शिरला म्हणजे फारच निर्दयपणानें वागतो व हा निर्लज्ज तर इतका आहे कीं, त्याला लहान पोराचीच उपमा.

१ येथें “ महत् ” असें एक नपुंसकीं पद सर्व धोष्यांत आहे त्याचा निर्वाह आम्हांस कळत नाही.

२ अग्निमुखाचे देवाः ( श्रुति ).

या निर्दयानें आम्हां दानवांच्या स्त्रियांचे केश कींही उतरिले ! अदितीच्या पुत्रांत याला विष्णु अशी संज्ञा आहे. एकंदर देवमंडळीत याला वैकुंठ असें क्षणतात. नागांमध्ये शेषही हाच आहे. ब्रह्मदेवाला स्वयंभु म्हणतात, पण त्याच्याही पूर्वीचा स्वयंभु हाच आहे. हा एकंदर देवांचा पालक असून आमच्या वाड्यावर सदा उठलेला आहे. याच्या रागाच्या तडाक्यांत यानेंच हिरण्यकशिपु मारला. याच्या आश्रयाच्या जोरावरच देवमंडळीला यज्ञांत अग्रस्थान मिळालें असून मोठमोठाल्या ऋषींनीं अंग, प्रधान व प्रायश्चित्त अशा तिन्ही होमांत दिलेलें तूप देवांना खावयास सांपडतें. देवांचे जेवढे म्हणून द्वेष्टे आहेत तेवढ्यांच्या मरणाचा कारण हाच. युद्धामध्ये आम्हां दानवांचीं कुळेंच्या कुळें धारातीर्थीं पडून याच्याच विराट तेजांत लीन झालीं. देवांकरितां लढाईची वेळ आली म्हणजे हा आपल्या जिवाकडेही पाहात नाही; आणि तेजानें केवळ सूर्याप्रमाणें असें आपलें सुदर्शन चक्र सोडितो. आजपर्यंत हा दैत्यांचा म्हणजे काळच ठरून गेला होता. परंतु, त्या दुष्टबुद्धीला म्हणावें कीं, आज मी तुझा काळाचाही काळ उभा राहिलों आहे. आतां तुझ्या मागील एकूण अपराधांचें उद्दे काढितों. योग फार चांगला आला कीं, असल्या या विष्णूची आज माझी प्रत्यक्षच गांठ पडली. आज म्हणावें, माझ्या बाणांच्या तडाक्यानें मऊ होऊन माझ्याच पायां पडशील. हा नारायण दानवांना एक मोठा बागुलबोवाच होऊन बसला आहे. अशाला आज मी युद्धांत संपविला म्हणजे माझी पूर्वजमंडळी खरोखरच माझ्यावर फुलें टाकितील. हें घेऊन एकदां खालीं आणिलें म्हणजे याच्या आश्रितांना तर मीं हां हां म्हणतां नाहींसे करीन. हा विष्णु मोठा लोंचट आहे. हा

जन्मोजन्मीं राक्षसांना युद्धांत त्रास देतो. वास्तविक हा मूर्तिरहित. तथापि, पूर्वीं जेव्हां एकार्णवमय सृष्टि झाली त्या वेळीं यानें पद्मनाभरूप घेऊन त्या घोर समुद्रांत ते मधु व कैटभ नांवांचे प्रचंड दानव आपल्या मांडीवर उचलून ठार केले. पुढें अर्धसिंह व अर्धनर असें द्वित्तरूप घेऊन या एकद्वयानेंच माझा बाप हिरण्यकशिपु मारिला. देवतांची माता म्हणून गाजलेली जी अदिति तिच्या पोटी हा शुभलक्षणी बाव्या जन्मास आला. बलीच्या यज्ञांत या वेद्यानें खुजा पोरानें रूप घेऊन तीन पावलें टाकून त्रिभुवन आटलें. इतकें करूनही याचें संपलें नाही. आज हा तारकसंग्राम निघतांच हा पुन्हा पुढें आलाच; पण येथें आतां माझ्याशीं गांठ आहे, तेव्हां याच्या देवमंडळीसह याची मी चटणी उडवितों.

याप्रमाणें तोंडास येईल तसें अगडतगड व बेताल बोलून नारायणाची निर्भर्त्सना करून त्यानें आपल्याशीं युद्धाला उठावें अशी तो इच्छा करूं लागला. तो श्रेष्ठ असुर इतकें टाकून बोलला तरी गदाधर कसा तो रागावला नाही. कारण, त्याचे अंगांत क्षमेचें अलौकिक बल होतें. तो केवळ हंसून म्हणाला, “हे दैत्या, अरे तुझी शक्ति किती आणि तुझा दर्प किती, हें न पाहातां उगाच रागास चढून तूं जर मर्यादा सोडून भलेंतेंच अयोग्य बोलतोस तर तूं आपल्याच दोषांनीं मेलाला आहेस; तुला निराळें मारायचें तें काय ? अरे, मी तुला तुच्छ समजतो. तूं मोठा शिरा ताणून बोललास म्हणून कोण डरतो ? रांडा थोड्या का गरजतात ? त्यांतलाच तूं. अरे, अशा ठिकाणीं मजसारखे पुरुष उभेही राहात नाहीत. हे दैत्या, थांब, तूं काळजी करूं नको. तुला येथें मजसमक्षच तुझ्या पूर्वींच्या वाडवाडिलांच्या वांट्याला पाठवितों. अरे, मूळ सृष्टिकर्त्यानें जी

धर्ममर्यादा घालून दिली आहे, ती उलंघिल्या-  
वर कुशल कोण राहील? तू आपली मर्यादा  
विसरून देवांचे अधिकार चालवू लागलास, त्या  
अर्थी आज तुला नाहीसा करून देवता पूर्वीप्रमाणे  
मी आपआपल्या स्थानावर स्थापीत करीन.”

वैशंपायन सांगतात:—श्रीवत्सलांच्छन  
धारण करणारा परमात्मा रणभूमीवर अशी  
वाक्ये बोलला असता त्या दानवाने त्याची  
थट्टा करून क्रोधाने आपले सास्त्र शतबाहु  
त्यावर उगारिले. हातीं नानाप्रकारचीं आयुधे  
घेऊन व क्रोधाने डोळे पहिल्यापेक्षां दुप्पट  
लाल करून त्याने श्रीविष्णूच्या छातीवर ताडन  
केले. त्याचा प्राव पडतांच मय, तारप्रभृति जे  
इतर दानव होते तेही पड्डे, तरवारी, वगैरे  
हत्यारे उचलून विष्णूवरच धावून पडले. या-  
प्रमाणे मोठमोठे बलाढ्य दैत्य सर्व प्रकारच्या  
आयुधांनी श्रीविष्णूला ताडन करीत असतांही  
तो रणांत तिळभर न चळतां एखाद्या पर्वता-  
प्रमाणे अकंप राहिला. मग त्या महासुर काल-  
नेमीने गरुडाशीं गांठ घातली. त्याने जीवाचे  
त्राण करून आपल्या सर्व बाहुंनीं एक भली  
थोरली भयंकर जळती गदा उचलून गरु-  
डाच्या कपाळावर घातली. दैत्याच्या या  
कृतीचे विष्णूला फारच नवल वाटले. डोक्यांत  
गदा बसतांच तो पक्षी घायाळ होऊन मट्ट-  
दिशीं पायांवर भूतळीं पडला. त्या वेळीं  
श्रीगोपालविष्णूला त्या घोर रणांत त्या दैत्य-  
गणांनीं मातीचीं ढेंकळें, शिळा, भाले, वज्रें,  
इत्यादि आयुधांनीं मारण्याचा सपाटा चाल-  
विला. त्या वेळीं श्रीविष्णूचे माथें फिरून त्याचे  
डोळ्यांपुढें अंधेरी आली. तेव्हां देवांनीं त्याची  
स्तुति आरंभिली. ती अशी:—“हे महाबाहो,  
हे मधुकैटभनाशना, आपण आपल्या फाळा-  
सारख्या नखांनीं हिरण्यकशिपूची छाती  
फोडिली, याचें स्मरण ठेवा आणि उठा.

आपला जयजयकार असो.” इत्यादि प्रकारें  
देवांनीं स्तुति केल्यावर रणांत श्रीविष्णु उठून  
उभा राहिला. इकडे तो पूर्वी मूर्च्छित झाला  
होता त्याच वेळीं तो संपला असें मानून त्या  
दानवाने आपला शंख फुंकला, व त्यामागून  
इतर असुरही लहान मोठे तीन प्रकारचे  
मृदंग वाजवून त्या तालावर नाचू लागले. एक-  
दरीत त्यानें तेथें एक मोठा उत्सवच मांडिला.

विष्णु शुद्धीवर येतांच आपला गरुड  
घायाळ झाला व आपलें स्वतःचेंही शरीर  
खराब झालें असें त्याचे दृष्टीस पडलें. त्या-  
बरोबर क्रोधाने डोळे लाल करून त्यानें आपलें  
सुदर्शन चक्र सरसाविलें. मग त्याचा वाहक  
गरुड व स्वतः तो या दोघांसह फार चव  
चढला, व श्रीविष्णूचे बाहु इतके वाढले कीं,  
त्यांच्या योगानें दाही दिशा व्यापून गेल्या;  
आणि केवळ आपल्या तेजानें चतुर्दश लोकांना  
आक्रांत करण्याचा हेतु मनांत धरून तो  
परमात्मा असा बेसुमार वाढला कीं, त्यानें  
धरणी आकाश व दशदिशाही भरून टाकिल्या.  
याप्रमाणें देवांना जय मिळवून देण्याच्या  
हेतूनें परमात्मा असा वाढलेला पाहून आका-  
शांत ऋषिगणांनीं गंधर्वांसह त्या मधुसूदनाचें  
स्तोत्र गाइलें. परमात्म्याचें तें विराट स्वरूप  
इतकें विशाल होतें कीं, त्याच्या किरीटांनें  
आकाश खरडलें जात होतें. त्याचें वस्त्र मेघ-  
मंडळाला घांसत होतें. त्याच्या बाहुंनीं दश-  
दिशा खवळल्या होत्या व पावलांनीं धरणी  
आच्छादिली होती. असलें जगड्वाळ रूप  
घेऊन त्यानें आपल्या हातीं जें सुदर्शन चक्र घेतलें  
त्याला सहस्र अन्या असून त्याचें तेज सहस्र-  
किरण सूर्याप्रमाणें फांकलें होतें. तें चक्र म्हणजे  
शत्रूंचा प्रत्यक्ष काळच होतें; व तें असें भय-  
प्रद असूनही आकारांत इतकें सुबक होतें कीं,  
त्याला सुदर्शन ( दिसण्यांत सुंदर ) असें तर



नांवच पडलें होतें. त्या चक्राला सोन्याची धांव बसविली असून त्याचा तुंबा हिऱ्याचा होता. आजपर्यंत मारिलेल्या असंख्य दैत्यांच्या मेद, मज्जा, अस्थि व रक्त यांनी लडबडून गेल्यामुळे तें भ्यासूर दिसत होतें. त्याच्या धांवेल्या सभोंवार तीक्ष्ण सुऱ्या बसविल्या असल्यामुळे त्याचा तडाका विनतोड बसे. सुऱ्या असून त्यावर फुलांच्या माळाही गुंफल्या होत्या; व तें एकवार हातून सोडिलें म्हणजे सोडणाऱ्याच्या मनांत असेल तेथें तेथें त्याच्या इच्छेप्रमाणें रूपें घेऊन जात असे. असलें तें अद्भुत चक्र स्वतः स्वयंभूनें अंगीच घडविलें होतें. त्याजकडे दृष्टि जातांच दुष्टांचा सहजच थरार होई. तशांत मोठमोठ्या ऋषींनीं आपल्या सर्व क्रोधाची त्यावर भारणी टाकिली होती. त्यामुळे त्याला नेहमीं युद्ध करण्याविषयीं उसळी आलेली असे. तें फेकतांच स्थावरजंगम जीवांना मूर्च्छा येत असे. युद्धकालीं त्याच्या कृपेनें मांस खाणारे पशुपक्षी फार संतुष्ट होत. असलें तें सूर्यसम तेजस्वी व अप्रतिम कर्म करणारें चक्र उगारून क्रोधानें लाल झालेला तो लक्ष्मीपति गदाधर आपल्या तेजानें दानवांचें सर्व तेज नाहीसें करून त्या चक्रानें त्या कालनेमीचे सर्व बाहु तोडिता झाला. तेव्हां त्या राक्षसाचीं तीं विक्राळवाणी शंभर तोंडें तोफेप्रमाणें गर्जन हंसूं लागलीं. तेव्हां हरीनें आपल्या सामर्थ्यानें व सुदर्शनाचे साह्यानें तीं तोंडेंही कापून काढिलीं. याप्रमाणें, बाहु व मस्तकेंही तुटून पडलीं. तथापि, तो दानव डगला नाही. फांद्यापल्लव कापून जाऊन एखादा थोटा वृक्ष ज्याप्रमाणें उभा असतो, त्याप्रमाणें तो मुंडकीं तुटून उरलेल्या धडानेच युद्धभूमीवर ठाम उभा होता. तेव्हां गरुडानें आपले मोठाले पंख पसरून व वायूप्रमाणें भरारी घेऊन आपल्या

छातीच्या धडाक्यानें त्या कालनेमीला आकाशांतून खाली पाडिलें. बाहु व मुख छाटिलेला त्याचा तो देह जेव्हां आकाशांतून धरणीवर पडला, त्या वेळीं धरणीतलालाही एक प्रकारची शोभा आली.

या प्रकारें हें दैत्यांचें धेंड जेव्हां धरणीवर आदळलें तेव्हां ऋषिमंडळीसहित सर्व देव “फार नामी, फार नामी” असें म्हणत विष्णूपाशीं जमून त्याची पूजा करूं लागले. कालनेमीची ही अवस्था झाल्यावर ज्यांचा मिळून त्या युद्धांत कांहीं पराक्रम दृष्टीस पडला होता त्यांची अवस्था अशी झाली कीं, ते परमात्म्याचे सर्वव्यापी बाहुंचे कचाट्यांत सांपडून त्यांची हालचालच बंद झाली. परमात्म्यानें त्यांपैकीं कित्येकांच्या शेंड्या आंवलिल्या; कित्येकांच्या नरड्या दाबिल्या; कित्येकांचीं मुस्कटे फोडिलीं; व कांहींना कमरेत गच्च आंवललें. शिवाय परमात्म्याच्या गदाचक्रांच्या तेजानें भाजून गेल्यानें कित्येक निःसत्त्व व निष्प्राण होऊन सर्वही अंगें लुलीं पडून गगनांतून धरणीतलावर कोसळले. याप्रमाणें सर्वही दैत्य मारिले गेले तेव्हां इंद्राला इष्ट ती गोष्ट आपल्या हातून पूर्ण झाली, हें पाहून तो गदाधर आपण कृतकार्य झालों. असें जाणून स्वस्थ बसला. इतक्यांत तो तारकानिमित्त आरंभिलेला घनघोर संग्राम उरकला असें पाहून गंधर्व, अप्सरा व ब्रह्मर्षि यांसह पितामह ब्रह्मदेव त्या स्थळीं येऊन त्या श्रीहरीची पूजा करून म्हणाला, “हे देवा, आपण आज या दैत्यांना मारून एक फारच मोठी कामगिरी उरकली. देवांना आतां कांटा म्हणून कसा तो ठेविला नाही. आपल्या या कृतीनें खरेंच आम्हां सर्वांचा फार फार संतोष झाला आहे. हे विष्णो, तूं जो हा प्रचंड कालनेमी असुर मारिलास

हैं कर्म तूंच एकटा करूं जाणस. तुज-  
वांचून याला रणांत पालथा घालणारा दुसरा  
कोणीच नाही. हा किती माजला होता म्हणून  
सांगूं ? यानें सचराचर लोक व सर्व देवगण हे  
पादाक्रांत करून बिचाऱ्या ऋषींचेही कांडात  
काढिलें. इतकेंच नव्हे, तर मलाही गुरकावण्या  
दाखवूं लागला, म्हणून मी म्हणतो कीं, तूं हा  
कालतुल्य कालनेमी पाडण्याचें जें अत्युग्र  
कर्म केलेंस त्यानें मी फार संतुष्ट झालों. तुझें  
बरें असो. आपण आतां चला स्वर्गास जाऊं.  
तेथें सर्व ब्रह्मर्षि सभा भरून तुझी वाट पाहात  
आहेत. हे वाचस्पते, तेथें मी व महर्षि मिळून  
तुझें यथाविधि पूजन करून दिव्य वाणीनें  
तुझें स्तोत्र गाणार आहों. मी जर खरें पुस-  
शील तर तुजवर इतका खूष झालों आहे  
कीं, तुला एखादा वर द्यावा असें माझे  
मनांत येतें; परंतु, यावद्द्वेत्यांना, त्याचप्रमाणें  
देवांनाही तूंच वर देणारा तेव्हां अशा वरद-  
श्रेष्ठाला मीं काय वर द्यावा ? आतां मी इत-  
केंच सुचवितों कीं, आपण त्रैलोक्यांतील सर्व  
कांटे काढून टाकिले आहेत, तेव्हां आतां हें  
त्रैलोक्याचें समृद्ध राज्य पुनरपि स्वहस्ते  
इंद्राच्या पदरांत घालावें. ”

या प्रकारें ब्रह्मदेवानें सुचवितांच सनातन  
परमात्मा इंद्रप्रभृति देवांस मंगल वाणीनें  
म्हणाला, “हे देवहो, तुम्ही जितके कोणी आज  
येथें जमलां असाल ते सर्व पुरंदराला पुढें  
करून आपलीं सर्वेद्रियें माझें वाक्य ऐकण्या-  
विषयीं सादर करून मीं काय म्हणतों तें ध्यानांत  
ध्या. आपण जो हा नुकताच संग्राम संपविला  
त्यांत इंद्रालाही भारी असे कालनेमिप्रमुख  
सर्वही असुर नाहीसे केले. मात्र या रड्यांतून  
दोघेच काय ते निसटले. एक दैत्यश्रेष्ठ वैरोचन  
(बलि) व दुसरा महाग्रह स्वर्भानु. (तथापि,  
त्यांची विशेष भीति नको). आतां तुम्हीं

पूर्ववत् आपआपल्या दिशांच्या ठिकाणीं  
अधिकारावर जावें. म्हणजे इंद्रानें पूर्वेस,  
वरुणानें पश्चिमेस, यमानें दक्षिणेस व कुबेरानें  
उत्तरेस. चंद्रमानें आपलीं सर्व नक्षत्रें घेऊन  
यथाकाल, यथायोग त्यांच्यांत संचार करावा.  
सूर्यानें दक्षिणोत्तर अयनें, संवत्सर  
व ऋतु यांची मालकी आपणाकडे घ्यावी.  
यज्ञांत सदस्यांनीं पूजन वगैरे करून आज्य-  
भाग सुरू करावेत. विप्रांनीं वेदांत सांगित-  
लेल्या रीतीनें अग्नीना आह्वान करावें. लोकांनीं  
पूर्ववत् बलिहोम देऊन देवांचें, वेदाध्ययन  
करून महर्षींचें व श्राद्ध करून पितरांचें  
तर्पण करावें. वायूनें आपल्या मार्गांनें वहावें,  
व गार्हपत्य, आहवनीय व दक्षिण या  
तिन्हीं रूपांनीं अग्नीनें प्रदीप्त व्हावें. ब्राह्मण,  
क्षत्रिय व वैश्य यांनीं आपआपल्या अंगच्या  
विशिष्ट गुणांनीं त्रैलोक्याची समृद्धि करावी.  
दीक्षा देण्यास योग्य असे जे ब्राह्मण असतील  
त्यांजकडून ऋतु आरंभवावे; व सत्रांत जे  
कोणी गुंतले असतील त्यांस त्यांच्या त्यांच्या  
योग्यतेप्रमाणें दक्षणा द्याव्या. सूर्यानें जनहृष्टीला  
आनंदवावें, सोमानें ओषधींच्या ठिकाणीं रस-  
परिपोष करावा व वायूनें प्राण्यांचे ठिकाणीं  
प्राणप्रवृत्ति करावी. एकंदर सर्वांनीं सौम्य व  
कल्याणकारक असें आचरण करून लोकांचा  
संतोष करावा. पर्जन्याच्या जलापासून उत्पन्न  
होणाऱ्या त्रैलोक्याच्या अन्नदात्या ज्या लहान-  
मोठ्या नद्या त्यांनीं पूर्वीप्रमाणेंच आप-  
आपल्या मानाप्रमाणेंच क्रमानें सागरा-  
कडे जावें. सर्व देवांनीं आतां दैत्यांपासून  
कशी ती भीति उरली नाही असें समजून  
स्वस्थपणें असावें. असो; तुम्हां सर्वांचें कल्याण  
होवो; मी आतां माझ्या सनातन ब्रह्मलोका-  
लाच जातो. जातां जातां एवढें सुचवून  
ठेवितों कीं, दानव किती झाले तरी मोठे हल-

कट व कपटी आहेत; तेव्हां एकांतांत, लोकांतांत आणि संग्रामांत तर विशेषतःच त्यांचा विश्वास म्हणून कसा तो मानूच नये. तुम्ही देवमंडळी पडलां सरळ व सौम्य मनाचे. तुम्हांला सदा उजू तो रस्ता दिसत असतो. पण, या दैत्यांचा निश्चय म्हणून कांहीं नाही. ते सदा छिद्र शोधीत असतात आणि सांपडतांच टोला हाणतात. याकरितां सदा सावध असा. मीही आपल्याकडून तुमचे-विषयीं जे सदा वैरबुद्धि बाळगितात असे जे दुष्ट दुराचारी असुर त्यांच्या बुद्धीला, हे देवहो, भूल घालून अधर्म हाच धर्म असें भासवीन. ( अर्थात् या योगानें ते बहुधा सहजच नाश पावतील. ) इतक्यांतूनही तुम्हांला अनावर असेंच भय दानवांपासून जर कधी उत्पन्न झालें तर मी स्वतः अंगीं येऊन तुम्हांला त्यांपासून निर्भय करीन. ( काळजी करूं नका. ) ”

वैशंपायन सांगतातः—याप्रमाणें देवमंडळीला सांगून सत्यपराक्रमी व महायशस्वी विष्णु ब्रह्मदेवासह ब्रह्मलोकास गेले. हे जनमेजया, तूं मला तारकासुराच्या युद्धांत दानव व विष्णु यांमध्ये काय काय मौजा झाल्या म्हणून विचारिलें होतेंस त्याचा हा वृत्तांत मी तुला सांगितला.

## अध्याय एकुणपन्नासावा.

—:०:—

### विष्णूसंबंधीं जनमेजयाचे प्रश्न.

जनमेजय विचारतोः—गताध्यायीं देवदेव जो कमलोद्भव ब्रह्मा त्यासह श्रीविष्णु ब्रह्मलोकास गेले ह्मणून आपण सांगितलें; तर तेथें जाऊन श्रीविष्णूनें काय केलें, व आदिदेव जो कमलयोनी ब्रह्मा त्यानें सर्व देवांनीं व विष्णूंनीं केलेल्या दैत्यवधाबद्दल त्यांचा योग्य सत्कार

केला असतांही पुनरपि त्यास ब्रह्मलोकीं नेलें याचा हेतु काय? ब्रह्मलोकांत श्रीविष्णु कोणत्या स्थानीं रहातात, तेथें कोणता योग धारण करून व कोणत्या नियमाचें पालन करीत ते भूतपति तेथें असतात? ते ब्रह्मलोकांत असतांना या सर्व विशाल जगतांत देव, असुर व मनुष्य यांना पूज्य अशी विपुल लक्ष्मी कोठून प्राप्त झाली? श्रीविष्णु ऊष्णकालाचे अखेरीस निजतात व वर्षाकालाच्या अखेरीस जाग होतात हें कसें? व ब्रह्मलोकीं राहून सर्व लोकांचा ते कार्यभार कसा वाहातात? हे विप्रेन्द्रा, त्या भगवंताचें तें दिव्य चरित यथातत्त्व सविस्तर तुझे मुखानें ऐकण्याची इच्छा आहे.

वैशंपायन सांगतातः—हे राजा, परमात्मा नारायण ब्रह्मलोकीं ब्रह्मदेवासह राहून कसा आनंदांत असतो, हें ऐकण्याचे पूर्वीं त्या भगवंताची प्रवृत्ति कशी आहे, हें सविस्तर ऐक. बाकी मी तरी त्याची प्रवृत्ति सांगण्यास समर्थ थोडाच आहे, कारण, ती इतकी सूक्ष्म आहे कीं, देवांनाही तिचा थांग लागत नाही; तथापि माझे ज्ञानाप्रमाणें मी तुला सांगतों, तें ऐक. हा भगवान् पटांत ज्याप्रमाणें तंतु त्याप्रमाणें पृथिव्यादि सर्व लोकांत आपणच आहे, व तंतूंत ज्याप्रमाणें पट त्याप्रमाणें त्रैलोक्यही याच्यांतच आहे. स्वर्गांतही हा देवरूप आहे आणि देवही याचे स्वरूपांत आहेत. पुष्कळ लोक याच्या अंताचा शोध लावण्याच्या खटपटींत आहेत. तथापि, त्याचा अंतपार त्यांस लागत नाही. या माधवाला मात्र सर्व लोकांचा पार माहीत आहे. असा हा देवांनाही अगम्य व मनुष्यांच्या इद्रियांना तर केवळ

१ ज्येष्ठ शु० एकादशीचें नांव “ योगिनी ” आषाढ शु० एकादशीचें नांव “ शयनी ” व कार्तिक शु० एकादशीचें नांव ‘ प्रबोधिनी ’ हीं कशीं सार्थ आहेत तें येथें कळतें.

अंधकारच ( अज्ञातच ) असा हा परमात्मा ब्रह्मलोकांत असतांना पूर्वी काय घडलें तें ऐक.

माणें सांगितल्याप्रमाणें ब्रह्मदेवाबरोबर ब्रह्मलोकीं गेल्यावर श्रीविष्णूनें प्रथम तें ब्रह्मदेवाचें स्थान मनःपूर्वक अवलोकन केलें. नंतर तेथें असणाऱ्या सर्व ऋषींना मंत्रपूर्वक अभिवादन केलें. तदुत्तर तेथें प्रातःकालीं महर्षि अग्नीचें हवन करीत होते असें पाहून त्या महातेजस्वी विष्णूनें आपलें स्नानसंध्यादि प्रातःकालचें कर्म उरकून अग्नीला वंदन केलें. त्या यज्ञमंडपांत महर्षि अग्नीला घृताहुतींनीं पूजित होते व अग्नि तो यज्ञाहुति प्राशन करीत होता. असें पाहून अग्निरूपानें आपणच हें प्राशन करीत आहों असें त्यानें पाहिलें. नंतर त्या अचित्यस्वरूप परमात्म्यानें वंद्य असे जे ब्रह्म-वर्चस्वी ऋषि त्यांना वंदन करून त्या सना-तन ब्रह्मलोकाला एक फेरी घातली. तों त्याला ब्रह्मर्षींनीं ज्यांच्या मस्तकावर “ चषाल ” कोरे चिन्हें बसविलीं आहेत असे शतशः यज्ञीय यूप त्याला आढळले. मग यज्ञभूर्मीतून फिरत अग्नीत घातलेल्या घृताचा वास घेत घेत व ब्राह्मणांच्या मुखांतून आलेले वेद श्रवण करीत करीत आणि यज्ञाच्या रूपानें सर्वजण आपलेंच आराधन करीत आहेत असें पाहात पाहात तो चालला. वाटेनें त्या यज्ञशालांतील देव, ऋषि व सदस्य हे बोटांत पवित्रकें घालून आणि हातांत अर्घ्यपाद्यादि पूजासामुग्री घेऊन उभे होते. हे राजा, देवांचें जें कांहीं वैभव आहे तें सर्व या जनार्दना-पासूनच व देवांपासूनच जें कांहीं कोणाला मिळ-तेंसें दिसतें तेंही सर्व या जनार्दनापासूनच. ज्ञाते लोक, ही सृष्टि अग्नीषोममय आहे असेंच समजतात. पण ही सृष्टि व तिला

व्यापणारे अग्नि आणि सोम हे तरी हा सना-तन विष्णुच होय. ज्याप्रमाणें दुधांतून दही होतें, आणि दद्यापासून तूप निघतें, त्याच-प्रमाणें ध्यानबलानें देहेंद्रियें लीन झालीं असतां अंतरदृष्टीला हा सर्व चराचर लोक जनार्द-नापासून निघाला आहे, असें व्यक्त दिसतें. या भूलोकामध्ये ज्याप्रमाणें चेतनव्याप्त जीं इंद्रियें व भूतें त्यांवरून परमात्म्याचे अस्ति-त्वाचें अनुमान होतें. त्याप्रमाणें देव, वेद व लोक यांपासून श्रीविष्णूचें ज्ञान होतें. ज्या-प्रमाणें या पृथ्वीवर देहधारी जीवांच्या इंद्रि-यांचा सर्वथा पंचमहाभूतांवर अवलंब दिसून येतो त्याप्रमाणेंच स्वर्गामध्ये देवांचें बल व ऐश्वर्य हीं श्रीविष्णूवर अवलंबून आहेत, असें समजतें. असा तो श्रीविष्णु यज्ञकर्त्यांना यज्ञाचें फल देणारा, सर्व पवित्रांचा पवित्र, सर्वतंत्र-स्वतंत्र, लोकांना वागविणारा व ज्या मंत्रस्वरूपाची योग्य स्तुति त्याच्याच मंत्रां-शिवाय होणें शक्य नाही, अशा त्या परमा-त्म्याला पाहून ऋषिगण स्वागत करून म्हणाले, “ हे सुरश्रेष्ठा, हे पद्मनाभा, हे महा-द्युते, हें आर्क्षीं तुझें यज्ञीय आतिथ्य करीत आहोंत; अर्थात्, याचा आपण मंत्ररूपानें स्वीकार करावा. आम्ही जें हें यज्ञानें पवित्र झालेलें पाद्य आणिलें आहे, असल्या पाद्याचें ग्रहण करण्याला तुजसारखाच पवित्र पुरुष योग्य होय. आम्हीं मंत्रद्वारा ज्याला अतिथी सम-जून यज्ञाचे ठिकाणीं नित्य आलास हें मानीत होतो, तो तूं आज खराखुराच आमचे दृष्टीस पडलास. हे विष्णो, तूं येथून सुद्धाला निवून जातांच आमच्या यज्ञक्रिया बंद पडल्या.

१ ही एक सुसळाच्या वदवीसारखी लांकडी बांगडी करून यज्ञस्तंभाचे तोडी बसविलेली असते.

१ या देहाला जिवंतपर्णी पंचमहाभूतांचा बहुधा नित्य संबंध राखावा लागतो; बाहेरचा वायु आंतल्याशीं संबद्ध होण्याचें क्षणभर बंद झाल्यास प्राण व्याकूळ होऊं लागतात. याचप्रमाणें इतर इंद्रियांचें.

कारण, विष्णूचे अविद्यमानांनी कोणतीही यज्ञीय क्रिया करण्याविषयी शास्त्राची आज्ञा नाही. यज्ञांतही दक्षिणा वगैरे देऊन तो सांग केला असताही त्याचे फळ तू देशील तेंच प्राप्त होतें. आज तू समक्षच पाहातो आहेस की, आम्ही तुझीच यज्ञरूपाने आराधना करीत आहों.

## अध्याय पन्नासावा.

—:०:—

### नारायणाश्रमवर्णन.

वैशंपायन सांगतात:—या प्रकारे त्या ऋषींनी पूजा केल्यावर तो ईश्वर श्रीहरी आपल्या ब्रह्मलोकान्तर्गत महापुरातन अशा दिव्य नारायणाश्रमांत शिरला. मग स्वतःच्याच नांवाने प्रख्यात असलेल्या त्या आश्रमांत शिरतांच भगवान् नारायणाने युद्धार्थ इतका वेळ हाती घेतलेलीं सर्व आयुधे एकीकडे ठेवून दिली. आणि नंतर सभासदांना व आदिदेव जो ब्रह्मदेव त्यालाही तेथे बोलाविले. आणि त्याला वंदन करून नंतर आपल्या त्या समुद्रतुल्य आल्याकडे दृष्टि फेंकिली. ते देवगणांनी व सनातन महर्षींनी अधिष्ठित असून प्रलयकालीन भेदाच्या अभिमानिनी देवताही तेथे होत्या. शिवाय तेथे नक्षत्रचक्र असून गडद अंधारही होता. व त्या आल्यावर देव किंवा असुर यांपैकी कोणाचाही पराक्रम चालत नव्हता; इतकेंच नव्हे, तर तेथे वायूचा रिघाव नव्हता; तसाच चंद्राचा न सूर्याचा. तो सर्व देश पद्मनाभाच्या केवळ अंगकान्तीनेच लल्लवत होता. असो; अशा त्या आल्यांत शिरतांच परमात्मा सहस्र मस्तकें व त्या सर्वांवर जटाभार ( लोककर्मवासनाजालरूपी ) धारण करून शयनावर पडला. पडतांच जिला लोकांच्या अंतःसमयाचे पूर्ण ज्ञान असून जी नयनप्रदेशी

फार खुलते अशी कालरूपिणी निद्रा त्या परमात्म्याजवळ तत्काल आली. तेव्हां निर्विकल्प समाधीची तयारी करून तो नियमशील श्रीहरी निस्ताप अशा दिव्य शयनावर निद्रा करिता झाला. तो निद्रिस्त होतांच ऋषिगणांसह देव जगाची पुनरुत्पत्ति व्हावी, हा हेतु मनांत धरून त्या महात्म्या प्रभूची उपासना करूं लागले. तो भगवान् निजला असतां सूर्याप्रमाणे तेजस्वी व ब्रह्मदेवाचे आद्यवसतीस्थान असें एक सुंदर कमल त्याच्या नाभीमध्यांतून उठून आले. या कमलाला सहस्र पाकळ्या असून त्याचा वर्ण फारच उंची होता. शिवाय, ते सुकुमार असून फारच शोभिवंत दिसत होतें. तो महामुनि परमात्मा निजल्या निजल्याच अखिल लोकांचे युगादि कालचक्र फिरवीत असतो. ते असे की, त्या त्या कल्पांतील जो ब्रह्मदेव असेल त्याचे स्वाधीन जीवांचे वासनामय तंतु करून त्याला कामांत साह्य करितो. तो निद्रिस्त असतां त्याच्या उघड्या मुखांतून चालणाऱ्या निःश्वासाबरोबर वाऱ्याने प्रजांच्या मालिकाच्या मालिका बाहेर येऊन खालींवर पडतात. मग ह्या रीतीने निर्माण झालेल्या प्राण्यांची ब्रह्मदेव स्वतः वेदांत घालून दिलेल्या रीतीप्रमाणे ब्राह्मणक्षत्रियादि चार वर्णरूपाने व्यवस्था लावितो. नंतर ते प्राणी आपआपल्या मार्गास लागतात. असा हा अविद्याशबलित जो श्रीविष्णूचा निद्रामय योग आहे, याच्या देखील सत्यस्वरूपाची कल्पना प्रत्यक्ष ब्रह्मदेवाला किंवा सनातन ब्रह्मऋषींनाही येत नाही. हे पितामहपुरःसर जे ब्रह्मर्षि यांना खरे बोलू जातां हा परमात्मा कोणत्या स्थली किंवा कोणत्या काली निजतो किंवा न निजतां मध्येच उठून आसनावर बसून व्यवहार करितो, याचा कांहींच पत्ता लागत नाही. त्याचप्रमाणे या देहांत तरी जागतो कोण, निजतो कोण ? अंगी शक्ति

असूनही कधीं कधीं अक्रिय असा राहतो कोण, हे भोग भोगतो कोण, देहाचे ठिकाणीं जें तेज खेळतें तें कोणाचें व अगोरणीयान इत्यादि वाक्यांनीं सूक्ष्माहून सूक्ष्मतरत्व जें वर्णन केलें आहे तें कोणाचें, हें तरी कोणाला कळतें आहे ?

देवमंडळी श्रुतिसंमत युक्तींनीं त्याचा पत्ता लावण्याविषयीं रात्रंदिवस खल करीत असतात; तथापि, त्याच्या जन्माचा किंवा कर्माचाही थांग लागत नाही. अशा स्थितींत त्या परमात्म्यानें आपण होऊनच आपल्या निःश्वसित-रूपानें समजविलेल्या वेदाचा आधार घेऊन मोठमोठाल्या पुराण ऋषींनीं पुराण ग्रंथांत त्याचें चरित गाडलें आहे. देवमंडळी मानवी सृष्टीपेक्षां फार फार जुनी; पण त्या मंडळीच्या कार्णीही या परमात्म्याचें जें चरित्र म्हणून आहे, तें किती किती तरी जुनें म्हणूनच आहे. हे जनमेजया, या परमात्म्याच्या स्वतः-सामर्थ्याचा जो इतिहास आहे, त्या इतिहासानेंच वैदिक व लौकिक गाथा भरलेल्या आहेत. हा लोकनिर्माणकर्ता सृष्टीच्या निर्माणकालीं प्रकट होतो व हा मधुसूदन दानवांना मारण्यासाठीं टपत बसतो, आणि प्रलयकालीं पुन्हा निद्रित होतो. या सुप्तस्थितींत प्रत्यक्ष देवांनाही त्याचे-कडे पाहावत नाही. ह्या जागृती-सुषुप्तीचा सांवत्सरिक पर्याय म्हणजे दरवर्षीं उष्णकाल संपून आषाढी एकादशी आली म्हणजे निजणें व वर्षाकाल संपून कार्तिकी एकादशी येतांच उठणें, असा आहे. वेद, यज्ञ, यज्ञाचीं सर्वांगें आणि यज्ञापासून प्राप्त होणारी गति हीं सर्वही परमात्मरूपच आहेत असें म्हणतात. आषाढा-मध्ये तो निजला म्हणजे मंत्रानें होणाऱ्या यज्ञ-क्रिया बंद पडतात, त्या तो पुनः शरदृतूंत कार्तिकांत जागृत झाला म्हणजे सुरू होतात. श्रीविष्णु वर्षाकालांत चतुर्मास जेव्हां निद्रिस्त असतो तेव्हां त्याच्या गैरहजेरींत भेवाधिपति

जो पुरंदर इंद्र तो हें वर्षाचक्र चालवितो. हा जो विष्णूचा योगमायाबलानें अकस्मात् प्राप्त होणारा तमोमय निद्रेचा काल तो राजेलाकांना फारच घातक आहे; या कालांत ते परस्पर युद्धादि करून नाश पावतात. ही जी परमात्म्याची योगनिद्रा हिचीच छोटीशी प्रत म्हणजे ह्या पृथ्वीवरील प्राणिमात्राला प्राप्त होणारी व आपल्या बरोबर प्राण्यांच्या आयुष्याचें अर्ध चोरून नेणारी व दिवसाचा नाश करणारी अशी निशा ही होय. या निशेचेंच विशिष्ट स्वरूप निद्रा हें होय. या निद्रेचें सामर्थ्य असें विलक्षण आहे कीं, तिनें एकदां ज्याचे देहांत प्रवेश केला तो किती जरी सशक्त असला तरी त्याला वारंवार जांभया येऊं लागतात, व तिचा वेग अनावर होऊन त्याला एखाद्या महासमुद्रांत बुडल्या-सारखें होतें. या भूतलावर लोकांना जी निद्रा येते तिला हेतु दोन. एक तर ती अन्नाच्या कैफानें येते किंवा श्रमामुळें येते. बहुधा पृथ्वीवरील प्राण्यांना उठतां उठतां स्वप्नें पडून या निद्रेचा अंत होतो. व प्राणिमात्राच्या मृत्यु-समयीं ही निद्रा हजर राहून त्यांचे प्राण हरण करिते. या बयाचा तडाका इतका विलक्षण आहे कीं, देवमंडळींत देखील एका नारायणाशिवाय इतर कोणालाही तो सहन होत नाही. आतां नारायणाला तरी तो सहन होतो याचें कारण असें आहे कीं, सर्वांतक जो हा परमात्मा जनार्दन त्याची ही पक्की मैत्रीणच; कारण, ही त्याच्याच शरीरापासून उत्पन्न झालेली आहे. ही दिसण्यांत मोठी मनोहर आहे, हिचे नेत्र कमलासारखे आहेत आणि ही सर्व लोकांना मोहिनी घालणारी आहे. ही प्रथम नारायणाचे मुद्रेवर दृष्टीस येते आणि नंतर थोड्याच कालांत सर्व जग-

ताला व्यापून टाकिते. परमात्म्याने तरी लोक-हितार्थच स्वतः हिचें सेवन केलें आहे. हिचें सेवन करण्यांत परमात्म्याला कांहीं कमीपणा नाही. कारण, खऱ्या साध्वी स्त्रीची सुखार्थां पतीनें देखील सेवा करणें योग्यच आहे. असो; अशा या निद्रेचें स्वतः पांघरूण घेऊन व निखिल सृष्टीला मोह घालून परमात्मा श्रीविष्णु शयन करितात. या निद्रेमध्ये त्या महात्म्याचीं सह-स्त्रावधि वर्षे जातात. या चालू पर्यायांतीलही भगवंताच्या निद्रास्थितींतच सर्व कृतयुग लोटलें, त्रेतायुगही लोटलें आणि द्वापराचीही बहुतेक अखेर आली. परंतु, इतक्यांत प्रजेला बहुत दुःख झालें आहे असें ध्यानीं आणून ऋषिमंडळींनीं स्तुति आरंभिल्यामुळें तो महा-तेजस्वी परमात्मा जागा झाला.

ऋषि म्हणाले:—हे भगवन्, ब्रह्मदेवा-सहित सर्व देव आपले दर्शनाची इच्छा करीत आहेत; तर वास घेऊन उपभोगिलेल्या पुष्प-मालेप्रमाणें या आपल्या सहज निद्रेचा त्याग करावा. हे हृषीकेशा, हे सर्वही वेदपरायण आणि तपोनिष्ठ ब्रह्मवेत्ते ऋषि तुझी स्तुति करून तुझें स्वागत करीत आहेत. हे स्वयंभो, हे भूतमया विष्णो, या पृथिव्यादि सर्व भूतांच्या अधिदेवता तुजपुढें आल्या आहेत, यांची मंगलवाणी ऐकून घे. हे देवा, हे सप्तर्षि इतर मंडळी बरोबर घेऊन दिव्य आणि योग्य शब्दांनीं तुझी स्तुति गात आहेत. हे कमलाक्षा, हे पद्मनाभा, हे महादेवा, देवांना तसेंच कांहीं महत्वाचें कार्य असल्यामुळें तुझी जरूरी लागली आहे, तर उठ.

वैशंपायन सांगतात:—याप्रमाणें स्तुति कानीं येतांच त्या हृषीकेशानें भोंवतीं पसरलेलें सर्व जल आवरून घेऊन व आपल्या भोंवतींचें तमाचें दाट आवरण फोडून तो मोठ्या तेजांत उठून बसला. पहातो तो पितामहासह सर्व

देवमंडळी क्षुब्ध होऊन जगत्कल्याणाकरितां आपणास कांहीं विनंति करावी म्हणून आलेली दृष्टीस पडली. त्यांना पाहून तो श्रीहरि डोळ्यांवरून निद्रा साफ गेल्यावर धर्मयुक्त व सहेतुक अशा तात्विक भाषेनें म्हणाला कीं, हे देवहो, तुमची कलागत कोठें उपजली आहे, तुम्हांला कोणाचें भय वाटतें, तुम्हांला कोणाचे साह्याची व कोणाकरितां जरूरी आहे. बरें, या प्रसंगीं माझे हातून होण्याजोगें काय आहे? दानवांकडून तर लोकांना त्रास पोंचत नाहीना? तसें असेल तर मला झटपट सांगा. मी माझी असली गोड झोंप व शय्या सोडून तुमच्या कल्याणासाठीं उठून या ब्रह्मवेत्त्या मंडळींत बसलों आहे, तरी मी तुमच्याकरितां कोणती कामगिरी करूं तें सांगा.

## अध्याय एकावन्नावा.

—:०:—

श्रीविष्णु व देवमंडळी यांचा संवाद.

वैशंपायन सांगतात:—गताध्यायीं सांगितलेलें श्रीविष्णूचें भाषण ऐकून सर्व लोकांचा पितामह ब्रह्मदेव निखिल स्वर्गवासी लोकांना परम हितावह वाक्य बोलला कीं, हे असुरांतका विष्णो, ज्या अर्थी कोणतेंही युद्ध उपस्थित झालें असतां तुजसारखा नावाडी रणरूप नदीतून देवांना निर्धोकपणें पार पाडण्यास सदा उभा आहे त्या अर्थी देवमंडळीला कशाचें भय असणार? याप्रमाणें शत्रूचा निःपात करण्याला तुजसारखा समर्थ सिद्ध असतां व देवांचें आधिपत्य इंद्राकडे असतां धर्मानें चालणाऱ्या मनुष्यांना तरी भयाची कोठेंही जागा नाही. यामुळें सर्व मनुष्ये निर्भयपणें धर्मानें व सत्यानें वागूं लागल्यामुळें असल्या धार्मिक प्रजेकडे अकाल मृत्यु नुसती दृष्टि टाकण्याला देखील समर्थ नाही.

ही प्रजाजनांची स्थिति झाली. आतां राजांची. राजे लोकही प्रजेपासून धर्मशास्त्रानें सांगितल्याप्रमाणें उत्पन्नाचा सहावाच भाग घेत असल्यामुळें सर्वत्र संतोष राहून राजांस परस्परांपासूनही भय वाटत नाही. याप्रमाणें कर देणारे लोकांचे शिव्याशाप न घेतां राजेलोक योग्य करानीं आपले कोश भरित असून प्रजेच्या हितासाठीं सतत झटत असल्यामुळें त्यांच्या सत्तेखालील सर्वही वसतीचा प्रांत भरभराटीत आहे. प्रजांना अपराधाबद्दल दंड करणें तोही फार कडक न करितां त्यांवर क्षमा-दृष्टि ठेवून ब्राह्मणादि चतुर्वर्णीचें राजेलोक यथान्याय पालन करित आहेत. एवंच, राजांपासून कोणाही प्राण्यांना त्रास होत नसून त्यांचे सचिवही त्यांना योग्य मान देत असून चतुरंग सैन्याची आपणापाशीं योग्य बळकटी ठेवून संधिविग्रह इत्यादि जे सहा प्रकारचे राजनीतीचे उपाय सांगितले आहेत, त्या उपायांना धरून राजेलोक चालले आहेत. सर्वही धनुर्वेदांत निष्णात असून वैदिक धर्माचे अभिमानी आहेत. यज्ञाला योग्य काल येतांच यज्ञ करून ते विपुल दक्षिणा वांटतात. स्वतः वेदाध्ययन करून महर्षींचा संतोष करितात. त्याचप्रमाणें यज्ञदीक्षा व नियमादि ग्रहण करून सर्व देवतामय जें परब्रह्म त्याचें तर्पण करितात, व पवित्र अशा अनेक श्राद्ध-क्रियांनीं पितरांचेही संतर्पण करितात. हे राजेलोक इतके चतुर आहेत कीं, त्यांना विदित नाही अशी वेदांत, लौकिकांत किंवा धर्मशास्त्रांत कोणतीही गोष्ट नाही. इतकेंच नव्हे, तर हे राजे ब्रह्मर्षीप्रमाणें तेजस्वी असून त्यांना परब्रह्माचा साक्षात्कार झाला आहे व यामुळें पुनः कृतयुगाचा प्रचार करण्याच्या

ते उमेदीत आहेत. या राजांच्याच पुण्यबलानें इंद्र सुखावह अशी पर्जन्यवृष्टि करित असतो. सर्व दिशांनीं धूलिरहित यथाकाल अनुकूल वायु वहात असतात. पृथ्वीवर कोणत्याही तऱ्हेचे उत्पात ( धरणीकंपादि ) होत नाहीत. आकाशांत सर्व ग्रह आपआपल्या मार्गांनीं सुरळीत चालतात. चंद्रमाही आपल्या सत्तावीस नक्षत्रांशीं यथाकाल संगत होऊन शांतपणें फिरत असतो. सूर्य हा दक्षिण व उत्तर हीं दोन अयनें क्रमून यथाक्रम वसंतादि ऋतु वर्तवीत असतो. हुताशन अग्नि हा नानाप्रकारच्या हवनीय द्रव्यांनीं संतुष्ट होऊन सुगंधोद्गार टाकीत असतो. याप्रमाणें सर्व राजेलोक नीतीनें चालत असून व यज्ञयागादि वाढत्या प्रमाणावर राहून सर्व पृथ्वी संतुष्ट स्थितीत असतांना मनुष्यांना यमाची भीति कशाला पडेल ? ( येथपर्यंत सर्व ठीक आहे; परंतु, या शांततेच्या व भरभराटीच्या स्थितीचा एक प्रतिकूल परिणाम असा झाला आहे कीं, ) हे उज्ज्वल कीर्तीचे व एकमेकांच्या सलोख्यानें चालणारे राजेलोक आपल्या पदरीं फार मोठीं सैन्ये बाळगून आहेत; आणि या सैन्यांच्या योगानें वसुधेला पीडा होत आहे. ती इतकी कीं, ही विचारी पृथ्वी राजांच्या या सैन्यांच्या भारानें अगदीं टेकीस येऊन बुडूं पाहाणाऱ्या नावेप्रमाणें डबवईस आली आहे. हे कल्पांत अग्नीप्रमाणें जाज्वल्य राजे तिला इतकी पीडा देत आहेत कीं, तिला समुद्रांत स्थिर ठेविणारें जें तिजवरील पर्वतांचें दडपण हें दूर होऊन तिच्यांतून सर्वत्र पाण्याचे फवारे उडूं लागले आहेत आणि त्या योगानें बापडी क्षणोक्षणीं ग्रामाधूम होत आहे. एतावता, या क्षत्रियमंडळीच्या शरीरांनीं, तेजांनीं, बलानें व मनुष्यांच्या अवाढव्य वस्तीनें ही वसुंधरा अगदीं थकून गेली



आहे. प्रत्येक राजधानीत, प्रत्येक राजा कोटि कोटि सेना बाळगून आहे. प्रत्येकाच्या राज्यांत हजारों लाखों वसतीचे गांव आहेत. राजेही हजारों आहेत. असल्या या असंख्य बलाढ्य राजांनी, त्यांच्या कोटीसंख्य सैन्यांनी व ज्यांत लाखों गांव आहेत अशा अनेक राष्ट्रांनी ही भूमी इतकी व्यापून गेली आहे की, तिच्यावर रिकामी जागाच नाही. बरे, या संख्येतून कोणी कमी होतील तर कोठेही रोगराई नाही. अर्थात् काळाला उपास पडत आहेत व धरित्रीची पाठ मोडावयास झाली आहे. ती इतकी की, ती बहुतेक निश्चेष्ट होण्याच्या बेतांत आहे. हे विष्णो, याप्रमाणें हिची संकटमय स्थिति झाल्याने ही उपाशी मरणाच्या काळाला आपल्या बरोबर घेऊन विचारी माझ्या घरी आली. पण माझ्याने तिचें संकट निवारण होईना म्हणून मी तिला आपल्याकडे घेऊन आलों. आतां आपण हिचा पछा पोंचवून द्या. ही भूमी म्हणजे मनुष्यांच्या व्यवहाराचा सर्वस्वी आधार आणि अशील ही दशा प्राप्त व्हावी हें बरें नव्हे. यासाठीं जिकडून ही चिरडली न जातां शाश्वत आधारभूत राहिल अशी कांहीं युक्ति करावी. हे मधुसूदना, या धरणीमातेला पीडा होऊ देणें हें मोठेंच दोषावह आहे. तसें झाल्याने एकतर लोकांचा क्रियालोप होतो व हिलाही पीडा होते. आणि आजकाल मी म्हणतो त्याप्रमाणें या राजांच्या गर्दीमुळें हिला अत्यंत पीडा होत आहे. ही गोष्ट ही अचल म्हणजे चलन न पावणारी व क्षमा म्हणजे सहन-समर्थ अशी नांवें यथार्थ धारण करणारी असतां आज

आपलें स्थान सोडून ( चलन पावून ) व तिचे अंगची ती उपजत क्षमा गमवून व्याकूल स्थितीत येथें आली, यावरूनच स्पष्ट होत आहे. हिची दुःखाची कहाणी मी स्वतःही ऐकून घेतलीच आहे व आपल्याही कार्नी घातली आहे. तिच्या सांगण्याचा सारांश इतकाच की, तिजवरील हा भार कमी झाला पाहिजे. तर तो कोणते रीतीने करावयाचा त्याची, हे विष्णो, आपण सर्वजण मिळून वाटाघाट करूं.

हें काम मोठेंच विचाराचें येऊन पडलें आहे. कारण, सर्वही राजे सन्मार्गानें चालत असून आपआपल्या राज्याची भरभराट करित आहेत. प्रजाजनांत इतर तिन्ही वर्ण ब्राह्मणांच्या धोरणांनीं चालत आहेत. खोटा शब्द म्हणून कोठें ऐकूं येत नाही. सर्वही वर्ण आपआपल्या धर्मांनें चालत आहेत. सर्व ब्राह्मण वेदरत आहेत, व इतर सारे अशा ब्राह्मणांच्या कच्छपीं आहेत. एवंच, भूतलावर सर्वही मनुष्ये आपआपल्या परीं धर्माला धरून चाललीं आहेत. तेव्हां अशांची धर्महानी होतां कामा नये आणि आपलें इष्टकार्य तर साधेल अशी तोड काढिली पाहिजे. कारण, ही धरणी हा सज्जनांचा आधार आहे. अतएव, हिला संकटांत ठेवून उपयोग नाही, आणि हिला सुखी करणें याला धर्मरक्षणासारखा दुसरा मार्ग नाही, ( अर्थात् धर्महानी होतां कामा नये. ) असा सर्वपरी पेंच आहे. त्यास आमच्या मते या धरणीचा भार दूर करण्याकरितां राजांचा वध करावा असें आहे. यासाठीं, हे महाभागा, आपण या वसुंधरेला पुढें घेऊन या कामी पकें खलवत करण्यासाठीं चला मेरूच्या शिखरावर जाऊं.

हे जनमेजया, याप्रमाणें बोलून विश्वात्मा ब्रह्मदेव धरणीसह ( उत्तराची वाट पाहात ) स्वस्थ बसला.

१ भूर्भुमिरचलानन्ता रसा विश्वभरा स्थिरा ।

विपुला गन्धरी धात्री गौरिला कुंभिनी क्षमा ।

— अमरकोश.

## अध्याय वावन्नावा.

—:०:—

## पृथ्वीची विनंति.

वैशंपायन सांगतात:—ब्रह्मदेवानें याप्रमाणें विनंति करितांच तो साध्र पर्वताप्रमाणें विशाल देहाचा, मेघाप्रमाणें श्याम कान्तीचा आणि मेघाप्रमाणेंच दणदणीत ज्याचा स्वर आहे असा परमात्मा श्रीहरि “ बरें आहे चला ” असें म्हणून उठला. हे राजा, त्या भगवंतानें मुक्तामणीच्या प्रभेनें उद्दीप्त झाल्यामुळे ज्याला चंद्रयुक्त मेघमंडळाची शोभा आली होती, असें अखंड जटामंडळ मस्तकीं धारण केलें होतें. त्या लक्ष्मीपतीच्या विशाल वक्षःस्थलावर रोमांच उभे असून आपल्या कान्तीनें उभयस्तनांचीं अग्रे व्यापून टाकणारें असें श्रीवत्सचिन्ह शोभत होतें. नेसूं व अंगावर पीत वस्त्रें असल्यानें तो सर्व लोकांचा शाश्वत गुरु संध्याकालचें सतेज मेघपटल अंगावर धारण करणाऱ्या पर्वताप्रमाणें मनोवेधक दिसत होता. असा तो श्याम-सुंदर गरुडावर बसून ब्रह्मदेवासह चालला असतां त्याचे रूपाकडे डोळे गुंतून सर्व देवमंडळी मागोमाग चालूं लागली; व अल्पकालांतच ते सर्वही मेरुपर्वतावर जाऊन पोचले. तेथें सोन्याचे खांब व हिऱ्यांचीं बहिर्द्वारे जिला आहेत अशी सूर्यप्रमाणें चमकणारी व वाटेळ तो आकार धारण करणारी दिव्य सभा त्याचे दृष्टीस पडली. या सभेंत शेंकडों विमानें ठेविलीं असून तिच्या भिंतींवरून मनास वाटेळ तशीं सुंदर सुंदर चित्रे काढिलीं होती. मध्यें मध्यें रत्नांचे पडदे सोडिले असून ठिकठिकाणीं मोठ्या युक्तीनें रत्नें बसवून नक्षीकाम केलें होतें. तेथें सर्व ऋतूंत उत्पन्न होणाऱ्या फुलांची केवळ लूट होती. तिला रत्नांच्या जाळ्या बसविल्या होत्या. असली ही दैवीमाया-रूपी

सभा विश्वकर्मानें निर्माण केली असून वाटेळ त्या स्थळीं संचार करूं शकत होती. अशी ती सभा पाहून सर्वही देवांना फार आनंद झाला आणि ते सर्वजण रीतीप्रमाणें आपआपल्या मर्यादेनें त्या सुंदर सभास्थानीं आपआपल्या जागीं जाऊन बसले. त्यांना बसण्यासाठीं तेथील व्यवस्थापकांनें ज्या बैठका दाखविल्या त्यांत कांहीं विमानें, कांहीं आतनें, कांहीं भद्रासनें, कांहीं पीठे, कांहीं चट्या व कांहीं गालिचे अशा अनेक जाती होत्या. नंतर ब्रह्मदेवानें प्रभंजन नाभक वाजवून खडी आज्ञा केल्यामुळे त्यानें सर्व सभासदांना “ बोलूं नका ” अशी सक्त ताकीद देतांच सर्व सभा निःशब्द झाली. मग त्या द्वांत देवसभेपुढे दुःखानें केविलवाणा स्वर काढून धरणी बोलूं लागली.

धरणी म्हणाली:—“हे देवाधिदेवा श्रीविष्णो, ज्या अर्थी तूंच हें निखिल जगत्, हीं सर्व भूतें व सर्वही भुवनें धारण करितोस, त्या अर्थी, माझेही तूंच धारण केलें पाहिजे, हा न्याय आहे. आतां मला लोकांत धरणी म्हणजे धारण करणारी असें म्हणतात; तथापि, त्यांतील खरा प्रकार असा आहे कीं, ज्या कांहीं वस्तु तूं आपल्या तेजांनें व बलानें धारण करितोस अशाच वस्तु मग तुझ्या प्रसादानें मीं मोठ्या यत्नानें ( बाह्यदृष्टीला ) धारण करितें. हे विष्णो, तुझा ज्याला आधार आहे त्याचेंच धारण मी करितें. इतरांचें करीत नाही. बाकी तुझा ज्याला आधार नाही अशी सृष्टवस्तुच नाही. हे नारायणा, हे देवा, युगयुगाचे ठायीं लोककल्याणाच्या हेतूनें तूंच माझे भारहरण करीत असतोस. बरें, प्रस्तुत मी भाराखालीं चिरडली जाऊन अगदी सप्तषाताळ खचत चाललें आहे; याला तरी कारण तुझेंच तेज आहे; आणि या संकटांत आश्रयार्थ मी तुज-

कडेच आलें आहेत. याकरितां हे सुरश्रेष्ठा, माझे रक्षण तूंच कर. बाबारे, जेव्हां जेव्हां मला दानव किंवा दुष्टात्मे राक्षस गांजितात त्या वेळीं सनातनरूप जो तूं त्या तुजकडेसच मी आश्रयार्थ येत असतें, असा माझा नेहमींचा परिपाठ आहे. शेंकडों वेळचा माझा असा अनुभव आहे कीं, सर्व बलिष्ठांत शिरोभूत असा जो तूं त्याला जोपर्यंत मी मनाने शरण आलें नाहीं तोंपर्यंतच मला भयाची बाधा होत असते. मजवरील कृषि, वाणिज्य व्यवहार, इत्यादि सुरू होण्याचे पूर्वी कमलयोगी ब्रह्मदेवानें मला बांधून टाकून माझा विस्तार कांहींसा कमी करून त्यापासून मातीचे दोन मोठे असुर बनविले. पुढे महात्मा श्रीविष्णु क्षीरसमुद्रांत निद्रिस्त असतां त्याच्या कर्णमळांतून हेच दोघे राक्षस बाहेर आले. आणि काष्ठाच्या भिंतीसारखे निश्चेष्ट उभे राहिले. इतक्यांत ब्रह्मदेवाच्या आज्ञेवरून प्राणवायु त्यांच्यांत शिरला. तेव्हां ते महा असुर इतके वाढले कीं, त्यांनीं आकाश आच्छादून टाकिलें. ज्यांना प्राणवायु प्राप्त झाला आहे अशा त्या असुरांच्या जवळ जाऊन ब्रह्मदेवानें त्यांना आपल्या हातांनं हळूच चेपून पाहिलें. तेव्हां त्यांपैकी एकजण त्याला मृदु लागला व दुसरा कठीण लागला. मग त्या जलजोद्धवानें त्या दोघांना नांवें दिलीं. तीं अशीं कीं, जो मृदु होता त्याला त्यांनं मधु असें नांव दिलें; आणि जो कठीण होता त्याला कैटभ असें नांव दिलें. याप्रमाणें ब्रह्मदेवानें नांवें ठेविल्यावर ते उभयदैत्य फारच बलगर्वित होऊन व आपणास अजिंक्य समजून त्या सर्वत्र एकच जलमय झालेल्या प्रदेशांत सांपडेल त्याशीं युद्ध करावें या इच्छेनं इतस्ततः भटकूं लागले. भटकतां भटकतां ते ब्रह्मदेवाकडे वळले. त्यांना येतांना पाहून लोकपितामह ब्रह्मदेवानें त्या जलांतच

बुडी दिली; आणि पद्मनाभ जो श्रीविष्णु त्याचे नाभीमधून उत्पन्न झालेल्या कमलामध्ये आपण आतां सुरक्षितपणें वसती करावी असें वाटून तो चतुर्मुख तेथें लपून बसला. मग श्रीविष्णु व ब्रह्मा हे दोघेही पाण्याच्या पोटांत अनेक वर्षेपर्यंत निर्भयपणें पडून होते. इकडे हे मधु व कैटभ जलांत भ्रमत होतेच. ते भ्रमतां भ्रमतां कितीतरी वर्षांनीं ब्रह्मदेव जेथें सुरक्षितपणें दडून बसला होता त्या ठिकाणीं प्राप्त झाले. ब्रह्मदेवानें ते प्रचंड व अजिंक्य असे घोर असुर पुढें आलेले पाहून हळूच कमळाचे देंठानें फटकारून विष्णूला जागें केलें. फटकाऱ्यासरशीं तो महातेजस्वी पद्मनाभ तटकून उठून शय्येवर बसला. त्या वेळीं सर्व त्रैलोक्य जलमय होऊन सर्वभर एकच समुद्र वाढला होता, अशा स्थळीं श्रीविष्णूचें त्या उभय असुरांशीं घनघोर युद्ध झालें; व तुंबल युद्ध सहस्रावधि वर्षे चालत राहिलें. तरीही ते दोघे असुर युद्धांत थकतना, व त्यांची मस्ती विष्णूच्यानंही जिरेना. त्यामुळें तें युद्ध आणखीही तसेंच चालू राहिलें. मग एकंदरीत फारच फार काळ लोटला, तेव्हां ते असुर आपण होऊनच प्रसन्न मनानें देव नारायणाला म्हणाले कीं, हे हरे, शाबास. तुझ्या युद्धकौशल्यानं मी फारच खुष झालों आहे आणि म्हणूनच तुझ्या हातून आम्हांला मृत्यु येणें फार श्लाघ्य वाटतें. याकरितां तूं आम्हांला मार. मात्र जेथें धरणी पाण्यांत बुडाली नाहीं अशा स्थळीं आमचा वध झाला पाहिजे. हे देवश्रेष्ठा, आम्हांला तूं मारिलेंस म्हणजे आम्हीं पुढला जन्म तुझेच पोटीं घेणार आहों. कारण, आमच्यासारख्यांना जो युद्धामध्ये हार आणणारा अशाचे (आज्ञाधारक) पुत्र व्हावें हें सर्वथा उचित आहे. विष्णूनं त्यांचें म्हणणें स्वीकारून त्या उभय

दैत्यांना जलापासून अधांतरीं वरचेवर आपल्या हातांत उचलून घेऊन तेथेच चुरडून टाकिले आणि पाण्यांत फेंकून दिले. मरून पाण्यांत पडतांच त्या मधुकैटभांचे दोन पृथक् देह होते ते एकरूप झाले; आणि अशा स्थितीत जेव्हां समुद्राच्या लाटांच्या थडका त्यांचे अंगांवर बसू लागल्या तेव्हां त्यांचे अंगचा सर्व मेद झडून सर्व समुद्रभर झाला. तेव्हां ते दैत्य तेथेच गडप झाले. मग त्या निष्पाप भगवान् नारायणाने पुनः सृष्टि उत्पन्न केली. त्या दैत्यांच्या मेदाने समुद्रतळीं ही पृथ्वी आच्छादली गेल्यामुळे हिला ( मला ) मेदिनी असे नांव त्या दिवसापासून प्राप्त झाले. सारांश, या पद्मनाभाच्याच प्रभावाने त्या समर्थी या जगतीला ( मला ) चिरस्थायित्व आले. याप्रमाणे पुनः मी जलांत बुडले असतां, हे भगवंता, आपण वराहरूप धारण करून मार्कंडेय ऋषींच्या देवत मला आपल्या दाढेवर घेऊन वर काढिले. हे देवहो, यानंतर पुनरपीही बलिदैत्याचे वेळीं याच समर्थ श्रीविष्णूने तीन पाउले टाकण्याच्या मिषाने तुम्हां सर्वासमक्षच मला बलीच्या जाचांतून सोडविले.

असा हा आजपर्यंतचा इतिहास आहे, व यामुळेच मी माझ्या सांप्रतच्या कष्टमय स्थितीत अनाथ झाल्याने या जगताच्या नाथाला, अशरण झाल्याने या शरणागताचे पालनकर्त्याला, शरण आले आहे. अग्नि हा सुवर्णाचा हितकर्ता, सूर्य हा गोधनांचा, सोम हा नक्षत्रांचा आणि त्याचप्रमाणे हा नारायण माझा हितकर्ता आहे. मी या स्थावरजंगम

विश्राला धारण करिते; परंतु, ( त्यांतील रहस्य असे आहे कीं, ) मी जेव्हे कांहीं धारण करिते तेवढ्या सर्वांला आंतून या नारायणाचा टेंका आहे. ( वामनावतारानंतर पुनः ) परशुरामाचे कालीही मी क्षत्रियांचे भाराने गांजून गेले होते, तेव्हां जामदग्न्य रामाने माझा भार हलका करण्याच्या हेतूने रोषाच्या तडाक्यांत एकवीस वेळां मजवरील क्षत्रिय दूर केले, आणि त्या परशुरामाने आपल्या पित्याच्या श्राद्धसमयीं माझे पृष्ठवर रणस्तंभ उभारून तेथे क्षत्रिय राजांच्या रक्तांने माझे संतर्पण केले आणि नंतर मला कश्यपाच्या हवाली केले. मी ज्या वेळीं कश्यपापाशीं गेले त्या वेळीं नुकतीच क्षत्रियांच्या मांस, मेद, अस्थि व रक्त यांनीं मी भरून गेली असल्यामुळे एखाद्या रजस्वला स्त्रीप्रमाणे माझे देहाला दुर्गंध येत होता. अशा स्थितीत मी अर्थातच लज्जेने खालीं मान घालून कश्यपासन्निध उभी राहिले. तेव्हां त्या महर्षीने मला विचारिले कीं, “हे पृथ्वि, तूं अशी खालीं तोंड करून उभी कां? व रणांत जिचा भर्ता नुकताच मारला गेला आहे अशा एखाद्या वीरपत्नीप्रमाणे खिन्न कां दिसतेस? ” यावर मी लोककल्याणकर्त्या कश्यपांस विनंति केली कीं, हे ब्रह्मन्, महात्म्या परशुरामाने माझे सर्वही पति मारिले व यामुळे शस्त्रांवर जीविका करणारे सर्वही पराक्रमी क्षत्रिय मजवरून नाहीसे झाल्याने मी केवळ विधवा झाले आहे, व मजवरील नगरें ओस पडली आहेत. अशा स्थितीत मला जगावेसे वाटत नाही. याकरितां, हे भगवंता, आपणासारखा कोणी समर्थ राजा मला पति करून द्या म्हणजे सागराने वेढिलेली जी मी त्या माझे मजवरील ग्रामनगरांसह तो रक्षण करील. अशी माझी विनंति ऐकतांच “फार बरे आहे ” असे म्हणून त्या भगवान्

१ मुळांत “ अग्निः सुवर्णस्य गुरुः गवां सूर्यो गुरुः स्मृतः । नक्षत्राणां गुरुः सोमो मम नारायणो गुरुः ॥ ” असा श्लोक आहे; व यांत गुरु शब्दाचा अर्थ “ कारण ” आणि “ गवां ” शब्दाचा अर्थ “ किरणांचे ” असा नीलकंठांनी दिला आहे व तो ठीकच आहे.

कश्यपानें मला मानवेंद्र जो मनु त्याचे स्वाधीन केलें. नंतर त्या मनुपासून देवतुल्य असा इक्ष्वाकूचा वंश माझा पालनकर्ता झाला; व तेव्हांपासून बहुत कालपर्यंत एका पृथ्वीपती-पासून दुसऱ्याकडे अशी मी जात आलें. सारांश, मी त्या बुद्धिमान् मनुच्या अर्पण झाल्यापासून महर्षितुल्य कुलांत अशा सहस्रावधि राजांनीं मला भोगिली. किती तरी शूर क्षत्रिय मला आपलीशी करून शेवटीं स्वर्गास गेले. कित्येक कालाच्या तडाक्यांत सांपडून माझेच ठिकाणीं नष्ट झाले. युद्धांत कधीही माघार न खाणाऱ्या क्षत्रियांचे मत्प्राप्त्यर्थ आजपर्यंत कितीदां तरी झगडे झाले आणि अजूनही चालू आहेतच. हे भगवंता, या सर्व घडामोडी आपण घालून दिलेल्या दैवरूपी नियमाचाच परिपाक आहेत; व राजांनीं युद्ध करून त्यांत वध पावों ही योजना तरी जगद्धितार्थ आपणच केलेली आहे. असो; मी भारावून गेलें आहे. यासाठीं माझा भार हलका करावा अशी जर मजविषयीं आपणास दया येत असेल तर, हे श्रीमंता, हे चक्रधरा, आपणच मला अभय दिलें पाहिजे. ( कारण, या कामीं अन्य कोणीही समर्थ नाहीं. ) हे देवहो, मी भारानें गांजलें असतां आश्रयार्थ ज्या विष्णूकडे आलें, त्याचे मनांत जर माझा भार दूर करण्याचें असेल तर त्यानेच रोखठोक मला काय तें सांगावें. ”

### अध्याय त्रेपन्नावा.

—०:—

#### देवतांचे अंशावतार.

वैशंपायन सांगतात:—ती सर्वही देवमंडळी धरणीचें तें वाक्य ऐकून तिचा इष्ट हेतु सिद्धीस जाण्याकरितां काय केलें पाहिजे हे ठरविण्यासाठीं पितामहाला बोलले:—हे भगवन्,

तुम्हीच सर्व लोकांना शरीर देणारे व तुम्हीच सर्व लोकांचे स्वामी आहां. याकरितां या धरणीला झालेला अतिशय भार तुम्हीच दूर करावा हें न्याय्य आहे. तर ही गोष्ट म्हणजे पृथ्वीचें कल्याण करण्याकरितां राजे लोकांत झगडा सुरू करणें हें जर आपल्याला आम्हां-प्रमाणेंच संमत असेल तर त्या कार्याचे सिद्धार्थ आम्हांपैकी कोणी कोणत्या रूपानें आपल्या तेजाचें अंशावतरण पृथ्वीवर करावें तें आपणच आम्हां सर्वांना सांगावें. आमचेपैकीं महेंद्रानें काय करावें, त्याचप्रमाणें यमानें, वरुणानें, कुबेरानें, स्वतः नारायणानें, चंद्रानें, सूर्यानें, बारा आदित्यांनीं, आठ वसूंनीं, एकादश रुद्रांनीं, देववैद्य अश्विनीकुमारांनीं, स्वर्गस्थ साध्यांनीं, बृहस्पतीनें, शुक्रानें, कालानें, कलीनें, महेश्वरानें, कार्तिकस्वामीनें, यक्षांनीं, राक्षसांनीं, गंधर्वांनीं, चारणांनीं, महा उरगांनीं, पक्ष्यांनीं, पर्वतांनीं, तरंगयुक्त सागरांनीं किंवा गंगाप्रभृति दिव्य नद्यांनीं, कोणत्या रीतीनें आपले तेजाचा अंश धरणीवर पाठवून कोणती कामगिरी करावी हें आपणच त्वरित सांगा. आमचें मत विचाराल तर असें आहे कीं, जे कोणी अंतरिक्षांत किंवा पृथ्वीवर राजे आहेत आणि त्याचप्रमाणें सदस्य ब्राह्मण आणि इतर उंची कुळें आहेत अशांत योनिसंबंधावांचून आम्ही आपले देह प्रकट करून पृथ्वीवर संचार करूं.

याप्रमाणें सर्व देवमंडळींचा एकोप्यानें झालेला निश्चय श्रवण करून देवमंडळांत बसलेला ब्रह्मदेव म्हणाला कीं, हे देवश्रेष्ठहो, फार नामी. तुमचाच निश्चय मला संमत आहे. तुम्ही आपल्या तेजाचा अंश पृथ्वीवर पाठवून तेथें हुबेहुब येथल्याप्रमाणें शरीरें उभीं करा; आणि सर्व त्रैलोक्यांतील सौभाग्य गोळा करून

आणून या धरणी देवीला शोभिवंत करा. आतां या बाबतींत मी काय केलें आहे तें, ऐका.

पृथ्वीला आजचें हें संकट प्राप्त होणार हें मला पूर्वीच कळून चुकलें होतें. यामुळें पृथ्वीवरील भारतवंशांत मी पुढील उद्दिष्ट कार्यसाधनांचा बीजारोप करून ठेविला आहे. कसा तो ऐका. पूर्वी मी पूर्वसमुद्राच्या पश्चिम-तीरावर माझा पुत्र महात्मा कश्यप याजबरोबर जुन्यापान्या कथा व लोकांत आणि वेदांत वडलेले इतिहास व पुराणांतून सांगितलेल्या चांगल्या चांगल्या गोष्टी बोलत बसलों होतो, अशा वेळीं मेघकारक वायूला बरोबर घेऊन गंगेसह मूर्तिमान् समुद्र मजपाशीं आला. त्या वेळीं त्या समुद्राची गति जोरानें उसळणाऱ्या लाटांनीं विषम झाली होती. जलजंतूंच्या योगानें चित्रविचित्र झालेलें असें जलरूपी वस्त्रानें त्याचें शरीर झांकलें असून त्याच्या त्या निर्मल शरीरावर शंख, मौक्तिकें आणि प्रवालवल्ली यांचीं भूषणें होती. बरोबर पूर्णचंद्र होता. अशा थाटांत सजलमेघाप्रमाणें गर्जना करीत आपल्या ठरीव मर्यादेला ओलांडून व आपल्या खारट आणि चंचल अशा जलौघानें मला भिजवून अर्थात्, माझी एकप्रकारें अमर्यादा करून मी बसलों होतो, त्या स्थलाला बुडवून टाकण्याच्या इच्छेनें तो तेथें आला. त्या वेळीं त्याला जरा झटक्यानेंच दटावून म्हटलें कीं, ' शांत हो. ' देव हो, काय सांगावें माझे ' शांत हो ' हे शब्द कानीं पडतांच तो वाढलेला समुद्र झटाडिशीं संकोच पावला, आणि आपले वाढलेले ओघ व तरंग एकत्र आंवरून राजतेजानें चमकतच माझे पुढें उभा राहिला. त्या वेळीं, हे देव हो, तुमचें हित मनांत आणून मतलबी दृष्टीनें मी त्या समुद्राला गंगेसह शाप देऊन म्हटलें कीं, हे समुद्रा, ज्या अर्थी तूं राजकीय थाटानें येऊन मजपुढें उभा

राहिला आहेस त्या अर्थी ( तुला राजत्व आवडतेंसें दिसतें; तर ) तूं भारतांच्या कुळामध्यें जा म्हणजे तेथें तुझ्या स्वतेजानें व सहज-लीलेनें तूं लोकांचा पोषणकर्ता आणि भरत-कुळांत अग्रयायी असा राजा होशील. ज्या अर्थी मी तुला शांत हो असें म्हणतांच तूं तनु-त्वाला ( संकोचाला ) प्राप्त झालास, त्या अर्थी तूं भारत कुळांत शंतनु या नांवानें प्रसिद्ध होशील; आणि तुजबरोबर असलेली ही सर्वांग-सुंदरी व दीर्घापांगी सरिच्छेष्टा रूपवती गंगा तुझे लोबतीस येईल.

याप्रमाणें, माझी शापवाणी ऐकून समुद्र क्षुब्ध होऊन मला म्हणाला, ' हे देवाधिदेवा प्रभो, मला आपण कां बरें शाप द्यावा ? मी तर आपला आज्ञावर्ती, आपलाच किंकर, आपणच निर्माण केलेला व आपणालाच अत्यंत मान-णारा, असें असतां आपल्या पुत्राला—मला अयोग्य वाक्यांनीं आपण शाप दिला यांत हेतु काय ? आपण म्हणाला, 'मी उसळून आपल्या आंगावर आलों.' तर पर्वकाळीं माझा वेग वाढून मी चलन पावावें ही आपलीच कृपा आहे. तेव्हां माझा वेग वाढत असतां वाऱ्याच्या थप-डींनीं माझे पाणी उसळून पर्वकाळीं आपणास स्पर्श झाला. यांत आपण मला शाप द्यावा इतका अपराध कोणता ? मी काय करूं ? एक-तर चोहोंकडून फार मोठें वारें उसळलें, मेघांनींही गर्दी केली आणि तशांत पौर्णिमेच्या पूर्णचंद्राचें मजवर आकर्षण पोंचलें, अशा या तीन कारणांनीं मी उसळलों. यांत जरी मजकडून तुझा अपराध झाला असला तरीही तो तूं निर्माण केलेल्या कारणांनींच झाला हें ध्यानीं घेऊन, ब्रह्मन्, मला क्षमा करून आपला शाप परत घ्यावा. मला तर आपणावांचून आधार नाही; आणि शिवाय मी आपल्या शापामुळें अगदींच लटका पडून गेलों आहे. याकरितां,

हे देवेशा, आपण न्यायमर्यादा पाळीत असाल तर मजवर करुणा करा. विशेषतः या देव-गंगेला तरी आपल्या आज्ञेनुसार धरणीवर जाणें माझ्या दोषांनीं संपृक्त झाल्यामुळेच येणार आहे. तर हिजवर तरी आपण कृपादृष्टि करावी. ' याप्रमाणें शापाक्षीनें त्रासून गेलेल्या त्या महार्णवाची विनंति ऐकून मी फार कोमल वाणीनें त्याला बोललों कीं, हे महोदधे, मी तुजवर प्रसन्न आहे, जिऊं नको, द्यांत हो. तुला हें माहीत नाही. परंतु, हे सरित्पते, तुला मी जो शाप दिला यांत मज्जा देवांची काहीं पुढील कामगिरी साधण्याचा हेतु आहे. तर तूं आतां हें आपलें समुद्ररूप सोडून भारतवंशांत जा आणि तेथें आपल्या तेजानें आपल्याला मनुष्यदेह निर्माण कर. म्हणजे, हे जलपते, तूं त्या भारतवंशातील राजा होऊन राजकीय वैभवानें युक्त होत्सता चारी वर्णांचें अध्यायाय पालन करीत मोठ्या सुखानें राहाशील. तुजबरोबरच ही सर्वांगसुंदरी सरित्परा गंगा उत्कृष्ट रूप घेऊन तुझ्या सेवेत तत्पर राहील; आणि हे सागरा, माझे आज्ञे-वरून याप्रमाणें राजसुखांत या सुंदरी जान्हवी-सह दंग झालास म्हणजे मी तुला शाप दिल्या-बद्दल आज जें वाईट वाटत आहे तें सर्व तूं विसरून जाशील. याकरितां, हे सरित्पते, आतां तूं माझे आज्ञेप्रमाणें वागण्यास विलंब लावूं नको, त्वरा कर; आणि भारतवंशीं प्रकट होऊन या गंगेबरोबर शास्त्रोक्त प्राजापत्य विधीनें लग्न कर. स्वर्गातून तुमच्या पूर्वीच आठही वसू भूतलीं जाऊन बसले आहेत. त्यांस मनुष्ययोनिंत येणें अवश्य आहे. त्यांची सोय लागावी म्हणूनच मी तुला या विवाहाची आज्ञा केली आहे. हे सर्वही वसू देवांचे मोठे आवडते आणि अग्नि-तुल्य तेजस्वी आहेत. करितां या आठहीजणांना या तुझ्या स्त्रीनें म्हणजे गंगेनें आपले उदरी

अपत्यरूपानें जन्म द्यावा. एवढी कामगिरी तुम्हीं दंपत्यांनीं झटपट करून बुरबुराची वृद्धि केली म्हणजे तत्काळ तो मानवदेह सोडून, हे सागरा, तूं आपल्या पूर्वरूपास प्राप्त होशील.

हे देवश्रेष्ठहो, या पृथ्वीला राजमंडळाचा भार होऊन संकट प्राप्त होणार हें भविष्य मला अगोदरच कळलें असल्यामुळे मी आतां सांगितल्याप्रमाणें समुद्राला आज्ञा देऊन तुमच्या हितार्थाची अशी आगाऊ योजना करून ठेविली होती; व या योजनेप्रमाणें आजकाळ पृथ्वीवर जो शंतनूचा म्हणून वंश चालू आहे त्याची बीं मी रजत दातली. या गंगेचे पोटी जे देव व अष्टवसु जन्मले त्यांतील सात हे पूर्ववत् देवरूप होऊन आपणांत मिसळले. तथापि, यांपैकीं आठवा ज्याला गंगेच किंवा भीष्म म्हणतात तो अजून धरणीवर मागे थांबला आहे. शंतनूनें या गंगेशिवाय सत्यवती नांवाची दुसरी एक स्त्री केली होती. तिचे ठिकाणीं त्यानें आपलेंच प्रतिशरीर असा विचित्रवीर्य नांवाचा मोठा तेजस्वी पुत्र उत्पन्न केला. हा मोठा प्रतापशाली राजाही झाला. या विचित्र-वीर्याचे दोनच पुत्र सांप्रत धरणीवर विद्यमान आहेत. या विख्यात पुरुषश्रेष्ठांचीं नांवेः—धृतराष्ट्र आणि पाण्डु. यांपैकीं पाण्डूला सौभाग्य-संपन्न अशा सुलक्षणी दोनच स्त्रिया असून एकीचें नांव कुन्ती व दुसरीचें नांव माद्री. या दोघीही देवांगनेतुल्य रमणीय आहेत. धृतराष्ट्र राजाला गांधारी नांवानें प्रसिद्ध अशी एकच स्त्री आहे. ही मोठी पतिव्रता असून सर्वदा आपल्या पतीच्या इच्छेप्रमाणें तंतोतंत वागत असते. हे जे पाण्डु आणि धृतराष्ट्र म्हणून दोघे राजे सांगितले, यांच्या पुत्रांचा मोठा भयंकर संग्राम होणार आहे व त्या संग्रामार्थ उभयतांत पक्ष विपक्ष अशा फळ्या पडणार आहेत आणि मग या उभय भाऊवंशांत

वडिलार्जित राज्याच्या विभागासंबंधे झगडा सुरू झाला म्हणजे त्या झगड्यांत बहुतेक सर्व राजांचा संहार होणार आहे. हा प्रकार सुरू होईल त्या वेळीं प्रत्यक्ष कल्पान्तसमय येऊन ठेपल्याप्रमाणें सर्व प्रजेला मोठेंच भय उद्भवेल. एकापेक्षा एक बलाढ्य राजे आपआपल्या सैन्यासह परस्परांची मस्ती जिरविण्याच्या भरीं भरले म्हणजे त्या नादांत या पृथ्वीवरील आज-काल मनुष्यसंख्येनें गजबजून गेलेलीं पुरेंच्या पुरें आणि राष्ट्रेंच्या राष्ट्रें रितीं पडून या धरित्रीला सांप्रत झालेला भार हलका पडेल. मीं केव्हांच पाहून ठेविलें आहे कीं, द्वापरयुगाचे अंतीं शस्त्रघातानें राजेलोक आपल्या प्रजेसह नाश पावतील. रणांगणीं शस्त्राचे घायांतून थोडे बहुत जे कोणी उरतील, त्यांस ते रात्रीं शिबिरांत गाफिल होऊन निद्रिस्त पडले असतां शस्त्रतेजोरूपी अग्नीनें, शंकराचा अंशावतार जो अश्वत्थामा तो जाळील. याप्रमाणें केवळ यमालाच शोभणारें असलें हें मनुष्यवधाचें क्रूर कृत्य पुरतें झालें म्हणजे मी तिसरें म्हणजे द्वापरयुग समाप्त झालें असें म्हणेन. शंकराचा अंशावतार जो अश्वत्थामा तो युद्धांतून एका बाजूला सरला म्हणजे मग शंकराचे युगाला म्हणजे शेवटल्या कलियुगाला प्रारंभ होईल. हें युग फारच दारुण होणार आहे. कारण, या युगांत मनुष्यमात्ताची प्रवृत्ति अधर्माकडे विशेष व सद्धर्माकडे फार अल्प राहील. सत्याची ओळख बहुतेक बुजाल्यासारखी होऊन असत्याचा सांठा मात्र फार वाढेल. बहुतेक सर्व लोक शंकर किंवा कार्तिकस्वामी या दोन देवांचे उपासक होतील, व कोणालाही म्हातारे लोक फार आढळणार नाहीत. असा प्रकार होणार आहे.

हे देवहो, एतावता माझ्या समजुतीनें आपण आतां ज्या उपायाविषयीं बोललों हाच

उपाय पृथ्वीवरील राजांचा क्षय करण्यास फार उत्तम आहे, व म्हणून हा सिद्धीस जाण्याकरितां त्वरा करून तुम्हीं आपआपल्या तेजाच्या अंशानें अवतीर्ण व्हा. त्यांतले त्यांत योजना अशी कीं, धर्माचा जो अंश आहे तो कुंती आणि माद्री यांचे ठिकाणीं योजावा; आणि भावी संश्रामाला हेतुभूत होणारा असा जो कलीचा अंश तो गांधारीचे ठिकाणीं योजावा. असें केलें असतां एकीकडे धर्म आणि एकीकडे कलि असे दोन जंगी पक्ष होऊन कालप्रेरणेमुळे सर्वही राजांना पृथ्वीबद्दल लोभ उत्पन्न होऊन युद्ध करण्याविषयीं मोठी उत्कंठा होईल. एकंदरीत या सर्व राजांचे बळी पडण्याचा हा सुप्रसिद्ध उपाय योजिला आहे. तर आतां या लोक-धारिणी पृथ्वीनें निश्चितपणें आपल्या पूर्वस्थानी जावें. ब्रह्मदेवाचें हें वाक्य ऐकतांच पृथ्वी ज्याप्रमाणें कालाला पुढें करून ब्रह्मदेवाकडे आली होती त्याचप्रमाणें ती राजांच्या संहारार्थ त्याच कालाला पुढें करून आपल्या पूर्वस्थलीं गेली.

इकडे ब्रह्मदेवानें देवद्वेष्ट्यांचा निग्रह करण्याविषयीं देवमंडळीला आज्ञा केली, आणि त्याचप्रमाणें पुराणऋषि जो नर, तसाच धरणी-धर्ता-शेष, सनत्कुमार, साध्य, अग्निप्रभृति-देव, वरुण, यम, सूर्य, चंद्रमा, गंधर्व, अप्सरा, रुद्र, आदित्य व अश्विनौ देव या सर्वांसही आज्ञा केली. त्या आज्ञेप्रमाणें सर्वही देवांनीं आपले अंश धरणीवर पाठविले. मीं पूर्वी सांगितल्याप्रमाणें देवांनीं पृथ्वीतलावर कांहीं योनिसंभव व कांहीं अयोनिसंभव अशीं रूपे घेऊन दैत्यदानवांचे निःपातकर्ते पुरुष निर्माण केले. या पुरुषांत कांहीं राजणीच्या वृक्षाप्रमाणें विस्तीर्ण शरीराचे होते. कांहींचीं शरीरे वज्रासारखीं घट्ट होती. कांहींना दहा सहस्र हत्तींचे बळ असून कांहींच्या अंगांत एखाद्या प्रवाहा-



प्रमाणें रंग होती. कांहींकांचे भुज परिघाप्रमाणें दीर्घ व मांसल असून मोठमोठाल्या गदा, परीव व शक्ति आपल्या हातांनीं सहज फिरवू शकत. गदेचा खेळ तर सर्वांनाच साधला होता, आणि त्यामुळें ते मोठाल्या पर्वतशिखरांचा तेव्हांच चुराडा करून टाकीत. या प्रकारचे शेंकडों हजारों पुरुष वृष्णिवंशांत उत्पन्न झाले. त्याच मासल्याचे कुरु व पंचाल राजवंशांत झाले. कांहीं देव समृद्ध आणि यज्ञकर्त्या अशा ब्राह्मणांच्या कुळांत निपजले. ब्राह्मण-कुळांत येऊनही ते मोठे धनुर्धर व शस्त्रास्त्रांचे पूर्ण माहितगार होते. शिवाय ब्राह्मण या नात्यानें वेदांचें पारायण करणें, यज्ञयागादि पुण्यकर्म करणें, हेंही त्यांच्या अंगीं असून त्यांस सर्व प्रकारची अनुकूलता होती. त्यांचें सामर्थ्य इतकें होतें कीं, ते रागावले असतां पर्वतांना हालवून सोडितील, धरणी फाडून टाकितील; आकाशांत उड्डाण करितील किंवा महासमुद्राला हालवितील.

याप्रमाणें त्या देवमंडळीच्या अवतार-स्वरूपांचें वर्णन करून व त्याप्रमाणें देवांस आज्ञा देऊन तो भूतभविष्यवर्तमानाचा स्वामी ब्रह्मदेव सर्व लोकांची व्यवस्था भगवान् नारायणाचे स्वाधीन करून आपण शान्तीचा आश्रय करिता झाला.

हे जनमेजया, यापुढें प्राणिमात्रांचा हित-कर्ता प्रभु नारायण प्रजेच्या कल्याणासाठीं भूतलीं ययातिवंशांतील वसुदेवाच्या पूज्य कुळांत निर्माण होऊन कसकसे यश संपादन करता झाला, तें सांगतों ऐक.

## अध्याय चौपन्नावा.

—:०:—

### नारदवाक्यवर्णन.

वैशंपायन सांगतात:—पुढें कोणती कामगिरी

करावयाची याबद्दलचीं वाटघाट पुरी होऊन तो काळ जातांच सर्व देवांनीं आपआपल्या अधिकारा-नुरूप भारतकुलामध्ये अंशावतरण करून (पाण्डव-रूपानें) धर्म, इंद्र, वायु, दोघे देववैद्य अश्विनौदेव व सूर्य हे प्रकट झाले. देवांचा पुरोहित बृहस्पति द्रोणाचार्यांच्या रूपानें पाण्डवांपूर्वीच प्रकट झाला. तसाच अष्टवसूतील आठवा हा भीष्मरूपानें अगोदरच धरणीतलावर अवतीर्ण झाला होता. त्याचप्रमाणें विदुररूपानें मृत्यूचा अंश, दुर्योधन-रूपानें कलीचा अंश, भूरिश्रव्याच्या रूपानें शुक्रा-चा, अभिमन्यूच्या रूपानें सोमाचा, श्रुतायुधाचे रूपानें वरुणाचा, अश्वत्थामाचे रूपानें शंकराचा, कणिकाच्या रूपानें मित्राचा, धृतराष्ट्राच्या रूपानें कुबेराचा व देवक, उग्रसेन, दुःशासन, इत्यादि-कांच्या रूपानीं गंधर्व, उरग, यक्ष यांचे अंश गगनांतून खालीं येऊन धरणीतलावर प्रकट झाले असतां नारायण परमात्म्याच्या अंशरूपानें सदैव असणारा नारदमुनि देवसभेंत प्राप्त झाला. या नारदमुनीची अंगकान्ति जळत्या अग्नीप्रमाणें जाज्वल्य असून त्याची दृष्टि बाल-सूर्याप्रमाणें तेजस्वी होती. मस्तकीं डाव्या बाजूनें फिरविलेलें असें विपुल जटांचें मंडळ होतें. अंगावर चंद्रकिरणाप्रमाणें शुभ्र वस्त्रें असून सुवर्णाचीं भूषणें होतीं. एखाद्या प्रिय-सखीसारखी बगलेला चिकटून वीणा घेतली होती. उत्तरीयाला जोडून एक कृष्णाजिन होतें व एक सुवर्णाचें यज्ञोपवीत होतें. हातीं दंडकमंडलु असून अधिकारानें तो केवळ इंद्रा-प्रमाणें दिसत होता. कोणाची कोठेंही आणि कितीही गुप्त गोष्ट असो, ती फोडण्यांत स्वारीचा हातखंडा असे; व ज्याप्रमाणें आका-शांत धूमकेतु दिसला म्हणजे कांहींतरी अनर्थ होणार असें अनुमान काढितात त्याचप्रमाणें या मुनीची मूर्ति कोठेंही गेली कीं, तेथें लवकरच कांहीं कलागत होणार असें समजलें

जात असे. तो चारही वेदांचा पाठ करीत असून आद्य ऋत्विजांपैकी उद्गाता होता. त्याची महर्षींत गणना असून तो मोठा ज्ञाता व गायनकलेंत निपुण होता. त्या ब्राह्मणाला भांडणाची फार आवड; पक्का कण्या टाकून कोंबडीं झुजविणारा. कोणाही दोन पक्षांत वैमनस्य येऊन झोंबी सुरू झाली की, या बहादुराला मौज वाटावयाची. किंबहुना हा ब्रह्मदेवाचा पुत्र दुसरा मूर्तिमान् कलीच होता. देव आणि गंधर्व मंडळींतील हाच महामुनी आदिवक्ता. असा हा ब्रह्मर्षि नारद अक्षय ब्रह्मलोकांत फिरत असतां या वेळीं देवसभेंत येऊन व्याकुलतेनें विष्णूस म्हणाला, 'हे विष्णो, पृथ्वीवरील राजांचा संहार करण्याच्या उद्देशानें देवांनीं आपआपलें अंशावतरण भूलोकीं केलें आहे; परंतु, माझ्या समजुतीनें तें सर्व व्यर्थ आहे. कारण, मला असें वाटतें कीं, पृथ्वीवरील हें सर्व क्षत्रियमंडळ तुझ्या आधारावर उभें आहे; आणि याकरितां याचा संहार करणें ही कामगिरी तुम्हां नरनारायणांनाच योग्य असें मला दिसतें. हे देवाधिदेवा, तुला प्रत्येक गोष्टींतलें खरें तत्त्व कोणतें हें बरोबर दिसत असतें. हें जर खरें आहे तर, हे देवा, तुझ्यासारख्या जाणत्यानें बिचाऱ्या पृथ्वीची असली महत्वाची कामगिरी इतरेजनांवर परस्पर टोळवून द्यावी हें योग्य नाही. कारण, हे देवा, सर्व डोळसांचा डोळा तूं. समर्थीचें श्लाघ्य सामर्थ्य तूं. योगयुक्तांत श्रेष्ठयोगी तूं व गतिमंतांची गति तूं. अरे, तूं मोठा समर्थ व सर्वांचा आधार, असें असतां इतर देवमंडळींनीं पृथ्वीकरितां आपआपले अंश खालीं पाठविलेले तूं पाहात असतांही तिचे साह्यार्थ तूं आपला अंश पाठवीत नाहीस हें कसें? अरे, तुझे पाठवळ असेल तर त्या देवांशांना जोर येईल. कारण, त्या

देवांशांचें सर्वस्व काय तें तूंच आहेंस. तूं प्रेरक पाठीशीं असलास म्हणजे हे देवांश धरणीतलावर एक कामगिरी संपवून दुसरी, दुसरी संपवून तिसरी, अशा रीतीनें तूं म्हणशील तितकी कामगिरी करितील, ( परंतु पाठीशीं तूं पाहिजेस ) व ही गोष्ट ध्यानीं आणूनच, हे विष्णो, तुझी उठावणी करण्याकरितां मी इतक्या लगबगीनें देवसभेंत आलों आहे. शिवाय माझ्या येण्यांत दुसरा एक मुद्दा आहे. तूं मागें तारकायुद्धांत जे जे दैत्य मारिलेस त्यांपैकीं जे कोणी पुनः पृथ्वीवर गेले त्यांची हकीकत काय झाली ती तुला सांगतों, ऐक.

पृथ्वीवर यमुनानदीचे तीरीं वसलेली मोठी संपन्न व दाट वसतीची अशी मथुरा नांवानें प्रसिद्ध आनंददायक नगरी आहे. ( ही मधुवनांत असून शत्रुघ्नानें वसविली आहे. ) या नगरीचे ठिकाणीं पूर्वी मधुवन नांवाचें घोर अरण्य होतें. या अरण्यांत मोठमोठाल्या जुनाट वृक्षांची आतिशय गर्दी असून तेथें मधु नांवाचा एक मोठा दुर्जिक्य दानव रहात असे. हा मोठा बलाढ्य असून प्राणिमात्राला त्रास देणारा होता. या मधूला लवण नांवाचा पुत्र होता. हाही सर्वपरी बापाचीच प्रतिमा होता. हा दानव त्या मधुवनांत अनेक वर्षे खेळ खेळत होता. त्यानें आपल्या अंगमस्तीनें कित्येक दैवतांना आणि लोकांना उठवून लाविलें. या दानवाच्या वेळीं अजिंक्य अशा अयोध्या नगरींत राक्षसांना कंप देणारा असा दशरथपुत्र धर्मज्ञ रामराजा राज्य करीत होता. लवणाला आपल्या बलाची फारच घमेंड चढली होती. तेव्हां त्यानें आपल्या वसतीच्या त्या घोर मधुवनांतून रामाकडे चरचरीत निरोप सांगणारा असा एक दूत पाठविला, व त्या दूताबरोबर असा निरोप दिला कीं, हे रामा, मी तुझा वैरी असून

तुझ्या प्रांताला अगदी लागून आहे. खरे राजे आहेत ते आपल्या आसपास असला मजसारखा शक्तीची घमेंड करणारा शत्रु टिकू देत नाहीत. तू आपणास राजा म्हणवीत असून राज्य करण्याचे कंकण बांधिले आहेस. तर प्रजेचे हित होऊन आपणास समृद्ध असे राज्य असावे अशी तुला ज्या अर्थी इच्छा आहे त्या अर्थी तू प्रथम मजसारखे रिपु जिंकून टाकावेस. प्रजेकडून अभिषेक करवून घेऊन राजा म्हणवून घेण्याची हौस वाटते, तर अशाने परत प्रजेलाही खूष ठेविले पाहिजे, आणि असे करणे तर आपले अभिषेकाचे केंस पुरे वाळले नाही तोंच आपली इंद्रिये ताव्यांत घेण्याचा अभ्यास केला पाहिजे. कारण, आधी इन्द्रियजय करावा तेव्हां मग खात्रीने शत्रूवर जय मिळतो. ज्या कोणाला लोकांत आपण नीट वर्ताव करावा असे वाटत असेल अशा प्रत्येकांने, आणि त्यांतूनही विशेषतः राजाने कर्तव्य कोणते, अकर्तव्य कोणते हे पुस्तकांतून शिकत वसण्यापेक्षां दुनियेंतच ठेचा खाऊन शहाणे व्हावे. कारण, असल्या गोष्टी पक्क्या शिकविण्याला जनतेसारखा दुसरा उंची गुरू नाही. ज्या राजाची सैन्यासंबंधी बळकटी पहिल्या प्रतीची असून त्याचे खालोखाल धर्माची बळकटी आहे, व द्यूतादि व्यसनाविषयी ज्याला सर्वांत कमी आदर वाटतो, अशा बुद्धिमान राजाला आसपासच्या शत्रूंपासून भय बाळगण्याचे कारण नाही. ज्या राजाचे ठिकाणी आपले मन ताव्यांत ठेवण्याचे धारिष्ट नाही अशा प्रत्येक राजाला (बाह्य शत्रूपेक्षां) जन्मतः प्रत्येकाच्या बरोबर जन्मलेले, जे मनाला मोह घालणारे आणि अभ्यासाने फाजील लाढावलेले इन्द्रियरूप शत्रु हेच खरे घातक असतात. हे त्यांचे अहित करून त्याच्या शत्रूंचे कल्याण करीत

असतात. हे रामा, तू व्रतस्थ असूनही तुझी बायको रावणाने नेतांच तुला भूल पडून तू आपले व्रत विसरून यःकश्चित् स्त्रीसाठीं सपरिवार रावणाचा वध केलास. हे तुझे करणे माझे मते राजनीतीला धरून नव्हे. छे, हे कितीही मोठ्या शौर्याचे असले तरी केवळ निंद्यच हे. तू वनवासांत असून व्रतस्थ असतांही राक्षससैन्यावर हत्यार धरिलेस खरे; पण जे खरे सज्जन आहेत ते असे आचरण करितांना आढळत नाहीत. खऱ्या सज्जनांचा धर्म म्हणजे क्रोधराहित्य किंवा शान्ति हाच होय, व यानेच ते सद्गतीला जातात. परंतु, तू स्त्रीमोहास्तव खरा धर्म विसरून हत्या केलीस आणि आपल्या उदाहरणाने त्या बिचाऱ्या आश्रमवासी तपस्व्यांनाही कलंक लाविलास. खरोखरच एखाद्या प्राकृताप्रमाणे विषयलंपट होऊन, केवळ स्त्रीसाठीं तिला हरण करून नेणाऱ्या रावणाला, तू व्रतस्थ असतां त्या कालांत मारिलेस (याने तुझा कमीपणा झाला); परंतु, रावण धन्य झाला असे मी समजतो. बाकी तू युद्धांत रावणाला मारिलेस म्हणून तुला शूरत्वाची घमेंड नको; कारण, रावण हा दुष्टबुद्धि व अजितेंद्रिय असल्यामुळे वस्तुतः तो आपल्या मरणानेच मेला. तुझे अंगी खरेच सामर्थ्य असेल तर आज माझ्याशी रणांत गांठ घाल म्हणजे पाहू.”

याप्रमाणे त्या दूताच्या मुखांतून ते कठोर पांडित्य ऐकूनही रामाचे मन सहज धैर्यामुळे न गडबडतां त्याने हंसतच उत्तर केले की, “हे दूता, तू आपण निर्भय आहो असे समजून आपल्या धन्याची थोरवी गाण्याकारितां मला दोष देण्यास कबूल झालास हे मात्र तू खोटे काम केलेस. क्षणे माझी बायको उपटली व (तू म्हणतोस त्याप्रमाणे) तिच्या मोहाने मी भल्यांचा मार्ग सोडून रावणाला ठार केले,

हैं जरी खरें असलें तरी त्याबद्दल तुला येवढी ऊर बडवून घेण्याची पाळी कां आली? जे खरे खरे सदाचणी आहेत असले सज्जन वृथा वाणीनें देखील दुसऱ्याला दुखवीत नाहीत. कारण, ते असें समजतात कीं, देव जो आहे तो सज्जनांच्या प्रमाणेंच इतरांच्याही हृदयांत आहे. असो, हे दूता, तुझी कामगिरी तूं केलीस. आतां तूं परत जा. विलंब लावूं नको. ( तुझा धनी मला युद्धार्थ बोलावितो खरा परंतु, ) तुझ्या धन्यासारखे आपली आपणच स्तुति करणारे जे आहेत अशांवर मजसारखे शस्त्र धरीत नसतात. हा माझा धाकटा भाऊ शत्रुघ्न आहे. हाही शत्रूला त्राहि त्राहि करून सोडणाराच आहे. हा तुझ्या त्या दुष्टबुद्धि दैत्याचें संग्रामांत गांठून उट्टें काढील. याला घेऊन जा. ”

याप्रमाणें महात्म्या रामराजानें निरोप देतांच शत्रुघ्नाला बरोबर घेऊन तो दूत परतला. बरोबरील वाहन चपल असल्यामुळें तो अल्पकालांतच त्या दानवाच्या विस्तीर्ण मधुवनांत जाऊन पोहोंचला. तेथें जातांच युद्धेच्छेनें शत्रुघ्नानें त्या वनाच्या सर-हद्दीवरच तळ दिला. इतक्यांत त्या दूतानें वार्ता कळवितांच तो दैत्य अंगांत क्रोध मावेनासा होऊन युद्धार्थ चालून आला, आणि सर्व वन पाठीशीं घालून त्या स्थळीं युद्धाला उभा राहिला. मग शत्रुघ्न आणि तो लवण या उभयतां शूर आणि बलाढ्य वीरांचें त्या रणभूमीवर मोठेंच युद्ध झालें. ते उभयतांही एकमेकांना अति तीक्ष्ण अशा बाणांनीं सारखे प्रहार करीत होते. परंतु, त्यांतून एकाही युद्धांतून तोंड फिरवीना किंवा दमेना. शेवटीं शत्रुघ्नाच्या बाणांपुढें जर्जर होऊन तो दानव त्यावेळीं त्याचा आवडता शूल हातीं नसल्यामुळें हरण्याच्या बेतांत आला. पण इतक्यांत

त्यानें त्याला देवांनीं वरदानपूर्वक दिलेला सर्व प्राण्यांचें आकर्षण करणारा असा आपला अंकुश हातीं घेऊन प्रचंड आरोळी ठोकिली. आणि त्या अंकुशाचा आंकडा शत्रुघ्नाच्या मानेला घालून त्याला ओढूं लागला व तो अंकुश शत्रुघ्नाच्या मानेंत घुसवून त्याला तो खालीं पाडणार इतक्यांत शत्रुघ्नानें सोन्याची मूठ बसविलेला असा एक उत्तम खड्ग घेऊन त्यानें लवणाची मान उडविली. नंतर त्या मित्रवत्सल शत्रुघ्नानें आपल्या अस्त्रानें त्या दैत्याचे वसतीचें तें सर्व वन तोडून टाकून तेथें वसाहत करण्याचें मनांत आणिलें आणि त्या देशाचा उदय होण्यासाठीं त्या धर्मवेत्त्या सुमित्रा-पुत्रानें त्या मधुवनांत मथुरा नांवाची एक राजधानी निर्माण केली.

याप्रमाणें शत्रुघ्नानें लवण दानवाला मारून निर्माण केलेली ही मथुरा नगरी फारच शोभिवंत होती. तिला सभोंवार उंच तटबंदी असून मोठमोठ्या नगरवेशी होत्या. तिच्या पोटांत लहान लहान अनेक खेडीं असून ती एकंदरीत मोठी विस्तीर्ण व बल आणि वाहनें यांनीं संपन्न होती. त्या नगरीची मांडणी फार रेखलेली असून तिच्या चतुःसीमाही स्पष्ट आंखलेल्या होत्या. वनोपवनांनीं ती संपन्न असून तिजभोंवतील तटबंदी हेंच कोणी वस्त्र तिनें वेढिलें होतें, व त्या तटबंदीभोंवतालची जी पारिखा ( खंदक ) तोच त्या वस्त्रावरून कमरपट्ट्याचा वेढा होता. विटेबंदी, उंच उंच माड्या, हींच तिचीं बाहु-भूषणें व राजमंदिरें हींच तिचीं कुंडलें. तिच्या गांववेशी मोठ्या बंदोबस्ताच्या असून तिजमधील ठिकठिकाणचे रस्त्यांतील चौक इतके प्रशस्त होते कीं, त्यांचे रूपानें ती हंसेतच कीं काय असें वाटे. युद्धोपयोगी हत्ती, घोडे, रथ यांची तिच्यांत गर्दी असून तीमधील शिपायांना दुखणें कधीं

माहीत नसे. ती यमुनेचे कांठीं अर्धचंद्राकार वसली असून यमुनेचे सान्निध्यानें तिला फारच शोभा आली होती. शत्रूचा तिच्यांत रिघाव होत नसे. असा तेथील बंदोबस्त कडेकोट असल्यामुळे तिच्यांत व्यापारउदीमही फार जोरांनें चालत असून तेथील सराफ्यांत व लोकांजवळ रत्नें तर इतकीं असत कीं, त्यांबद्दल त्यांना गर्वच वाटे. अशी संपत्ति असून तिच्या परिघांत पुण्यस्थानेही बरींच होती. पर्जन्यही वेळचे वेळीं पडत असल्यानें ती मधील नरनारी सर्वदा आनंदांत असून ती नगरी जशी चमकून राहिली होती.

अशा या शत्रुघ्नानें स्थापिलेल्या मथुरा नगरींत एके कालीं उग्रसेन नांवाचा एक भोजवंशीय राजा राज्य करीत होता. हा मोठा वीर्यवान् असून पराक्रमानें कार्तिकेयाप्रमाणें होता; आणि त्याची सेनाही मोठी शूर होती. हे विष्णो, तूं पूर्वीं तारकायुद्धांत कालनेमी नांवाचा महादैत्य मारिलास तोच सांप्रत भोजवंशाची वृद्धि करण्याकरितां या उग्रसेनाचे पोटीं येऊन कंस या नांवानें प्रसिद्ध झाला आहे. याचे नेत्र विशाल असून याचा पराक्रम सिंहाप्रमाणें प्रसिद्ध आहे. राजांना हा मोठा भयंकर वाटत असून ते त्याला सर्वदा चपापून असतात. तो एकंदरीत सर्व प्राण्यांनाच भय देणारा असून बऱ्या मार्गापासून फारच दूर झुकला आहे. त्याचा निश्चय मोठा कडक असून तो मनाचा फार निर्दय आहे, व या आपल्या गुणांबद्दल त्याला मोठा गर्व वाटत असतो. त्याला पाहून त्याच्या प्रजेच्या अंगावर तर थरारून कांटा उभा रहातो. राजधर्म तो कधींच पाळीत नाही व स्वतः त्याच्या राजधानींत त्याच्या पक्षाच्या लोकांना देखील त्यापासून सुख होत नाही. तो सदानुकदा कोपास चढला असून

तेंटे उकरून काढीत असतो. असा हा तूं पूर्वीं कालनेमि-रूपानें पराजित केलेला व मांसभक्षक राक्षस कंसरूपानें प्रकट झाला असून आपल्या राक्षसी वृत्तीनें लोकांना पीडा देत आहे. त्याचप्रमाणें पूर्वजन्मी अश्वप्रमाणें बळकट जो हय-ग्रीव नांवाचा दैत्य होता तो याच कंसाचा कोशि नामक धाकटा भाऊ झाला आहे. हा दुष्ट केशी अश्वार्थें रूप घेऊन वृंदावनांत वसती धरून आहे. त्याची आयाळ मोठी भरदार असून तो अक्षर्यां खिंकाळत असतो व त्याला कोणी नियंता नसल्यानें तो येत्याजात्या माणसांच्या मांसाचे लचके तोडीत असतो. तिसरा, बलीचा पुत्र अरिष्ट. हा महासुर वाटेल तें रूप घेऊं शकतो. सांप्रत यानें मोठ्या सांडाचें रूप घेतलें असून त्याचें वशिष्ठ फारच मोठें आहे व हा इतका मस्त आहे कीं, हा गाईना एक काळच होऊन राहिला आहे. दानवांत श्रेष्ठ असा जो दितीचा रिष्ट नांवाचा पुत्र त्यानें हत्तीचें रूप घेतलें असून तो हल्लीं कंसाच्या स्वारीला असतो. पूर्वजन्मीचा मोठा गुर्मीदार जो लंब नामक दैत्य तो या जन्मीं प्रलंब नांवानें प्रसिद्ध होऊन भांडीर नामक वटाखालीं असतो. पूर्वींचा जो खर तो या जन्मीं धेनुकासुर झाला असून मोठ्या तालवनांत असतो व प्रजेला फार उत्साह देतो. पूर्वींचे वाराह व किशोर-नामक जे महाबलाढ्य दानव ते चाणुर व मुष्टिक नांवांचे मल्ल झाले असून सदा आखाड्यांत पडून असतात. याशिवाय, हे दानवांतका, मय व तार नांवांचे दोघे दानव ते सांप्रत भूमिपुत्र जो नरकासुर त्याच्या प्राग्ज्योतिष नामक पुरांत दडून असतात.

हे विष्णो, तूं पूर्वीं एकदां मारून नाहीसे केलेले हे सर्व दैत्य सांप्रत मनुष्यरूप घेऊन या प्रकारें भूमीवर मनुष्यांना त्रास देत आहेत. सर्वांनाही तुझ्या नांवाची मोठी चीड

असून कोणीही तुझे भक्त आढळले कीं, अशा मनुष्यांना ते ठार मारितात. तेव्हां अशा या दानवांचा क्षय पुनः तरी तुझ्याच हातून झाला पाहिजे. कारण, स्वर्गांत, धरणीवर किंवा समुद्रांत—कोठे झाले तरी ते तुला तेवढे मितात; इतर कोणालाही भीक घालीत नाहीत. हे श्रीधरा, कोणीही जीव कितीही दुर्वृत्त असो, त्याला जर एकवार तूं स्वहस्ते मारून स्वर्गांतून धरणीवर लाविले आहेस, तर त्याची पुनरपीही व्यवस्था लावणे ती तुजवांचून या धरणीवर अन्य कोणी लावू शकत नाही. कारण, हे केशवा, तूं प्रत्येक गोष्ट दक्षतेने पाहात असल्यामुळे तुझे हातून जो कोणी प्राणी एकवार वध पावून या भूलोकीं मनुष्य-शरीर घेऊन उठला, त्याला तुजवांचून पुनरपि स्वर्गास जातां येणार नाही. याकरितां हे विष्णो, चल. आपण भूतलीं जाऊं, आणि दानवांचा संहार करण्याकरितां तूं आपणाला निर्माण कर. शिवाय, देवांनाही कांहीं दृश्य व कांहीं अदृश्य अशीं तुझीं रूपें आहेत. अशा तुझ्या रूपांत तूंच या देवांचा प्रवेश करून दिलास म्हणजे त्या त्या रूपांने ते प्रकट होतील. एवंच, हे विष्णो, तूं अवतीर्ण झालास म्हणजे कंसाचा नाश होईल आणि जो हेतु मनांत धरून पृथ्वी तुजकडे आली होती तोही सिद्धीस जाईल. या भारतवर्षांत असली कोणतीही अवचट कामगिरी करणे झाले म्हणजे ती करणारा तूंच एक आहेस. तूंच सर्वांचा डोळा असून सर्वांचा आश्रयही तूंच आहेस. याकरितां, हे हृषीकेशा, मजबरोबर धरणीवर चल व दानवांचा संहार कर. ”

## अध्याय पंचावज्ञावा.

—:०:—

### ब्रह्मवाक्यवर्णन.

वैशंपायन सांगतात:—नारदाची ही वकिली ऐकून मधुसूदनाला हंसू आले. मग संसारी व मुमुक्षु या उभयांसही सारखाच प्रिय वाटणारा तो समर्थ परमेश्वर नारदाला शुभवाणीने म्हणाला, “हे नारदा, तूं त्रैलोक्याच्या हितासाठीं म्हणून जी मला विनंती केलीस ती फार समर्पक आहे. आतां तिचें उत्तर काय तें ऐक. मला ही गोष्ट माहीतच आहे कीं, मी पूर्वी मारिलेले दानव सांप्रत भूलोकीं देहधारी झाले आहेत. त्याचप्रमाणें कोण दैत्य कोणतें रूप घेऊन वैर माजवीत आहे तेंही मी जाणून आहे. कंस हा भूलोकीं उग्रसेनाचा पुत्र झाला आहे, हें मी जाणतो. तसेंच केशी दैत्यानें घोड्याचें रूप घेतले आहे हेंही मी समजतो. हल्लींचा कुवल्यापीड हत्ती हा कोण, तसेंच चाणुर—मुष्टिक जेठी कोण, हेंही मला अवगत आहे. अरिष्टानें वृषभाचें रूप घेतले आहे ही मला खबर आहे. त्याचप्रमाणें खर व प्रलंब महासुर यांनाही मी ओळखितों आहे आणि, हे ब्राह्मणा, ही जी पूतना ही बलीची कन्या आहे, याचीही मला याद आहे. याच प्रकारें गरुडाच्या भयानें यमुनेच्या डोहांत लपून असलेला जो कालिय सर्प त्यालाही मी विसरलों नाही. राजांचा शिरोवर्ति राजा जरासंध व प्राग्योतिषपुरांत रहाणारा नरकासुर यांवरही माझी पक्की नजर आहे. कार्तिकस्वामितुल्य जो बाण तो सांप्रत मनुष्यलोकीं मनुष्यरूप घेऊन शोणितपुरांत रहात असतो व त्याला आपल्या सहस्र बाहूंचा मोठा गर्व वाटत असून तो देवांनाही भारी आहे. याचा मला पत्ता आहे,

याखेरीज, हे नारदा, या भरतभूमीच्या भाराचें जूं माझ्याच मानेवर ठेविलें आहे, याचीही मला शुद्ध आहे. याचप्रमाणें आजकाल पृथ्वीवर वाढलेले राजे भूलोकीं क्षय पावून शक्र-लोकीं आदरास कसे पात्र होतील तेंही मला पुरें ठाऊक आहे, व सांप्रत मनुष्यरूप घेऊन जे हे असुर भूलोकीं संचरले आहेत, यांचे प्राण पुनः या लोकीं न येतील असें करण्यासाठीं मी स्वतः योगाचा आश्रय करून व इतर देवांकडून करवून या मनुष्यलोकांत स्वतः भौतिक देह घेऊन या कंसादिक महासुरांपैकीं ज्याला ज्या युक्तीनें शाश्वत शान्ति प्राप्त होईल त्या युक्तीनें त्याचा वध करीन. कारण, या देवेंद्राचे जे कोणी असे शत्रु आहेत त्यांना माझ्या योगबलानें अंतर्धानादि अनेक युक्त्या योजून मला मारिलेंच पाहिजे. हे नारदा, देव, देवर्षि, गंधर्व, इत्यादि स्वर्गवासी जनांनीं हा जो आपला अंशावतार धरणीवर केला आहे तो माझ्याच संमतीनें केला असल्यामुळें आपण स्वतः जाऊन त्यांच्या कृतीचें साफल्य करावें, असा निश्चय तूं मला जागें करण्यापूर्वींच मीं आपल्या मनार्शी करून ठेविला आहे. हे ब्रह्मर्षे, आतां पितामहानें मजसाठीं भूलोकीं एक वसतिस्थान निर्माण करावें, आणि कोणत्या देशांत, कोणत्या वेषानें, कसें राहिलें असतां या सर्व असुरांना मला युद्धांत सोईनें मारितां येईल हें मला पितामहानेंच सांगावें. ”

तें ऐकून ब्रह्मदेव म्हणाला, “ हे नारायणा, हे विभो, कोणत्या उपायानें आपला हेतु सिद्धीस जाईल ? हे महाबाहो, भूलोकीं आपलीं आईबापें कोण होतील व कोणत्या वंशांत

उत्पन्न झाल्यानें आपण कुलवृद्धि करून यावत यादववंशाचें धारण कराल आणि त्या सर्व असुरांचें उन्मूलन करून व आपल्या वंशास महतीस चढवून प्रजाजनांना वर्तनाची मर्यादा घालून द्याल, त्या सर्व गोष्टी मी आपणास सांगतो, त्या मजकडून ऐकाव्या.

पूर्वकालीं, हे विष्णो, कश्यपानें महात्म्या वरुणाच्या फार दूध देणाऱ्या अशा यज्ञीय घेनु, त्याचा यज्ञ चालू असतां आणिल्या. घरी आणिल्यावर कश्यपाच्या अदिति आणि सुरभी अशा ज्या दोन स्त्रिया होत्या त्या पुनः त्या गाई वरुणास देऊं देतना. त्या वेळीं वरुण मजकडे येऊन शिरःप्रणामपूर्वक म्हणाला कीं, हे भगवन्, गुरु कश्यपानें माझ्या गाई नेल्या. आतां त्याचा कार्यभाग उरकला असतांही तो आपल्या अदिति व सुरभी या दोघी स्त्रियांच्या नादीं भरून माझ्या गाई मला परत आणूं देत नाहीं. हे प्रभो, माझ्या या गाई सर्वकाल आपणास वाटेल तितकें दूध देणाऱ्या असून सर्व सागरभर फिरतात; तथापि, त्यांना कोणी गुराखी लागत नाहीं. कारण, त्या स्वतेजानेंच आपलें रक्षण करितात; अशा त्या दिव्य आहेत. त्यांचें दूध फारच अव्वल प्रतीचें, केवळ देवांच्या अमृताच्या तोडीचें असून, पुनः, त्याला कधींही खंड नाहीं. असल्या या माझ्या दिव्य गाई दाबून ठेविण्याचें सामर्थ्य कश्यपावांचून इतर कोणालाही नाहीं. हे भगवन्, प्रभु असो, गुरु असो किंवा इतर कोणी असो, तो जर आपली मर्यादा सोडून वागेल तर त्याला तूंच अटकाव केला पाहिजेस. कारण, आमचें अखेर दाद लाविण्याचें ठिकाण

तूंच आहेस. हे लोकगुरो, आपली मर्यादा न ओळखून लोकांत वागणारे जे कोणी दांडगे लोक आहेत अशांना जर दंड न होईल तर सर्वत्र बेबंदी माजेल. बाकी तें कसेंही असो, आपण सर्व कांहीं करण्यास समर्थ आहां. करितां माझ्या गाई मला देववाच्या म्हणजे मी समुद्रांत जातो. या गाई म्हणजे माझ्या देवताच आहेत; या माझें अविनाशी सत्त्वच आहेत. हे विभो, तूं निर्माण केलेल्या लोकांचे गाई आणि ब्राह्मण हे प्राण आहेत. यांपैकीं गाईचें रक्षण प्रथम करावें म्हणजे त्या ब्राह्मणांचें रक्षण करितात, आणि याप्रमाणें गाई व ब्राह्मण या उभतांचें रक्षण झालें म्हणजे त्याचे पोटीं सर्व जगताचें रक्षण होतें.

हे विष्णो, याप्रमाणें जलाधिपति वरुणानें मजकडे फिर्याद दिल्यावर गाईच्या बाबतींत कश्यपाच्या हातून काय कारण घडलें होतें तें ध्यानांत आणून मीं त्याला शाप दिला. तो असा:—कश्यप महर्षीच्या ज्या अंशानें वरुणाच्या गायी नेल्या त्या अंशानें तो भूतलीं नंदनामक गौळी होईल. बाकीच्या अंशानें यदुकुलांत वसुदेव रूपानें जन्मेल, आणि कश्यपाच्या ज्या सुरभी आणि देवमाता अदिति अशा दोन भार्या आहेत, त्यांपैकीं अदिति ही दोन अंशांनीं यशोदा व देवकी अशीं दोन रूपें घेऊन आणि सुरभी रोहिणीचें रूप घेऊन, नंदरूपाची यशोदा व वसुदेवरूपाची देवकी व रोहिणी अशा स्त्रिया होऊन, कश्यप त्यांशीं रममाण होईल. यांपैकीं कश्यपाचा जो वसुदेवनामक अंश सांगितला, तो तेजानें प्रति कश्यप होऊन मथुरेच्या जवळच जो गोवर्धन नामक

पर्वत आहे तेथें कंसाचा मांडलीक होऊन गाईगोधनांतच राहील. अशा या वसुदेवाच्या घरांत, हे महाबाहो, तूं प्रथम शिशुरूपानें जन्मून आणि गोपाळाचा वेष घेऊन रहा. हे मधुसूदना, तूं लोककल्याणार्थ आपल्या योगमायेनें आपलें खरें स्वरूप गुप्त राखून यदुकुलांत याप्रमाणें प्रथम प्रकट हो, आणि मग वामनावताराप्रमाणें वाढ. शिवाय, स्वर्गवासी जन तुझा उत्कर्ष होण्यासाठीं तुला जयवाद आणि आशिर्वाद देतीलच. याकरितां तूं भूतलीं आपला आपणच अवतार करून देवकी आणि रोहिणी या दोघांनाही त्यांचे गर्भांत राहून संतुष्ट कर, आणि तेथें गवळ्यांच्या हजारों पोरी निर्माण होतील त्यांशीं मौजा मारीत भूलेकीं रहा. हे विष्णो, तूं गोपवेषानें वनांमध्ये गाई राखीत इकडून तिकडे फिरत असतां ज्या गाई तुझे वनमालांनीं व्यापलेलें शरीर अवलोकन करतील, त्या खरोखरच धन्य होत. हे कमलदलाक्षा विष्णो, तूं बाल होऊन गोपालांच्या वसतींत गेला असतां तेथील सर्वच लोक तुझ्या नादानें बाल होतील, आणि, हे पुंडरीकाक्षा, तुझ्याच तंत्रानें चालणारे जे तुझे भक्त आहेत ते गोपाळ होऊन गाई राखण्याचे कामीं तुला सदा साह्य करतील. तुझें रानांत गाई चारणें, गाईमागून गोठ्यांतून इकडे तिकडे धांवणें, आणि यमुनाडोहांत बुड्या मारणें, या चेष्टांनीं तुजवर त्यांचें फारच प्रेम जडेल. वसुदेवाला तूं “ बाबा ” म्हणून हांका मारिशील आणि तो तुला “ बाळ ” म्हणून हांक मारील आणि असा दिवस आला म्हणजे त्या

१ श्रीकृष्ण प्रथम देवकीच्या गर्भांत येऊन कंसाला फसविण्याकरितां नंतर रोहिणीच्या गर्भांत गेला.



वसुदेवाचें जीवित खरोखरच धन्य होईल. बाकी कश्यपा ( वसुदेवा ) वांचून इतर कोणाचें पुत्रत्व तुझ्यासारख्यानें स्वीकारावें? आणि हे विष्णो, कश्यपस्त्री अदिति तिजवांचून दुसरी कोणती स्त्री तुझें गर्भांत धारण करूं शकेल ? ( तेव्हां तूं वसुदेवदेवकीच्या [ अदिति ] पोटीं येणें हेंच न्याय्य आहे. ) याकरितां तूं आपल्या स्वयंभु योगबलानें विजय मिळविण्यासाठीं भूलोकीं जा, आणि, हे मधुसूदना, आम्हीही आपआपल्या घरीं जातो. ”

वैशंपायन सांगतात:—याप्रमाणें ब्रह्मदे-

वाची विनंती कानीं येतांच देवमंडळीला तेथून जाण्याची अनुज्ञा देऊन श्रीविष्णु क्षरिसमुद्राच्या उत्तर प्रांताला जें स्वतःचें वसतिस्थान होतें तेथें गेले. तेथें मेरूचे पोटांत पार्वती नांवाची एक अत्यंत दुर्गम अशी गुहा आहे. या गुहेंत श्रीविष्णूचीं तीन पाउलें उमटलेलीं असून त्याकरितां संक्रान्तीचे दिवशीं लोक तिची नेहमीं पूजा करितात. असल्या या पवित्र गुहेंत आपलें जुनें शरीर ठेवून तो उदारधी परमात्मा हरि स्वतःला वसुदेवाच्या घरीं जन्मास घालण्याचे खटपटीस लागला.

